रामममनोहर लोहिया

राष्ट्रीय जीवनचरित

राममनोहर लोहिया

इंदुमति केलकर

संक्षिप्तीकरण एवं संपादन

श्रीपाद कृष्ण केलकर

सहायक

ह. श्री. साने

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

ISBN 81-237-1897-7

पहला संस्करण : 1996

पहली आवृत्ति : 2001 (*शक* 1923)

Ram Manohar Lohia *(Hindi)*

रु. 45.00

निदेशक, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, ए-5 ग्रीन पार्क
नयी दिल्ली-110 016 द्वारा प्रकाशित

विषय सूची

भूमिका

दिवंगत श्रीमती इंदुमति केलकर ने तीस साल पहले डा. राममनोहर लोहिया की जीवनी हिंदी में लिखी थी। यही वह पहली और अधिकृत जीवनी है जो किसी भारतीय भाषा में लिखी गई है। बहुत-सी घटनाओं, वक्तव्यों और विचारों की अचूकता के लिए और इनकी जांच-पड़ताल के लिए श्रीमती इंदुमति केलकर को डा. लोहिया के साथ चर्चा और परामर्श का अवसर प्राप्त हुआ था।

जीवनी के संशोधित और संवर्धित संस्करण (ई०सं० 1983) का संक्षिप्त रूप प्रस्तुत जीवनी है। स्रोत जीवनी ग्रंथ की जानकारियों, प्रसंगों, विवेचनों को हानि पहुंचाए बिना तथा कालगति में बदले संदर्भों और नेशनल बुक ट्रस्ट की किताबों के पाठकों को ध्यान में रखकर संक्षिप्तीकरण और संपादन किया गया है।

इस कार्य में, स्थानिक सर परशुराम भाऊ महाविद्यालय के डा० ह० श्री० साने की बहुमूल्य सहायता मुझे प्राप्त होती रही। मैं हृदय से उनका ऋणी हूं।

415/1 शनिवारपेठ,
पुणे- 411030

श्रीपाद कृष्ण केलकर

डा0 राममनोहर लोहिया : जीवनपट

जन्म	:	23 मार्च 1910, अकबरपुर, जिला फैज़ाबाद, उत्तर प्रदेश
पिता	:	श्री हीरालाल
माता	:	चंद्री
खानदान	:	व्यापारी, अनेक पीढ़ियों से लोहे का व्यापार चला आ रहा था। दादाजी और दादाजी के भाई कांग्रेस प्रेमी, पिताजी कांग्रेस के कार्यकर्ता, सविनय अवज्ञा सत्याग्रह आंदोलन (1930-32) में गिरफ्तारी
प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा	:	अकबरपुर और बंबई में, इसी अवधि में पंडित जवाहरलाल नेहरू के अकबरपुर में अपने घर में नजदीक से दर्शन, बंबई में महात्मा गांधी के भी नजदीक से दर्शन, 1925 में मैट्रिक परीक्षा उत्तीर्ण
महाविद्यालयीन शिक्षा	:	काशी और कलकत्ते में, गौहाटी के कांग्रेस अधिवेशन में सहयोग, कलकत्ते में विद्यार्थी संघटना का कार्य-अखिल बंगाल विद्यार्थी परिषद, नेहरू अध्यक्ष, राममनोहर विषयनियामक समिति के सदस्य, नेहरू से निकट संपर्क, 1929 में बी0 ए0 (ऑनर्स) प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण
उच्चशिक्षा	:	बर्लिन (जर्मनी) के हम्बोल्ट विश्वविद्यालय में 1929 में अर्थशास्त्र में डाक्टरेट की उपाधि के अध्ययन के लिए प्रवेश, स्वातंत्र्यवादी भारतीय विद्यार्थी संघटना में सक्रिय, ब्रिटन जिनेवा के लीग आफ नेशन्स के अधिवेशन में ब्रिटिश विरोधी निषेध-प्रदर्शन, 1933 में पीएच0 डी0 उपाधि प्राप्त की और मातृभूमि में लौट आए। जब जर्मनी में थे तभी आजीवन राजनीति के क्षेत्र में काम करने का निर्णय।

1933-34	:	कलकत्ता के विद्यार्थी जगत में कार्य किया।
1934	:	कांग्रेस समाजवादी पक्ष की संस्थापना में सहयोग और पक्ष की राष्ट्रीय कार्यकारी समिति पर सदस्य के नाते नियुक्ति।
1934 से 36-37	:	कलकत्ता के विद्यार्थी और मजदूर आंदोलनों में सक्रिय, 'कांग्रेस सोशलिस्ट' के संपादक।
1936 से 37-39	:	इलाहाबाद में अखिल भारतीय कांग्रेस समिति के विदेश विभाग के प्रमुख के नाते काम। 1937 में केंद्रीय असेंबली के चुनावों में कांग्रेस के उम्मीदवार के नाते चयन, परंतु चुनाव लड़ना स्वीकार नहीं किया। उत्तर प्रदेश में कांग्रेस के कार्यक्रमों में सहयोग, नेहरू से निकटता और स्नेह।
1936-37 से 1940-41	:	अधिकांशतः कलकत्ता में पक्ष कार्य।
1937 से 1948	:	गांधीजी के निकट संपर्क में।
1938-1942	:	द्वितीय महायुद्ध के मसले पर भारत की नीति क्या रहे ? इस मुद्दे पर नेहरू के साथ मतभेद। सामूहिक सत्याग्रह के लिए गांधीजी के पास सतत और साग्रह प्रतिपादन।
मई 1939	:	युद्ध विरोधी प्रचार के लिए युद्ध पूर्व गिरफ्तारी निर्दोष पाकर मुक्ति।
7 जून 1940	:	युद्ध विरोधी प्रचार के लिए युद्धकाल में दूसरी गिरफ्तारी, दो साल की सजा, और डेढ़ वर्ष के बाद रिहाई।
8 अगस्त 1942	:	बंबई के प्रसिद्ध 'भारत-छोड़ो'-अखिल भारतीय कांग्रेस समिति के अधिवेशन में प्रतिनिधि के नाते उपस्थित, प्रस्ताव पर भाषण।
9 अगस्त 1942	:	भूमिगत, बंबई और कलकत्ता में कांग्रेस गुप्त रेडियो केंद्रों की स्थापना में नेतृत्व और गुप्त आकाशवाणी केंद्र से कई भाषण दिए, अनेक भूमिगत पत्रकों और पुस्तिकाओं का लेखन-प्रकाशन-प्रसारण। देशभर में गुप्त संघटनाओं के गठन।
मई 1943	:	ब्रिटिश भारत सरकार के आदेश पर नेपाल सरकार ने नेपाल में लोहिया और जयप्रकाश को गिरफ्तार किया। क्रांतिकारियों के गुप्तदल ने मुक्त किया।
10 मई 1944	:	इक्कीस महीनों की भूमिगत कार्रवाइयों के बाद बंबई में गिरफ्तारी, पहले लाहौर में, फिर आगरे में स्थानबद्धता। लाहौर के जेल में अमानुषिक यंत्रणाएं। पिताजी का निधन, छुट्टी पाकर जेल से बाहर आने से इनकार, चौबीस महीनों के बाद जून 1946 में रिहाई।

जून 1946	:	कांग्रेस के महामंत्री पद का भार उठाने की नेहरू की विनती, लोहिया का मना करना, सत्तारूढ़ कांग्रेस नेताओं और कांग्रेस संघटना के पारस्परिक संबंधों को लेकर नेहरू के साथ मतभेद। अन्य मुद्दों पर भी मतभेद होने लगे।
18 जून 1946	:	मडगांव-गोवा में मनाही-हुक्म को तोड़कर प्रकट सभा, गोवा सत्याग्रह आंदोलन का शुभारंभ, गिरफ्तारी और दूसरे दिन रिहाई।
29 सितंबर 1946	:	मनाही हुक्म को तोड़कर गोवा में प्रवेश, गिरफ्तारी, नौ दिन के बाद रिहाई।
1946-47	:	लोहिया से प्रेरणा पाकर नेपाल कांग्रेस की स्थापना हुई, नेपाली जनता की मांगों का प्रचार करने के लिए दार्जिलिंग थे, गिरफ्तारी और तुरंत रिहाई।
16 अगस्त 1946	:	चटगांव, पूर्व बंगाल-मुस्लिम लीग के गढ़ में प्रकट सभा, जान से मारने की लीग के गुंडों की धमकी।
1946-47	:	विभाजन से पहले और बाद में हिंदू-मुस्लिम दंगों में गांधीजी के साथ कलकत्ता, दिल्ली और कुछ दिनों के लिए नौआखाली में शांति प्रस्थापना के काम में जुटे रहे।
फरवरी 1947	:	कांग्रेस समाजवादी पक्ष के कानपुर अधिवेशन के अध्यक्ष।
जून 1947	:	विभाजन के संबंध में अंतिम निर्णय के लिए आयोजित कांग्रेस वर्किंग कमेटी की बैठक में लोहिया और जयप्रकाश आमंत्रित सदस्य के नाते उपस्थित, विभाजन का दोनों ने सख्त विरोध किया।
29 जनवरी 1948	:	गांधीजी से आखिरी भेंट।
30 जनवरी 1948	:	गांधीजी की हत्या।
मार्च 1948	:	कांग्रेस समाजवादी पक्ष का कांग्रेस-त्याग का निर्णय, लोहिया ने कांग्रेस छोड़ दी।
1949	:	उत्तर भारत की रियासतों की रैयत के संघर्ष का नेतृत्व।
मई 1949	:	दिल्ली में 'नेपाल दिवस' के अवसर पर किए गए प्रदर्शन का नेतृत्व, गिरफ्तारी, स्वाधीन भारत में पहली बार कैद, लगभग डेढ़ महीने के बाद रिहाई।
सितंबर 1949	:	राजनैतिक नेता के नाते पहली बार विदेश यात्रा, स्टॉक होम में आयोजित 'विश्वसरकार सम्मेलन' में उपस्थिति।
जनवरी 1950	:	रीवा (मध्य प्रदेश) के रियासत के संघर्ष में गिरफ्तारी और मुक्ति।

फरवरी 1950	:	हिंद किसान पंचायत के प्रथम अधिवेशन-(रीवा) के अध्यक्ष।
जून 1951	:	कागोडू-कर्नाटक में किसान सत्याग्रह के नेतृत्व के कारण गिरफ्तारी, नौ दिनों के बाद रिहाई।
जुलाई 1951	:	45 दिनों की अवधि की दूसरी बार विदेश यात्रा, फ्रैंकफर्ट (जर्मनी) में आयोजित अंतर्राष्ट्रीय समाजवादी सम्मेलन में भारत के प्रतिनिधि के नाते उपस्थिति, बाद में यूगोस्लाविया, जापान और अमेरिका का दौरा, अमेरिका में आइन्स्टिन से भेंट।
मार्च 1952	:	लोहिया के प्रयत्नों से एशियाई देशों के समाजवादियों का पहला अधिवेशन, एशियाई समाजवादी संघटना स्थापित करने का निर्णय।
1952	:	पहले सार्वत्रिक चुनाव।
मई 1952	:	सार्वत्रिक चुनावों में समाजवादी पक्ष की हार की पृष्ठभूमि पर पचमढ़ी (मध्य प्रदेश) में पक्ष का अधिवेशन, लोहिया अध्यक्ष थे।
सितंबर 1952	:	समाजवादी पक्ष और आचार्य कृपलानी के कृषक-मजदूर प्रजा पक्ष का विलीनीकरण और प्रजा समाजवादी पक्ष की स्थापना।
फरवरी 1953	:	कांग्रेस के साथ सहयोग के लिए नेहरू-जयप्रकाश भेंट और बातचीत, लोहिया का सहयोग के लिए विरोध।
जून 1953	:	प्रजासमाजवादी पक्ष का बैतुल (मध्य प्रदेश) में कांग्रेस के साथ सहयोग के प्रश्न पर निर्णय करने के लिए विशेष अधिवेशन।
दिसंबर 1953	:	इलाहाबाद में प्रजासमाजवादी पक्ष का प्रथम अधिवेशन, पक्ष के महामंत्री पद पर लोहिया का चयन।
जुलाई 1954	:	उत्तर प्रदेश में नहर पानी लगान में वृद्धि के विरोध में प्रजा समाजवादी पक्ष के आंदोलन का नेतृत्व, गिरफ्तारी, सत्याग्रह के प्रचार के लिए अधिकार को प्रस्थापित करने के लिए इलाहाबाद उच्च न्यायालय में मामला दायर किया था, लोहिया की जीत, दो महीनों के बाद रिहाई।
अगस्त 1954	:	मुख्यमंत्री पिले की त्रावणकोर-कोचिन की प्रजासमाजवादी सरकार ने निःशस्त्र नागरिकों पर गोली चलाई थी कुछ लोगों की मौत हुई थी, लोहिया ने जेल से ही महामंत्री के नाते पिले सरकार को सुझाव दिया कि वह इस्तीफा दे, परंतु पिले सरकार ने सुझाव नहीं माना, इसलिए लोहिया ने महामंत्री पद से त्यागपत्र दिया।

जनवरी 1955	:	कांग्रेस ने आवडी (तमिलनाडु) अधिवेशन में अपना उद्देश्य समाजवादी समाज रचना घोषित किया, अशोक मेहता की ओर से घोषणा का स्वागत और सहयोग के लिए उत्सुकता प्रदर्शित की गई। अशोक मेहता के प्रस्ताव का लोहिया द्वारा तीव्र विरोध, मधु लिमये ने अशोक मेहता के विरोध में प्रकट तौर पर अपना मत व्यक्त किया। लिमये का पक्ष-सदस्यत्व स्थगित रखा गया, लोहिया ने इसका भी निषेध किया।
अप्रैल 1955	:	मणिपुर आंदोलन के कारण गिरफ्तारी, कुछ दिनों बाद रिहाई।
जून 1955	:	प्रजासमाजवादी पक्ष का आंतरिक कलह अपनी चरम सीमा पर पहुंचा, लोहिया का सदस्यत्व भी रद्द किया गया।
दिसंबर 1955	:	लोहिया के नेतृत्व में समाजवादी पक्ष की स्थापना, हैदराबाद में अधिवेशन, लोहिया अध्यक्ष थे।
1957	:	दूसरे सार्वत्रिक चुनाव, लोहिया चकिया चंदौली (उत्तर प्रदेश) से लोक सभा के लिए उम्मीदवार थे और चुनाव हार गये थे।
1957	:	जयप्रकाश के नेतृत्व में प्रजासमाजवादी और समाजवादी पक्षों के ऐक्य के लिए प्रयास, लोहिया का भी सहयोग।
नवंबर 1957	:	समाजवादी पक्ष की ओर से अखिल भारतीय स्तर पर सत्याग्रह, लखनऊ में लोहिया की गिरफ्तारी, गैरकानूनी तरीके से हिरासत में बद किए जाने के विरोध में उच्च न्यायालय में आवेदन, फिर रिहाई।
नवंबर 1958	:	सीमा प्रवेश पर पाबंदी थी, इसके विरोध में उर्वसीयम (नेफा) सीमा पर सत्याग्रह, गिरफ्तारी और मुक्ति भी।
नवंबर 1959	:	उर्वसीयम में प्रवेश का पुनः प्रयत्न, पुनः गिरफ्तारी और पुनः रिहाई।
1960	:	कानपुर के सरकारी सर्किट हाउस में रहने के लिए मनाही, इसके विरोध में सत्याग्रह। सौ रुपयों का दंड, दंड भरने से इनकार।
1961	:	विश्व रामायण मेले के आयोजन का प्रयास।
नवंबर-दिसंबर 1961	:	तीसरी बार विदेश यात्रा, अथेन्स (ग्रीस) में आयोजित विश्व शांति परिषद में सहभागी।
1962	:	तीसरी बार सार्वत्रिक चुनाव, फूलपुर (उत्तर प्रदेश) लोकसभा चुनाव क्षेत्र से नेहरू के विरोध में चुनाव लड़ा, हार हुई।
1963	:	चीनी आक्रमण के उपरांत भारत-चीन सीमा प्रदेश का दौरा, गिरफ्तारी और मुक्ति।

	:	उपचुनाव में लोकसभा के फर्रुखाबाद निर्वाचन क्षेत्र से निर्वाचित।
1964	:	चौथी बार, दो महीनों के लिए विदेश यात्रा, जैक्सन (मिसीसिपी राज्य-अमेरिका) में वांशिक पक्षपात के विरोध में सत्याग्रह।
1965	:	'पांचवीं बार विदेश यात्रा, मधु लिमये के साथ जर्मनी, रूस और काबुल की यात्रा, सरहदी गांधी से भेंट।
1965	:	कच्छ-पाक सीमा का दौरा।
अगस्त 1965	:	भुखमरी विरोधी आंदोलन में पटना में गैरकानूनी गिरफ्तारी, सर्वोच्च न्यायालय की ओर से रिहाई।
जुलाई 1966	:	'उत्तर प्रदेश बंद' के कांड के सिलसिले में कानपुर में गिरफ्तारी
नवंबर 1966	:	दिल्ली के विद्यार्थियों की हड़ताल के प्रसंग में गिरफ्तारी, सर्वोच्च न्यायालय में गुहार, फिर रिहाई।
1967	:	चौथे सार्वत्रिक चुनाव, 'कांग्रेस हटाओ, देश बचाओ' का नारा, कन्नौज (उत्तर प्रदेश) से संसद के लिए विजयी।
29 सितंबर 1967	:	दिल्ली के इर्विन अस्पाल में (वर्तमान नाम राममनोहर लोहिया अस्पताल) प्रोस्टेट ग्लैंड की शल्य क्रिया के लिए पहुंचे।
12 अक्तूबर 1967	:	रात एक बजकर पांच मिनट पर देहावसान, इंदिरा सरकार और परवर्ती जनता सरकार की ओर से नियुक्त जांच समिति के निष्कर्षों के मुताबिक रोगाणुविनाशक व्यवस्था के न होने तथा डाक्टरों और अधिकारियों की लापरवाही और बेफिक्री के कारण मृत्यु, विद्युतदाहिनी में बिना किसी धार्मिक विधियों के दहन किया गया, संसद में श्रद्धांजलि और उस दिन का काम काज स्थगित कर दिया गया।

1

भारत माता–पृथ्वी माता

भारत के राजनीतिक मंच के, चौथे, पांचवें और छठे दशक के जबरदस्त तूफानी और आकर्षक, बहुचर्चित, सुर्खियों में रहने वाले और विवादास्पद व्यक्तित्व का नाम था राममनोहर लोहिया !

चौथे दशक की पीढ़ी राममनोहर को भारत छोड़ो क्रांति के सर्वोच्च नेता और समाजवाद के अग्रणी व्यक्ति के नाते जानती है। पांचवें और छठे दशक की पीढ़ियां उन्हें स्वाधीन भारत में विरोधी पार्टी के जुझारू, अद्भुत बुद्धिमत्ता और अदम्य बोध के नेता के रूप में जानती थी। क्रांतिकारी विचारक, श्रेष्ठ समाजवादी चिंतक और कर्मवीर के नाते ये पीढ़ियां लोहिया को शुरू से जानती थीं।

मौलिक बुद्धिमत्ता एवं बहुआयामी प्रतिभा के धनी, दार्शनिक, रसिक विद्वान, प्रखर राष्ट्रवादी, विश्वमनवाले विश्वनागरिक, दलितों-शोषितों के समर्थ प्रवक्ता, जैसे अनेकानेक रूपों में देश-विदेश में राममनोहर लोहिया प्रसिद्ध थे।

लोहिया के विचारों और व्यक्तित्व को गढ़ने में उन परिस्थितियों का बहुत बड़ा योगदान है जिनमें लोहिया किशोर से युवक बने थे। प्रथम और द्वितीय महायुद्धों के बीच का क्रांतिकारी विचारों से ओतप्रोत कालखंड था वह ! 1917 में रूस में बोल्शेविक क्रांति हुई और तीन साल बाद ही भारत में गांधीजी के नेतृत्व में अहिंसा का असहयोग आंदोलन शुरू हुआ। शोषण, पराधीनता, और अत्याचारों से मानवमात्र को मुक्ति दिलाते हुए स्वातंत्र्य, समता, बंधुता और समृद्धि पर आधारित नई मानव-संस्कृति को रचने के प्रयत्न रूस और भारत में लगभग एक ही समय पर शुरू हुए थे परंतु थे वे परस्पर विपरीत पड़ने वाले साधनों और मार्गों द्वारा ! वैचारिक क्रांतिकारिता, क्रांति का आवेग और आवेश तथा स्वप्नरंजन इस कालखंड की अपनी विशेषताएं थीं। अलग से कहने की आवश्यकता नहीं कि लोहिया का व्यक्तित्व और कृतित्व इन्हीं परिस्थितियों के सांचे में गढ़ा गया था।

जब लोहिया युवावस्था में थे तब भारतीय राजनैतिक गतिविधियों के दो प्रमुख प्रेरणास्रोत थे। एक थे मार्क्स और दूसरे गांधीजी ! यद्यपि यह सही है कि लोहिया मार्क्स

होती

से जितने प्रभावित थे उतने ही गांधीजी से भी परंतु यह भी सही है, और जैसा स्वयं लोहिया कहते हैं, 'न मैं मार्क्सवादी हूं और न मार्क्सवाद विरोधी, इसी तरह न मैं गांधीवादी हूं और न गांधीवाद विरोधी !' लोहिया ने मार्क्स के वर्ग-संघर्ष को जरूर स्वीकार किया परंतु वर्ग-संघर्ष के संगठन के साधन के रूप में कभी भी हिंसा को स्वीकार नहीं किया। संपत्ति साधनों पर सामाजिक स्वामित्व को लोहिया कबूल करते हैं परंतु संपत्ति के केंद्रीकरण का उन्होंने डटकर विरोध भी किया। गांधीजी की अहिंसा को देशांतर्गत परिस्थितियों में वे सिर आंखों पर मानते थे और उन्हें जितना विश्वास अहिंसक आंदोलन के भारत में सफल होने में था उतना राष्ट्रों के बीच के संघर्षों, तानाशाही और विदेशी आक्रमण के मामलों में नहीं था, इनको लेकर लोहिया को आशंका थी। गांधीजी द्वारा प्रतिपादित सत्ता और उत्पादन साधनों के विकेंद्रीकरण को लोहिया आवश्यक मानते थे परंतु गांधीजी की कही हुई ग्राम स्वराज्य की कल्पना उन्हें कतई रास नहीं आई। इसके बदले, ग्राम, तहसील, जिला और राज्य के चार खंबों पर आधारित अर्थात विकेंद्रित जिम्मेदारी वाली शासन व्यवस्था लोहिया को अधिक पंसद थी, अधिक श्रेयस्कर लगती थी। हाथकरघे के बदले में आपने विद्युत चालित, सुविधायुक्त, और कार्यक्षम छोटे छोटे यंत्रों का समर्थन किया परंतु वर्ग-संघर्ष के पर्याय के रूप में गांधीजी की ओर से प्रस्तावित विश्वस्त-कल्पना का भरसक विरोध किया तथा सामाजिक स्वामित्व का आग्रहपूर्ण समर्थन किया। जिन मुद्दों पर मार्क्स और गांधीजी के साथ लोहिया की वैचारिक भिन्नता थी उनमें से कुछ मुद्दे उपर्युक्त हैं।

जब लोहिया ने मार्क्सवाद के भ्रष्ट रूप के दर्शन रूस में और गांधीवाद के भ्रष्ट रूप के दर्शन भारत में किए तब बोले, 'जब ऋषि भ्रष्ट होता है तब वह क्रूर बनता है और जब संत भ्रष्ट होता है तब वह ढोंगी बनता है।'

सम्यक् और समग्र दर्शन के रूप में लोहिया ने न कभी मार्क्सवाद को स्वीकार किया और न कभी गांधीवाद को। परंतु दोनों के दार्शनिक विचारों से कुछ तानों-बानों का चयन कर आपने एक महावस्त्र बुना, इसका नाम है समाजवाद। लेकिन इसका अभिप्राय यह जरा भी नहीं है कि लोहिया-प्राणित समाजवाद यानी मार्क्सवाद और गांधीवाद का निरा समन्वय है। लोहिया का समाजवाद मार्क्सवाद की भूमि में गांधीवाद के पौधे को रोपना नहीं था, और न गांधीबाद की भूमि में मार्क्सवाद के पौधे को रोपना था। एकरस, एकात्मक राजनैतिक, सामाजिक दर्शन के रूप में लोहिया ने अपने समाजवाद को प्रस्थापित किया है। हालांकि उन्होंने कभी भी यह दावा नहीं किया कि वे एक सम्यक् दर्शन का प्रतिपादन कर रहे हैं। बड़ी विनम्रता और सजग बोध के साथ लोहिया ने समाजवाद की व्याख्या प्रस्तुत की है। लोहिया का मुख्य उद्देश्य और आग्रह समाजवाद, स्वातंत्र्य और समता की निर्गुण संकल्पनाओं को सगुण, साकार बनाने का था।

भारत की विशेष परिस्थितियों के संदर्भ में लोहिया ने समाजवादी तत्वों को जिस तरीके से उपस्थित ही नहीं किया बल्कि लागू कर दिखाया इसे उनका समाजवादी वैचारिक क्षेत्र में बहुत बड़ा योगदान समझा जाता है। भारत में लोहिया वह समाजवादी नेता थे

जिन्होंने पहली बार यह कहा कि आर्थिक और सामाजिक समता के लिए जरूरी है कि शोषकों के हाथों में से जाति और भाषा के दो खतरनाक औजारों को छीन लिया जाए। मुट्ठीभर अंग्रेजीदां और वरिष्ठ जाति के लोगों के सत्ता पर एकाधिकार को छीन लेने का नारा देकर लोहिया ने समाजवादी आंदोलन को भारत में नई दिशा दी।

लोहिया 1936 से 42 तक की अवधि में इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि न केवल भारत में बल्कि एशिया और अफ्रीका के गुलाम और अविकसित राष्ट्रों में भी मार्क्सवादी समाजवाद और उसका रूसी अवतार-कम्युनिज्म ग़ैरलागू है बल्कि निरुपयोगी भी है। उस यूरोपीय समाजवाद को लेकर लोहिया का मोहभंग कब का हो चुका था जो साम्राज्यवादी हित संबंधों का रक्षक था, और पूंजीवादी समृद्धतम, सतत वर्धिष्णु जीवन जीने का लगातार आकांक्षी था। लोहिया को दृढ़ विश्वास था कि सभी दलित, शोषित और गुलाम देशों की जनता को शोषण और पराधीनता से मुक्त किए बिना समता, स्वातंत्र्य, बंधुता और समृद्धि पर अधिष्ठित नई संस्कृति का निर्माण मात्र असंभव है। इसलिए लोहिया की नजरों में यूरोपीय संस्कृति के विविध रूपों में पला-पोसा समाजवाद और सोवियत रूस में पनपा समाजवाद—दोनों ही—भारत के लिए निरुपयोगी थे।

यही वह वैचारिक बिंदु था जिस पर गांधीजी और लोहिया एकमत या सहमत थे। गांधीजी के विचारों में लोहिया को वे शक्तिबीज मिले जिनके सहारे सभी प्रकार के शोषण से मुक्त, स्वाधीन-स्वतंत्र मानव समाज का निर्माण कर पाना संभव था। लोहिया को धीरे धीरे यह विश्वास हो गया था कि नए विश्वमानव और नए विश्वसमाज के निर्माण के लिए तथा राष्ट्रांतर्गत और समूचे विश्व के राष्ट्रों में समता स्थापित करने के लिए गांधी विचारधारा के कुछ सूत्र उपयुक्त हैं और इसीलिए लोहिया ने गांधीजी को 'इतिहास की दिशा दिखाने वाली अंगुली' कहकर गौरवान्वित किया है।

गांधीजी के धर्मविषयक विचारों, वर्ण व्यवस्था के समर्थन, ईश्वरनिष्ठा, स्त्री-पुरुष संबंधों को लेकर विचारों, शरीरशुद्धताविषयक एक सिरे की कल्पनाओं, कुपोषण, आदि को लोहिया ने कभी भी तर्कसंगत नहीं माना, फिर भी गांधीजी और लोहिया में वह संबंध और रिश्ता लगातार बना रहा जो पितृवत गुरु और पुत्रवत शिष्य में रहता है।

वैसे देखा जाए तो गांधीजी और लोहिया की स्वभाव-प्रकृति एकदम भिन्न थी परंतु विचार और भावना में मौलिक एकात्मता थी। सभी जीवधारी-प्राणी मात्र के प्रति प्रेम और दयाभाव लोहिया के व्यक्तित्व का अभिन्न अंग था, पौधों से फूलों को तोड़ लेना उन्हें कभी नहीं भाया। यह दृश्य कई लोगों ने देखा है कि अपने बंगले की हरियाली पर अकेले बैठे लोहिया के कंधों पर गिलहरी कूदती-फुदकती खेल रही है। लोहिया पूरे शाकाहारी, निष्ठावान शाकाहारी थे। आप शपथपूर्वक कभी भी साइकिल रिक्शा और आदमी द्वारा खींचे जाने वाले रिक्शे पर सवार नहीं हुए। अपने इस प्रण को लोहिया ने अंत तक निभाया। देहाती स्त्रियां पानी की खातिर जो यातनाएं झेल रही थीं उनसे और पाखाने के अभाव में अप्रतिष्ठित होती देहाती औरतों की परेशानियों से लोहिया बहुत बेचैन होते थे। फांसी

की सजा तो लोहिया को हमेशा जंगली और असभ्य ही लगती रही। जब भी कभी पुलिस की गोलीबारी और समूह के हिंसाचार में लोग मरते थे, लोहिया बिफर उठे हैं। अन्याय के विरुद्ध क्रोध और विद्रोह लोहिया के व्यक्तित्व के अभिन्न अंग थे। किसी भी प्रकार को अन्याय हो, आगा-पीछा सोचे बिना, बड़ी तत्परता के साथ लोहिया उसके विरोध में डट कर खड़े हो जाते थे। गैरकानूनी हिरासत के विरुद्ध न्यायालयों में दिए गए वक्तव्यों, वांशिक पक्षपात के विरोध में अमेरिका में ठना सत्याग्रह, नेफा (अरुणाचल) और गोवा में प्रवेश पर लगाई गई पाबंदी को तोड़ना, सरकारी अर्थात जनता के स्वामित्व के विश्रामगृहों में निवास पर रोक लगाने वाले हुक्म के विरोध में प्रत्यक्ष कार्यवाही, आदि प्रसंगों में लोहिया के उपरोक्त गुण-विशेष के दर्शन होते थे। लोहिया का सत्याग्रह का निर्णय प्रायः बहुत बड़े तत्व के निर्वाह के लिए ही रहा था।

लोहिया की सत्ता से विरक्ति का प्रमुख कारण आपकी विद्रोही आत्मा है। गांधीजी के प्रेम और आशीर्वाद तथा पंडितजी के स्नेह और निकटता के बावजूद लोहिया हमेशा सत्ता से दूर ही रहे हैं। किसी भी प्रकार की और कोई भी सत्ता, उन्हें कभी डरा न सकी। लोहिया को शिकायत थी कि भारत के विरोधी पक्षों में छोटे-मोटे सत्ता-स्थानों के लिए ही संघर्ष दिखाई देता है परंतु संपूर्ण सत्ता पाने की ललक का अभाव ही है, लोहिया को विश्वास था कि परिवर्तन का साधन केवल सत्याग्रह नहीं है बल्कि सत्ताग्रहण भी है। फिर भी लगता है कि कहीं तो भी आपके मन में यह आशंका रही होगी कि सत्ता की बेड़ी में जकड़े जाने पर सत्य के लिए झगड़ना संभव नहीं होगा। चौथे आम चुनावों के बाद राष्ट्रपति पद अथवा प्रधानमंत्री पद के लिए लोहिया के नाम की चर्चा थी, इस पर लोहिया ने हंस कर टिप्पणी की थी, 'राष्ट्रपति बनने पर मेरा पहला काम होगा समूची सेना को बरखास्त कर देने का !'

जिस तरह सत्ता कभी लोहिया को बांध न सकी उसी तरह न कांचन और न कंगन उन्हें कभी आकर्षित कर सके। लोहिया की न कभी अपनी जमीन-जायदाद थी, न अपना घर-संसार था और न बैंकखाता था। अपने अंत तक इनमें से कुछ भी कभी अपना न रहा हो ऐसे बिरला नेता थे लोहिया ! आखिरी कुछ वर्षों में, जहां हकदार बन कर रहा जा सके ऐसा मकान उन्हें पहली बार मिला था और वह भी क्या था—संसद सदस्यों को दिया जाने वाला किराए का मकान ! अपनी शेष सारी जिंदगी लोहिया ने अनिकेतन ही बिताई थी। लोहिया अविवाहित थे। उनकी मान्यता थी कि 'मनुष्य के दो प्राप्तव्य होते हैं—ईश्वर और स्त्री ! इनमें से ईश्वर को तो मैंने कभी देखा ही नहीं है और मुझे ऐसी कोई स्त्री नहीं मिली जो मुझे स्वीकार कर सके !' स्थिति कुछ अलग थी, लोहिया के प्रति आकर्षित स्त्रियों की संख्या कम नहीं थी। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के परे राष्ट्र विभाग के सचिव के नाते लोहिया जब इलाहाबाद में तीन साल थे तब कांग्रेस समाजवादी पार्टी की श्रीमती पूर्णिमा बैनर्जी के साथ लोहिया के स्नेह संबंध अच्छे खासे थे यहां तक कि लोहिया-मित्रों को इनके विवाह के समाचार की उत्सुक-प्रतीक्षा थी। इसके बाद भी

कतिपय अन्य स्त्रियों के भी आप अच्छे मित्र रहे, इन्हीं में से एक के साथ अंत तक उनका मित्रतापूर्ण साहचर्य था, परंतु लगता है तब तक लोहिया का विवाह-संस्था या व्यवस्था से विश्वास उठ गया था। इसके साथ ही लोहिया की इस मान्यता का भी अपना महत्व है, 'पत्नी और बच्चों के कारण, संभव है सार्वजनिक कार्यकर्ता भ्रष्ट हो जाए।' बावजूद इन सब के स्त्री के प्रति आपका विशेष दृष्टिकोण था—स्त्रियों की सामाजिक स्थिति, उनकी व्यथा-वेदनाओं को लेकर प्रांजल-सहज बोध और सहानुभूति ! दिखावटी स्त्री दाक्षिव्य की तुलना में उक्त गुण-विशेष बहुत अधिक श्रेष्ठ है। लोहिया ने स्त्री-आत्मा को पहचाना था। 'स्त्री के पावित्र्य और चारित्र्य का एकमात्र निकष योनिशुचिता नहीं है', यह लोहिया की स्पष्ट मान्यता थी। इसी तरह स्त्री-पुरुष संबंध में विश्वासघात को लोहिया सब से बड़ा अपराध मानते थे। बोलचाल और व्यवहार में, स्त्रियों के साथ लोहिया जितने मुक्त और खुले दिल से पेश आते थे उतने ही वे मर्यादाशील थे। जब कभी किसी के घर पर भोजन का अवसर होता तब वे रसोई में जाते थे और अन्नदात्री से बड़े स्नेह से पूछताछ किया करते थे। देश-विदेश की कई महिलाओं ने अपना दुखड़ा लोहिया के पास रोया है, 1957 के संसद चुनावों में ग्वालियर से रानी के विरोध में मेहतरानी को खड़ा कर उसके लिए दर दर की खाक छानने का साहस लोहिया के सिवा अन्य कौन-सा नेता कर पाता! लोहिया का आग्रह था कि सार्वजनिक जीवन-व्यवहारों में शोषितों-पीड़ितों के साथ साथ महिलाओं को भी प्रगति के विशेष अवसर प्राप्त करा देने चाहिए। गांधीजी के बाद स्त्रियों को राजनैतिक विचारों और कार्यक्रमों में अग्रस्थान देने वाले लोहिया पहले नेता रहे हैं।

सामान्य जनों से अपने को अलग रखने-करने के लिए बुद्धिजीवियों और नेताओं का रहन-सहन, चाल-ढाल, बात-बर्ताव की अपनी विशेष प्रयत्नों से गढ़ी जीवन-शैली होती है। परंतु लोहिया को ऐसी शैली से पूरी घिन थी। कुल मिलाकर लोहिया की जीवन-शैली और जीवनमान के तौर-तरीके साधारण जनों की भांति सीधे- सादे, सरल थे। इसलिए साधारण कार्यकर्ताओं, और सामान्य जनों तथा लोहिया में कभी खाई या बड़ा फासला बना ही नहीं। लोहिया नेतावर्ग में जितने प्रिय थे उससे अधिक अनुयायी वर्ग और कार्यकर्ताओं में प्रिय थे और लोहिया के अतिरिक्त अन्य कोई ऐसा नेता समाजवादी पार्टी में नहीं था। लोहिया की पोशाक भी सादी होती थी, खद्दर का कुर्ता, कभी कभार जाकिट, धोती बस ! भूले-बिसरे अपवादों को छोड़, देश में ही नहीं विदेशों में इसी वेश में बिना किसी झिझक के लोहिया घूमा करते थे। कई वर्षों तक लोहिया ने सिगरेट पीने और कॉफी हाउस में बैठकर कॉफी पीने का शौक पाल रखा था। परंतु जैसे ही उन्होंने पाया कि उनके अनुयायी सिर्फ सिगरेट और कॉफी पान का ही अनुकरण करने लगे हैं, आपने दोनों शौक एकबारगी बंद कर दिए थे। सड़क के किनारे के 'कंट्री होटल' में चाय-पकौड़ों का स्वाद लेने में उन्होंने कभी हीनता का अनुभव या ओछापन नहीं महसूस किया।

यह सही है कि लोहिया ने कभी अपनी जाति की कद्र नहीं की परंतु यह भी सही है कि लोगों ने कभी लोहिया की जाति को नहीं भुलाया। विरोधी कांग्रेस सांसदों ने 'सूदखोर

मारवाड़ी का बच्चा' कहकर संसद् तक में उन्हें बख्शा नहीं था। अमेरिका में भी एक गोरे व्यक्ति ने लोहिया से जाति पूछी थी। परंतु लोहिया ने अपनी जाति से राजनीति में कभी कोई ऐसा काम नहीं लिया और उन्हें अपनी जाति का कभी लाभ हुआ भी नहीं। राजनैतिक कामों के लिए लोहिया की जाति ने उन्हें कभी धन नहीं दिया। कुछ मित्रों के कहने पर एक बार लोहिया मारवाड़ी व्यापारियों के पास धन के लिए पहुंचे थे तब सब ने एक स्वर में उन्हें दो टूक बात सुनाई थी, 'आप तो व्यापारियों को खत्म करने पर आमादा हैं भला आपको पैसा क्यों दें ? नेहरू के साथ आप समझौता कर लें पैसा आपके पैर चूमेगा।'

लोहिया नास्तिक थे और किसी भी प्रस्थापित-प्रचलित धर्म-संप्रदाय की उन्हें कोई चिंता नहीं थी। परंतु ईश्वरनिष्ठा और मौलिक धर्म के मानव-जीवन में होने वाले महत्व की आप कद्र करते थे। लोहिया ने भारतीय संस्कृति के हिंदू-दर्शन में निहित कतिपय दोषयुक्त और विघातक तत्वों पर जोरदार आघात किया है परंतु चराचर प्रकृति के साथ तद्रूपता स्थापित करने वाले हिंदू-दर्शन के विशेष गुणों से आप बहुत प्रभावित थे। भारतीय संस्कृति में निहित उन सूत्रों की तलाश लोहिया को लगातार रही कि जिनके सहारे मानवमात्र को स्नेहसूत्र में पिरोकर नए भारत को गढ़ा जा सके। लोहिया की दृष्टि में 'राम-कृष्ण-शिव' चरित्रों की ऐतिहासिक प्रामाणिकता महत्व की नहीं है बल्कि आपने अपनी इसी शीर्षक वाली पुस्तक में यह जानने का प्रयास किया है कि इन तीन महान चरित्रों ने मानवमात्र के लिए उपयोगी कोई संदेश भी दिया है ! लोहिया की मान्यता है कि कृष्ण पूर्व-पश्चिम भारत की एकता के प्रतीक हैं और राम, उत्तर-दक्षिण भारत की एकता के ! मर्यादा पुरुषोत्तम और एकवचनी राम मानव और शासक के लिए आदर्श-पुरुष हैं। लोहिया के लिए कृष्ण यानी 'मानव बनने की लगातार कोशिश करने वाले देवता हैं' और कृष्ण का यह संदेश है कि 'भगवान आसमान में नहीं बल्कि इसी धरती पर सामान्यजनों में ही बसता है, उसे ढूंढ़ा जाए !' शिव के चरित्र के संबंध में लोहिया कहते हैं कि 'शिव के हर कर्म के कारण ढूंढ़ने नहीं पड़ते, इसी तरह मनुष्य के हर कर्म का औचित्य कर्म के साथ साथ ही सिद्ध होना चाहिए।' इसलिए लोहिया प्रार्थना करते हैं। "हे भारत माता ! हमें शिव की बुद्धि, कृष्ण का हृदय और राम की वचन और कर्म की शक्ति प्रदान करें !" महाभारत की द्रौपदी, लोहिया की दृष्टि में आदर्श स्त्री है। "द्रौपदी की निर्भयता, साहस, समझदारी, ज्ञान और प्रसंगावधानता जैसे गुणों से युक्त कोई स्त्री किसी भी अन्य राष्ट्र में और न अन्य किसी कालखंड में है।"

लोहिया, यद्यपि सांप्रदायिकता और पाखंड-दंभिता के कट्टर विरोध में थे तथापि इनमें और धार्मिक कल्पनाओं के बीच के अंतर को भली-भांति समझते थे। धर्म से उनकी कुछ अलग-से अपेक्षाएं थीं! 'धर्म को चाहिए कि अपने में निहित कलहात्मकता, और वर्तमान आर्थिक तथा सामाजिक व्यवस्थाओं की रक्षा करने की प्रवृत्तियों का त्याग करे और ऐसा न करने वाले धर्म का हमें तिरस्कार करना चाहिए'। धर्मवादी इस बात पर गौर करें कि हर धर्म मे मूलभूत अपूर्णता है। धर्म की ओर से दिए जाने वाले नैतिक आचरण और

सदाचार के संदेश के तथा दी जाने वाली करुणा और साधना की प्रेरणा के लोहिया कायल हैं। लोहिया को लगता है कि जीवन में व्याप्त अपवित्रता को दूर करने तथा भौतिकता के परे मन और आत्मा से संबंधित धर्मकल्पनाएं बहुत उपयुक्त हो सकती हैं।

बहुआयामी व्यक्तित्व वाले लोहिया का एक अति आकर्षक पहलू है जिसे बहुत कम लोग जानते हैं। लोहिया पढ़त पंडिताऊपन और निर्दय राजनीति के कायल कभी नहीं रहे, जीवन को अपनी समग्रता में देखना उन्हें पसंद था। एक बार आपके अंतरंग मित्र ने आपसे प्रश्न किया, 'आप का जीवन-दर्शन क्या है ?' लोहिया का तुरंत उत्तर था, 'एवर ग्रीन लाइफ !' लोहिया सुंदरता के तलबगार थे, सुंदरता के रसिक पुजारी थे। 'भारत छोड़ो' क्रांतिकाल खंड में जब लोहिया लाहौर की जेल में थे तब वहां की चांदनी ने उन्हें बहुत प्रभावित किया था, उसके सौंदर्य वैभव से आप आकर्षित थे। ठीक यही आकर्षण आपको झुग्गी-झोपड़ी में रहने वाले छोटे-से रेंटभरे बालक की तुतली बोली और बहुत कुछ कहती, जिज्ञासा भरी आंखों में भी लगता था। मानव सौंदर्य के संबंध में लोहिया की मान्यताएं रंग और देश के परे की थीं। सांवली द्रौपदी ही उन्हें आकर्षक नहीं लगती थी, काली निग्रो अंगना का भी उन्हें वही आकर्षण था जो किसी गौरांगना के प्रति था, तीनों उन्हें एकसमान मोहक लगती थीं। प्राचीन और आधुनिक भारतीय साहित्य और नक्षत्र मंडल के आप मर्मज्ञ, रसिक पारखी थे। संगीत, सिनेमा, नृत्य और चित्रकला में भी आपको एक समान रुचि थी। लेकिन शिल्पकला आपको अधिक पंसद थी, इसी तरह आपको स्थापत्य-कला में भी रुचि थी। अपने भागदौड़ भरे जीवन की प्रवृत्तियों से जब भी फुरसत मिलती तब तब आपने कभी कोणार्क की, तो कभी खजुराहो की, कभी मीनाक्षीपुरम् की तो कभी अजंता-वेरूल की कई बार यात्राएं की हैं। कई दिन वहीं ठहर कर शिल्पों को घंटों निहारते रहते थे। सिर्फ देखते ही नहीं थे, उन पर सौंदर्यास्वादन भरे लेख भी लिखते थे। लोहिया की आदत थी कि वे संगीत, नृत्य, शिल्प, चित्र आदि ललितकलाओं के मर्मज्ञ विद्वानों के साथ कॉफी पीते हुए चर्चा किया करते थे; लोहिया की विषय की अद्यतन जानकारी, सौंदर्यास्वादन की दृष्टि तथा मूलगामी, नवीन दृष्टि से की गई विवेचना से विद्धत्मंडली दंग रह जाती थी।

लोहिया उस कवि प्रकृति के जीव थे जिन्होंने कविता की एक पंक्ति तक कभी नहीं लिखी थी। लोहिया के पास महाकवि की संवेदनक्षम मानसिकता, भव्योदात्त कल्पना विलास, उत्तुंग और प्रगल्भ प्रतिभा के साथ साथ वचन प्रवीणता, सकल कलाओं और सभी विधाओं का ज्ञान, और कवित्त-विवेक का पूरा भंडार था और इन सब के साथ महाकवि जैसी विनम्रता भी थी। कहते हैं कि 'जो न देखे रवि सो देखे कवि !' जब लोहिया ने कन्याकुमारी में सागर-शिला पर खड़े विवेकानंद की मूर्ति देखी तब सहसा पूछा कि 'महाप्रयाण के समय विवेकानंद का मुख किसकी तरफ होगा ? सागर की तरफ या भारत भूमि की तरफ ? विवेकानंद क्या चाहते थे ? भारतीय परंपरा विश्व के प्रति अर्पित करना चाहते थे अथवा विश्वभावना भारत माता के प्रति अर्पित करना चाहते थे ?' बिना पारपत्र-पासपोर्ट

के किसी भी देश में आने-जाने की सुविधा हो, संसार भर में कहीं भी जीने-मरने की स्वाधीनता हो, विश्व संसद और विश्व सरकार जैसी कल्पनाएं यद्यपि लोहिया की विश्वात्मक एकता के अनुकूल हैं तथापि फिलहाल तो कवि कल्पना—भट्टमंडल के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है, आकाश को सीमा मान कर ऊंची उड़ान भरने वाली कवि कल्पनाएं मात्र हैं।

लेकिन इसके साथ यह भी ध्यातव्य है कि लोहिया की सौंदर्यदृष्टि उनके उत्तुंग विचारों में निहित काव्यात्मकता, सहृदयता, आदि गुणों से प्रभावित युवा साहित्यकारों की एक पूरी पीढ़ी इन दिनों न केवल हिंदी में बल्कि अन्य भारतीय भाषाओं में भी कार्यरत थी।

जब भी कभी लोहिया ऐतिहासिक और पौराणिक स्थलों की यात्रा करते थे तब लगता है कि उनकी बुद्धि और मन अतीत की अतल गहराइयों में प्रवेश कर उस अतीत को आंखों के सामने उपस्थित कर देते थे। लोहिया जब प्लासी के मैदान पर पहुंचे थे तब उनके मुख से सहसा उद्वेगजनक उद्‌गार निकले, "यहीं पर भारत पहली बार गुलाम हुआ करता था !" गौंड राजाओं के प्रदेश में पहुंचते ही वहां की मिट्टी को अपने माथे चढ़ा लिया था। दिल्ली की पहली सुलताना रजिया की उध्वस्त कब्र को देखकर उन्हें स्वतंत्र और साहसी स्त्री की प्रतिमूर्ति का स्मरण हो आता था।

इतिहास, अर्थशास्त्र और दर्शनशास्त्र लोहिया के अध्ययन के विशेष-विषय थे। अतीत और वर्तमान काल की घटनाओं और इनके प्रेरक कारणों और इनके बीच के अंतःप्रवाहों के अचूक ज्ञान के साथ मूलगामी मर्मज्ञदृष्टि के कारण लोहिया के प्रतिपादित कई अंदाज इस कदर सत्य सिद्ध हुए कि विद्वानों को आश्चर्यमात्र हुआ। आज भी लोहिया के कई अंदाज सत्य सिद्ध होने की प्रतीक्षा में, बिल्कुल कगार पर खड़े हैं कि कल्पना से सत्य बन जाएं। उदाहरणार्थ 'इस सदी के अंत से पहले, या तो गांधीजी अणुबम से परास्त हों या अणुबम गांधीजी से परास्त होगा !', 'पाकिस्तान सरकार के लिए बहुत मुश्किल है कि वह पूर्व बंगाल को बांधे रख सके, आज नहीं तो कल पूर्व बंगाल स्वाधीन होकर रहेगा !', 'जिस तरह पूंजीवाद जनता को पेट भर रोटी नहीं दे पाता उसी तरह कम्युनिज्म भी नहीं दे पाएगा !', 'यह चर्चा निरर्थक है कि नेहरू के बाद कौन ? तय है कि नेहरू कन्या ही शासन की बागडोर संभालेगी', 'इस -1967 के आम चुनावों में समूचे हिंदीभाषी प्रांतों में कांग्रेस को मुंह की खानी पड़ेगी !', 'दिन-ब-दिन सरकार अधिकाधिक हिंसाचारी होती जा रही है, अगर यही क्रम जारी रहेगा तो किसी दिन जनता में से ही उठने वाले हत्यारे का हाथ गृहमंत्री, प्रधानमंत्री की ओर उठेगा !'

लोहिया ग्रंथों की रचना नहीं कर पाए। आपका व्यक्तित्व और समूचा जीवन कर्मप्रधान था। प्रमुखतः कर्मप्रेरक विचारों के प्रतिपादन के लिए और कर्म के स्पष्टीकरण के लिए ही आपने कभीकभार कलम चलाई है, कुछ निबंध इसी की निष्पत्ति हैं। आप 'कांग्रेस सोशलिस्ट', 'खोज' 'मैनकाइण्ड', 'जन', 'कृषक' आदि पत्रिकाओं के संपादक थे इसलिए बहुत सारे संपादकीय लेखन और टिप्पणियां आपने की हैं। प्रसंगोपात्त निवेदन भी लिखे

हैं, समाचारपत्रों के संवाददाताओं के साथ भेंटवार्ताएं की हैं। इनका संकलन-संपादन करते हुए लोहिया के चहेतों और अनुयायियों ने लगभग सभी भारतीय भाषाओं में छोटी-बड़ी पुस्तकें प्रकाशित की हैं, इन्हें भारतीय वैचारिक साहित्य में बहुत ही महत्वपूर्ण योगदान समझना चाहिए। देशभर में पढ़ी जाने वाली इन पुस्तकों की विशेषता है कि इनमें लोहिया के शब्द प्रभुत्व के साथ सूत्ररूप, सारगर्भ, और आकर्षक शैली के विलक्षण प्रभावों के दर्शन भी होते हैं। आकर्षक, मार्मिक और सुभाषितनुमा वाक्यों से सजी आपकी कथनशैली के कुछ नमूने यों हैं :—'भाकरी और स्वातंत्र्य एकरूप हैं !', 'सिकंदर की ओर से सुकरात की ओर ले जाने वाली शिक्षा व्यवस्था की आज आवश्यकता है !', "सत्य वह एक रेषा है जिसके एक छोर पर 'हां' है तो दूसरे छोर पर 'ना' ! और बीच-बीच में 'हां-ना' की मिली-जुली छटाएं हैं !", 'राजर्नीति अगर अल्पकालिक धर्म है तो धर्म दीर्घकालीन राजनीति है !', 'निर्बल सत्य कदापि सत्य नहीं हो सकता !', 'बिना रचना के संघर्ष, बिना क्रिया के वाक्य की तरह है !' 'जिंदा कौमें पांच साल तक इंतजार नहीं किया करतीं !' 'जालिम वहीं पलते हैं जहां दब्बू रहते हैं !'

अपने इकतीस वर्षों के राजनैतिक जीवन में आखिरी पांच वर्षों में लोहिया को सर्वाधिक लोकप्रियता मिली। परंतु लोहिया को पूरा भान था कि लोकप्रियता का अभिप्राय कभी शक्ति का पर्यायी नहीं होता। अपनी जनप्रियता की सीमाओं को रेखांकित करते हुए अपनी मौत से पहले लोहिया ने एक बार कहा था, "एक विशिष्ट दृष्टि से देखने पर पता चलता है कि भारतीय राजर्नीति में मेरा अपने आप में एक महत्वपूर्ण स्थान है। वैसे मेरी जनप्रियता दो-तीन दशकों से अधिक अवधि की है लेकिन यह भी सही है कि अन्य किसी भी नेता की अवधि से मेरी अवधि कम नहीं है। परंतु मुझे नहीं लगता कि इस जनप्रियता में कोई अपनी शक्ति है, और ऐसा दावा तो मैं कतई नहीं कर सकता; लेकिन यह भी तय है कि बिना शक्ति की जनप्रियता सही माइने में नेतृत्व नहीं कर सकती। मेरी शक्ति मेरे विचारों और सिद्धांतनिष्ठा में है।"

सांवली, नाटी-सी पहलवानी सांचे में ढली लोहिया की मूर्ति विशाल माथा, चश्मे के शीशों में चमकने वाली तीखी, बींधने वाली नजर, आत्मविश्वास की दृढ़ता और गहराई का संकेत देने वाली ठोड़ी, ओठों के किनारों से छलकती शरारतभरी नटखट-सी हंसी, दिलदार खुली तबियत, उत्फुल्ल मानसिकता, आदि प्रमुख विशेषताएं हैं लोहिया के व्यक्तित्व की।

लेकिन अपने मानस पिता और गुरु की-सी मृदु और संयमशील वाणी का कहीं नामोनिशान तक लोहिया में नहीं था। ढोंग, उक्ति विरुद्ध कृति, झूठ, अप्रामाणिकता से लोहिया को बेहद नफरत थी, और इसके आवेश में वे किसी का भी मुलाहिजा नहीं करते थे। ऐसे अवसरों पर लोहिया की तीखी, तेज-तर्रार, मर्मांत तक पीड़ा पहुंचाने वाली वाणी धाराप्रवाह फूट पड़ती थी। निष्कपट, प्रांजल और सीधे-सादे स्वभाव वाले लोहिया की स्वाभाविक प्रतिक्रिया इसी तरह आघात करती थी। लेकिन इसका एक परिणाम दिल-दुखाने में होता था और कई बार तो ऐसे व्यक्ति सदा के लिए उनसे दूर हो जाते थे। यह बात

वैयक्तिक बातचीत में ही नहीं सार्वजनिक वक्तव्यों में भी होती थी जिससे लोहिया ने ख्वाहमख्वाह अपने कई शत्रु निर्माण किए। कुल मिलाकर घमंडी, शोर करने वाला, विक्षिप्त, सनकी, असभ्य, जैसे कई नकारात्मक विशेषण भी लोहिया के व्यक्तित्व से चिपक गए थे। इस व्यक्तित्व के निर्माण के पीछे लोहिया के वक्तव्य उतने कारण न थे जितने विरोधियों के जान, बूझकर किए गए प्रयत्न थे। अन्य संदर्भों में प्रिय लगने वाले व्यक्तित्व का यह कुछ कुछ अप्रिय अंग था।

भारत के अंग्रेजी समाचारपत्र और अंग्रेजीदां लोग तो लोहिया से सीधे सीधे नफरत ही करते थे। इसके कारणों पर विचार करते हुए स्वयं लोहिया कहते हैं, "मेरी मति में इस व्यवहार का एक ही कारण संभव है, भारत के बौद्धिक जीवन के नियंता नेहरू हैं और अगर उनके साथ मेरे संबंध बोलचाल के और मित्रतापूर्ण होते तो इस प्रकार से असत्य और अनाप-शनाप बोलने की हिम्मत किसी को न हुई होती और कम-से-कम समाचारपत्रों में ऐसी खबरें कभी न छपतीं। मुझ पर आरोप और आपत्तियां करने वाले भारतीय शासन चलाने वालों के तगड़े समर्थक हैं और मैं उनके विचारों का उतना ही तगड़ा विरोध करता हूं। इसके साथ निहित स्वार्थों से ओतप्रोत और प्रभावशाली शक्तियां भी इनकी हां में हां इसलिए मिलाती चल रही हैं कि मैंने हमेशा भारतीय समाज की पुराणपंथी नींव को तहस-नहस करने के उद्देश्य से उस पर लगातार कठोर से कठोरतम आघात किए हैं, इससे तिलमिलाए दकियानूस भी मेरे विरोध में ताल ठोंक कर खड़े हो गए हैं।"

लोहिया की वाणी इस कदर क्रुद्ध और बेकाबू क्यों हो जाती थी इसके कारण पर उन्हीं के अत्यंत निकट मित्र रामनंदन मिश्र कुछ यों कहते हैं—"बहुत सारे लोग मुझसे सवाल करते हैं कि लोहिया की वाणी को लगाम लगाने के लिए मैं कुछ क्यों नहीं करता? मेरा साफ निवेदन है कि 'भाई मेरे ! यह निरा असंभव है !' लेनिन की वाणी में भी इसी तरह की तीखी, पैनी कटुता थी और लेनिन के लिए भी लोग यही सवाल करते थे कि आप इस तरह से क्यों पेश आते हैं ? इस पर लेनिन उत्तर देते थे, 'जिनके हृदय में शोषितों के दुख की आग भभक भभक कर जल रही हो उनकी वाणी में कोमल-मुलायम मिठास कहां से और कैसे आएगी ? राममनोहर जिस आग से पीड़ित थे उसकी अभिव्यक्ति आसावरी के मधुर-मीठे स्वरों में तो नहीं हो पाएगी !' नामवर साहित्यिक डा0 रघुवंश लोहिया के स्वाभाव पर टिप्पणी करते हुए लिखते हैं, 'डा0 लोहिया को जिस संगठित शक्ति के विरोध में संघर्ष करना था उसके लिए आक्रामक होना लोहिया के लिए अनिवार्य आवश्यकता थी और यह भी सही है कि क्रांतिकारिता के लिए आक्रामक होना लाजमी भी होता है!'

लोहिया के व्यक्तित्व का एक आयाम यह भी बताया जाता रहा कि वे कट्टर नेहरू-विरोधी हैं। इस पर लोहिया की टिप्पणी बड़ी मार्मिक है, "यह चेहरा ऐसा था कि कभी हमने भी मुहब्बत की थी। अब मैं मुहब्बत बिल्कुल नहीं करता हूं। हमेशा मुझ पर हमला किया जाता है कि मुझे नेहरू खानदान से रोगग्रस्तता है। किसी पंथ को हानिकारक समझने वालों का धर्म हो जाता है कि उस पंथ के उद्गम स्थान पर हमला करें और उसके सबसे बड़े आदमी की असलियत खोलें। मैंने इससे ज्यादा कछ नहीं

कोई निजी द्वेष नहीं है। लेकिन पचास लाख बड़े लोगों ने उनकी नकल करते हुए देश को बरबाद कर दिया है। इसलिए मुझे आलोचना करनी पड़ती है। मैं नहीं जानता कि अपने हृदय और मस्तिष्क को खोलकर या चीरकर किस तरह यह दिखाऊं कि इसमें कोई दुर्भावना नहीं बसती।"

प्रस्तुत संक्षिप्त जीवनचरित उस राममनोहर लोहिया की जीवनयात्रा अंकित करने का अल्प-सा प्रयास है जिसके व्यक्तित्व पर विवादों और गलतफहमियों के कालेकाले बादलों की छाया घिरी हुई है। लोहिया की जीवनगाथा भारत माता और पृथ्वी माता को अपने आदर्शों के मुताबिक गढ़ने, तराशने के लिए किए गए अविरत प्रयत्नों, विचारों और कर्मों की महान कथा है। इसकी सफलता-असफलता का फैसला स्वयं काल ही यथावकाश करेगा। लेकिन अपनी मौत से पांच साल पहले लोहिया ने कहा था, "लोग मेरी बात सुनेंगे, शायद मेरे मरने के बाद, लेकिन किसी दिन सुनेंगे जरूर !"

2

उदयोन्मुख तारा

1 अगस्त 1920 बरसात का महीना, बंबई की बारिश के क्या कहने ! धुआंधार पानी बरस रहा था। लोकमान्य तिलक की मौत की खबर सुनकर शोक संतप्त बंबई निवासी सड़कों पर इकट्ठा हुए। बंबई में सख्त हड़ताल हुई, सारा कारोबार ठप्प हो गया। स्कूलों से सारे विद्यार्थी भी हड़ताल में शामिल होने के लिए सड़कों पर उतर आए।

मारवाड़ी माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थियों का नेतृत्व दस वर्ष के राममनोहर ने किया।

1 अगस्त को ही, महात्मा गांधी के नेतृत्व में कांग्रेस ने अपने असहकार-आंदोलन का आरंभ किया; गांधीजी के आह्वान पर देश के हजारों विद्यार्थियों की भांति राममनोहर ने भी एक साल के लिए अपने स्कूल की छुट्टी कर दी और पूरी लगन से असहकार आंदोलन में शरीक हो गया। बाल-सुलभ आवेश और उत्साह में उसने एक बार ट्राम का तार तक तोड़ दिया था।

अपनी तेज और तीखी बुद्धि, धारा प्रवाह वक्तृत्व, अच्छी अंग्रेजी के कारण राममनोहर अपने विद्यार्थी जीवन में नामवर थे।

अकबरपुर (उत्तर प्रदेश) में राममनोहर माध्यमिक स्कूल में पढ़ रहे थे कि उनके पिताजी ने अपने व्यवसाय को जमाने हेतु बंबई में आ जाना पसंद किया।

जिला फैजाबाद, तमसा नदी के किनारे बसा अकबरपुर, राममनोहर का जन्मग्राम; रामजन्मभूमि अयोध्या यहां से नजदीक है। पिताजी का नाम हीरालाल और माताजी का चंद्री। इकलौती संतान राममनोहर का जन्म 23 मार्च 1910 को हुआ था। वैसे लोहिया परिवार का मूल स्थान उत्तर प्रदेश का मिर्जापुर रहा और बरसों से लोहे का कारोबार करने से परिवार 'लोहिया' नाम से मशहूर था। राममनोहर के दादाजी शिवनारायण और दादाजी के भाई बिशुनदयाल लोहे के व्यवसाय में जमे हुए थे और साथ साथ कांग्रेस का काम भी पूरी लगन से करते थे।

किसान-आंदोलन के सिलसिले में जवाहलरलाल नेहरू एक बार अकबरपुर आए

थे और सहज ही था कि लोहिया परिवार के मेहमान थे; यही पहला अवसर था जब राममनोहर ने जवाहरलालजी के दर्शन किए। जवाहरलालजी ने बाल ठीक-ठाक करने हेतु कंघी और आइना चाहा ही था कि बालक राममनोहर ने अपनी जिज्ञासा प्रकट की, "ये गंजे साहब कंघी से आखिर संवारेंगे भी तो क्या संवारेंगे ?"

राममनोहर के दादाजी शिवनारायण के चार बेटे थे, राममनोहर के पिताजी हीरालाल, अपने भाइयों में सबसे छोटे थे। माताजी चंद्री सरयू के किनारे बसी मिथिला नगरी की थीं। लोहिया परिवार के कई पुरुषों की मौत असमय हुई थी और अपने इकलौते बेटे को इस दुस्सह सिलसिले से बचाने के इरादे से माता चंद्री ने पारंपरिक विश्वास के अनुसार राममनोहर को किसी मेहतरानी को या मुसलमान बहन को आधे पैसे में बेच दिया था। इस अवसर पर राममनोहर मुश्किल से दो-ढाई साल का रहा होगा कि मातृसुख से वंचित हो गया। राममनोहर के बड़े ताऊजी गणेशनारायण की पत्नी ने अपने सबसे छोटे देवर को यानी राममनोहर के पिताजी हीरालाल को गोद लिया था। माता चंद्री के देहावसान के बाद इसी दादी ने राममनोहर का पालन-पोषण किया, बालक राममनोहर अपनी जन्मदात्री माता को जानता नहीं था और स्वाभाविक रूप से वह इसी दादी मां को मां के रूप में जानने लगा था। बढ़ती आयु के साथ राममनोहर के सामने यह पहेली उलझकर आई कि पिताजी की और मेरी माता एक ही कैसे होगी ?

आसपास की महिलाओं का मातृविहीन बालक राममनोहर को दुलार बहुत मिलता रहा। इनमें से एक सुनारिन थी तो एक सरजू नाइन। सरजू का भरसक प्यार राममनोहर को मिलता रहा, सरजू का बेटा रामानंद राममनोहर का लंगोटी यार था और दादी मां भी इन्हें साथ साथ खिलाती-पिलाती थी।

अकबरपुर की टंडन-पाठशाला से अपनी प्राथमिक शिक्षा पूरी कर, यहीं के विश्वनाथ विद्यालय की पांचवीं कक्षा में राममनोहर ने दाखिला लिया था। अपनी कक्षा में राममनोहर प्रायः अव्वल रहा करता था, खेल-कूद में भी राममनोहर अपना सानी नहीं रखता था, इसी उम्र में वह बांसुरी बजाने में माहिर हुआ था। सरजूदेई ने वही बांसुरी कई वर्षों तक संजोकर रखी थी।

जब राममनोहर बारह साल का था तब उसकी मां का यानी दादी मां का निधन हुआ और पिताजी हीरालाल ही अब राममनोहर की माता भी बन गए। हीरालालजी ने दूसरा ब्याह इसलिए नहीं किया कि बेटे राममनोहर को सौतले होने की यातनाएं झेलनी न पड़ें। हीरालालजी कटहल की भांति कर्तव्य-कठोर पर आंतरिक कोमलता की प्रतिमूर्ति थे। दकियानूसी प्रथाओं और पुराने रीति-रिवाजों के कायल तो वे कतई न थे लेकिन भारत के प्राचीन इतिहास और संस्कृति पर उन्हें गर्व था। बेटा राममनोहर भारतीय संस्कृति से बखूबी परिचित हो, इसलिए हीरालालजी ने बड़ी सूझ-बूझ के साथ उसको संस्कृत पढ़ाई थी।

हीरालाल जब अकबरपुर से बंबई आए तब छोटा राममनोहर भी उनके साथ बंबई

आया और मारवाड़ी विद्यालय में दाखिल हुआ। हीरालालजी अपनी कांग्रेस सेवा में बंबई में जुटे रहे। महात्मा गांधी के असहकार-आंदोलन पूर्व प्रचार, बहिष्कार, स्वदेशी और स्वराज की भावनाओं के कारण बंबई का वातावरण प्रभावित था। जैसे ही आंदोलन शुरू हुआ मारवाड़ी विद्यालय के हड़ताली विद्यार्थियों का नेतृत्व करते हुए राममनोहर ने अपने राष्ट्रीय आंदोलन में हिस्सेदारी की।

अपने अलग तौर-तरीकों और विशिष्ट राजनीति के साथ भारतीय राजनैतिक मंच पर उभरते गांधीजी के नेतृत्व को लेकर भारतीय जनमानस में बड़ा कुतूहल था। कुतूहल मूर्ति गांधीजी के दर्शन करने का सौभाग्य बालक राममनोहर को अपने पिताजी के कारण प्राप्त हुआ। पहली मुलाकात में ही गांधीजी की अमिट छाप राममनोहर पर पड़ी। परिवार के बुजुर्गों के अतिरिक्त किसी के चरण छूने को राममनोहर हमेशा सकुचाता था परंतु उस दिन गांधीजी इसके अपवाद हो गए।

1925 में राममनोहर ने 61 प्रतिशत गुणों के साथ अपनी कक्षा में अव्वल होकर मैट्रिक की परीक्षा पास की। इसी के साथ मानो राममनोहर अपने बालकपन की कसौटी भी पार कर गया।

राममनोहर के महाविद्यालयीन जीवन का आरंभ वाराणसी में महामना पंडित मदनमोहन मालवीय द्वारा स्थापित बनारस हिंदू विश्वविद्यालय में हुआ। सुनहली फ्रेम के चश्मे से चमकती आंखों वाले और शुभ्र खादी की पोशाक वाले राममनोहर की अपनी कक्षा में बड़ी साख थी बावजूद इस बात के कि वह कक्षा में सब से कम उम्र वाला विद्यार्थी था। अपने मनोहारी और तत्पर व्यक्तित्व, कुशाग्र बुद्धि, धाराप्रवाह वक्तृत्व और वाद-विवाद पटुता के कारण राममनोहर न केवल विद्यार्थियों को प्रिय था बल्कि प्राध्यापकों में भी वह प्रिय था। राजनैतिक, ऐतिहासिक और सामाजिक विषयों पर आयोजित संगोष्ठियों और चर्चासत्रों में राममनोहर पूरे दमखम के साथ शरीक होता था। विषय की ओर नए दृष्टिकोण और सतर्क प्रतिपादन के कारण राममनोहर संगोष्ठी के उबाऊ वातावरण में चैतन्य प्रवाहित करता था। समूचे तर्कों और वाकपटुता के साथ उसने 'खादी के अर्थशास्त्र' को मित्रों और प्राध्यापकों के गले बड़ी सहजता के साथ उतार दिया था और एक प्राध्यापक ने इससे प्रभावित होकर खादी के व्रत को स्वीकार किया।

पाठ्यक्रम में निर्धारित किताबों को खुद पढ़ना राममनोहर को कबूल न था, वह अपने मित्रों को जोर से पढ़ने के लिए कहता और स्वयं अपनी कुशाग्र बुद्धि और जबरदस्त स्मरण शक्ति के सहारे पचा जाता था लेकिन पाठ्यक्रमेतर ढेर सारी किताबें वह सहजता से पढ़ता था और परीक्षा में इनसे उद्धरण भी देता था बावजूद इस बहुआयामी विद्वत्ता के अधिक अंक दिलाने वाले तंत्रों का वह शायद ही कायल रहा।

विषय की गहराई में मूल विचार तक पहुंचने की उसकी आदत मानो जन्मजात थी जिससे कई बार अपने प्राध्यापकों से उलझने की नौबत तक वह मोल लेता था। 'राइज आफ दि क्रिश्चियन पावर' नाम के पाठ्यग्रंथ में जिक्र था कि कलकत्ते में किसी अंधियारी

हवालात में एक सौ चालीस अंग्रेजों को ठूंस दिया गया था; इस पर राममनोहर का दावा था कि यह कहना सरासर गलत ही नहीं, अतिशयोक्तिपूर्ण और इसीलिए झूठ भी है क्योंकि हवालात की कोठरी इतनी बड़ी नहीं है कि इसमें एक सौ चालीस व्यक्तियों को ठूंस दिया जाए। इसी ग्रंथ के एक कथन की—शिवाजी एक लुटेरा था—राममनोहर ने जबरदस्त खंडन ही नहीं किया बल्कि यह मांग भी की कि प्रतिशोध की भावना से प्रेरित और पूर्वाग्रहदूषित इतिहास का पुनर्लेखन किया जाए। इस समय राममनोहर सिर्फ सोलह साल का था।

इसी आयु में राममनोहर कांग्रेस के अधिवेशन में पहली बार उपस्थित हुआ था। अधिवेशन गुवाहाटी में था, यों ही घूमने और अधिवेशन को देखने मात्र के सहज इरादे से अपने समविचार वाले एक मित्र के साथ राममनोहर गुवाहाटी पहुंचा था परंतु न जाने विधि के किस विधान से पंजाब के कांग्रेस सदस्यों ने राममनोहर को अपना प्रतिनिधि मनोनीत किया और एक प्रस्ताव पर वक्तव्य देने के लिए उसे मंच पर उपस्थित किया था।

राममनोहर ने 1927 में इंटर की परीक्षा पास की और अगली पढ़ाई के लिए कलकत्ते में अपने पिताजी के पास वह पहुंचा। विद्यासागर महाविद्यालय में स्नातक का अध्ययन आरंभ हुआ। यहां के प्राध्यापकों को भी राममनोहर बहुत भा गया था, कई बार प्राध्यापकों से वैचारिक स्तर पर वह उलझता था। एक अवसर पर किसी प्राध्यापक ने जवाहरलालजी के विरोध में टिप्पणी की थी और राममनोहर ने जोरदार युक्तियों के साथ प्राध्यापक महोदय की टिप्पणी का खंडन किया था। यहां के मारवाड़ी छात्रावास में ही वह रहता था, मित्रों से अच्छा मेल-जोल था इसका; फिर भी पढ़ने के गहरे चाव और अपने उन्मुक्त, स्वच्छंद स्वभाव के कारण वह अपने संसार में ही बहुत अधिक रमता था। संभव है कि अपने इसी विशिष्ट स्वभाव के कारण राममनोहर अपने मित्रों का प्रिय मित्र और उनसे अलग निर्लिप्त व्यक्तित्व वाला विलक्षण जीव भी था।

कलकत्ता के महाविद्यालयीय विद्यार्थी-जीवन में ही राममनोहर के सक्रिय राजनैतिक जीवन की नींव पड़ी। अखिल भारतीय विद्यार्थी संगठन के कार्यकर्ता के नाते वह सक्रिय हो गया। 1928-29 का कालखंड स्वाधीनता आंदोलन में उथलपुथल का कालखंड था। ब्रिटिश सरकार की ओर से 'साइमन कमीशन' भारत भर में दौरे कर रहा था इसलिए कि भारतीयों को किस तरह के राजनैतिक सुधारों-परिवर्तनों की अनुमति और किस सीमा तक स्वाधीनता दी जाए इस पर ब्रिटिश सरकार को एक रिपोर्ट दी जाए। कांग्रेस ने साइमन कमीशन का बहिष्कार घोषित किया था। 'साइमन गो बैक' के नारों से समूचा भारत गूंजता रहा। एक बार लोहिया ने भी कलकत्ता में साइमन विरोधी जुलूस का नेतृत्व किया था। इसी समय कलकत्ते में अखिल बंगाल विद्यार्थी संगठन का अधिवेशन संपन्न हुआ, पंडित जवाहरलाल अधिवेशन के अध्यक्ष थे और सुभाषचंद्र बोस स्वागताध्यक्ष थे। विषय- नियामक समिति के सदस्य के नाते राममनोहर अधिवेशन में सम्मिलित था। अपने राजनैतिक जीवन के सिलसिले में जवाहरलालजी के साथ राममनोहर की पहली मुलाकात इसी अवसर पर हुई थी। दोनों को परस्पर आकर्षण रहा, युवकों के नेता के रूप में पंडितजी उभर कर

सामने आ रहे थे, राममनोहर के मन में पहले ही जवाहरलालजी के प्रति आर्कषण था जो इस अवसर पर दृढ़ हुआ। यही आकर्षण आगे चलकर प्रेमादर में रूपायित होता रहा। प्रखर बुद्धिमान, प्रभावी वक्ता, ध्येयनिष्ठ युवक राममनोहर नेहरूजी का भी प्रिय बनता गया।

राजनैतिक सक्रियता के झंझटों के बावजूद 1929 में राममनोहर ने बी0ए0 ऑनर्स आले दर्जे में पास किया।

अपने राजनैतिक जीवन में राममनोहर के व्यक्तित्व पर जिन दो महानुभावों का अमिट प्रभाव रहा, उनमें गांधीजी और नेहरूजी का प्रभाव उनके महाविद्यालयीय जीवन में ही दृढ़ से दृढ़तर होता गया था।

इस दरम्यान, राष्ट्रीय पुनर्जागरण के पुरोधाओं—राजा राममोहन राय, स्वामी विवेकानंद और रवींद्रनाथ ठाकुर—के संबंध में राममनोहर के विचार काफी स्पष्ट और सुलझे हुए थे। राजा राममोहन राय के प्रति, लगता है कि उन्हें कोई खास आकर्षण न था परंतु रवींद्रनाथ ठाकुर और स्वामी विवेकानंद के प्रेमादर के वे कायल थे। इन दोनों महानुभावों के विचारों में निहित राष्ट्रीयता और विश्व व्यापक मानवता सम्मेलन राममनोहर को व्यापक मानवहित की दृष्टि से बहुत ही उपयुक्त और उचित लगता था।

यही अवसर था कि जब राममनोहर की वैचारिक भूमि दृढ़ हो गई थी; मानवता, समाजवाद, तर्क बुद्धि और संकल्प इस भूमि के चार दृढ़ आधार और आयाम थे।

बी0ए0 पास करने के बाद अपने मित्र को लिखे एक पत्र में राममनोहर लिखते हैं कि "बाबूजी बहुत चाहते हैं कि मैं आगे की पढ़ाई विदेश में करूं परंतु अगर यह संभव नहीं होता है तो मैंने फैसला कर लिया है कि सीधे गांधीजी के पास पहुंचूं !"

बाबूजी अर्थात पिता हीरालालजी की बहुत इच्छा थी कि बेटे राममनोहर को अगली शिक्षा के लिए विदेश भेजा जाए परंतु आर्थिक औकात जवाब दे गई थी। फिर भी दो-एक धर्मादाय संस्थानों से आर्थिक सहायता पाकर 1929 के अगस्त में राममनोहर अगली पढ़ाई के लिए इंग्लैंड पहुंच ही गए।

किस देश में, किस विषय की और किस विश्वविद्यालय में पढ़ाई की जाए ? इन प्रश्नों को लेकर कुछ दिनों तक राममनोहर लंदन में ही उधेड़बुन में फंसे रह गए। भारत को अपना गुलाम बनाने और मानने वाले तथा वांशिक अहंता से ग्रस्त इंग्लैंड में रहने के लिए राममनोहर का मन तैयार नहीं था, इनका मन इंग्लैंड में नहीं रमा। अपने एक मित्र को लिखते हैं, "यहां भारतीयों के साथ उसी तुच्छता का व्यवहार किया जाता है जो किसी कुत्ते के साथ किया जाता है। लगता है कि यहां एक दिन रहना भी दुश्वार है।" लेकिन इसका यह अभिप्राय जरा भी नहीं है कि राममनोहर को इंग्लैंड में स्नेह का अंश कहीं भी नहीं मिल सका। जिरार्ड नाम के युवा मित्र का और उसके माता-पिता का पूरा पूरा स्नेह राममनोहर को मिलता रहा था।

एक दिन बातों बातों में राममनोहर ने जिरार्ड की माताजी से सहज भाव से प्रश्न

किया कि इंग्लैंड में किस भारतीय नेता को इंग्लैंड निवासी प्रेमादर की दृष्टि से देखते हैं? भोली-भाली माताजी का उतना ही सजह उत्तर था "क्रिकेटर रणजीत सिंह!" राममनोहर ने पूछा "नंबर दो का जनप्रिय भारतीय यहां किसे मानते हैं?" माताजी का उत्तर था "प्रिंस आगा खान" राममनोहर आसानी से मानने वाले जीव न थे; इनका अगला सवाल था कि "अच्छा, यह बताइए कि यहां सब से अधिक बदनाम कौन-सा भारतीय है ?" जिरार्ड की माता झट से उत्तर नहीं दे पाई कि जिरार्ड ने उसे संकेत किया और तुरंत बोली, "बड़े नटखट हो तुम ! क्या गांधीजी का नाम तुम मुझ से कहलवाना चाहते हो ?"

उच्च शिक्षा के लिए इंग्लैंड में रहूं या न रहूं की दुविधा से राममनोहर को मुक्ति दिलाई एक भले अंग्रेज ने ही, यह भी एक संयोग रहा। लंदन के एक प्रसिद्ध ग्रंथालय में पुस्तकों की खोज में राममनोहर पहुंचे थे। परंतु वहां मुलाकात हो गई इस भले मानुष से ! बातों बातों में इस सज्जन ने मशविरा दिया कि अगर कुछ नवीन सीखने-पढ़ने के इरादे से घर से निकले हो तो सीधे बर्लिन पहुंच जाओ; यहां लंदन में तुम्हें कुछ नहीं मिलेगा! बर्लिन में आपको अपने मनमुताबिक नया, ताजा, विचारोत्तेजक परिवेश सब कुछ मिलेगा!

इस समय 'यूरोप के दार्शनिक' के नाते जर्मनी प्रसिद्ध था। भारतीय दर्शनशास्त्रों और संस्कृति के गाढ़े जर्मन विद्वानों के प्रति भारतीय भी आकर्षित थे। दर्शनशास्त्र और अर्थशास्त्र में राममनोहर को विशेष दिलचस्पी थी, फिर क्या था ? राममनोहर इन्हीं शास्त्रों में उच्च शिक्षा पाने के लिए जर्मनी रवाना हो गए।

राममनोहर जर्मन भाषा के क ख ग तक नहीं जानते थे, फिर भी लंदन से बर्लिन तक की यात्रा में आपने दैनिक व्यवहारोपयोगी कतिपय जर्मन शब्दों और वाक्यों को आत्मसात कर ही लिया। जर्मनी के हम्बोल्ट विश्वविद्यालय में अर्थशास्त्र में पीएच0 डी0 की उपाधि हेतु आपने अपना नाम दाखिल कर लिया। आपके प्रबंध का विषय था—'नमक कर-कानून और सत्याग्रह' और आपके निर्देशक थे, डा0 प्रो0 बर्नर जोम्बार्ट, जो अपने जमाने के प्रसिद्ध अर्थशास्त्री थे। इस के साथ साथ इतिहास और दर्शनशास्त्र का भी अध्ययन आप करते थे। विश्वविख्यात वैज्ञानिक आइन्सटीन और प्रसिद्ध जर्मन समाजवादी चिंतक शूमाखर इसी हम्बोल्ट विश्वविद्यालय में उन दिनों प्राध्यापक थे। राममनोहर के सारे प्राध्यापक इसी तरह अपने अपने क्षेत्र के प्रकांड पंडित, प्रखर वैज्ञानिक और कर्मठ अध्यवसायी के नाते प्रसिद्ध थे।

अपने प्राध्यापकों और परीक्षकों का चयन करने की जर्मन विश्वविद्यालयों के विद्यार्थियों की रीति थी, स्वाभाविक था कि राममनोहर ने अपने मार्गदर्शक-परीक्षक के नाते डा0 प्रो0 बर्नर जोम्बार्ट का चयन किया। गुरुवर्य के साथ पहली भेंटवार्ता में तो राममनोहर ने सभी प्रश्नों के उत्तर अंग्रेजी में दिए परंतु जैसे गुरुजी ने कहा कि मैं अंग्रेजी नहीं जानता, राममनोहर ने तुरंत वादा किया कि तीन महीनों के बाद दुबारा आपसे भेंटवार्ता होगी तो मैं जर्मन में बात करूंगा।

यही वह समय था जब भारत में स्वाधीनता की हवा ने जोर पकड़ा था; गांधीजी की दांडी यात्रा और धारासणा में नमक सत्याग्रहियों पर किए गए अत्याचारों की प्रतिक्रियाएं

सारे विश्व में गूंज रही थीं। अपनी जगह से टस से मस न होने वाले निष्ठावान और पुलिस की मार चूं तक किए बिना झेलने वाले अहिंसक सत्याग्रहियों में राममनोहर के पिताजी हीरालालजी भी थे। पिताजी ने एक पत्र लिखकर राममनोहर को पुलिस के हमलों का आंखों देखा हाल सूचित किया था जिसे पढ़कर युवा राममनोहर बड़े बेचैन और क्षुब्ध हो उठे थे।

लीग आफ नेशन्स—उस जमाने का संयुक्त राष्ट्रसंघ का इसी समय जिनेवा में अधिवेशन हो रहा था जिसमें बीकानेर के महाराज गंगा सिंह भारत के प्रतिनिधि के नाते उपस्थित थे। बहुत खटपट और भागदौड़ के बाद राममनोहर ने एक दिन अधिवेशन के प्रेक्षागृह में पहुंचने के लिए दो प्रवेशिकाएं हासिल कीं और अपने भारतीय साथी मेनेजिस के साथ राममनोहर प्रेक्षक दीर्घा में स्थानापन्न हो गए। बीकानेर के महाराज का वक्तव्य, ब्रिटिश शासन में भारतीय जीवन में अमन-चैन और खुशहाली की आरती से ओत-प्रोत था। इसे सुनते ही राममनोहर और उनके मित्र ने जोरदार सीटी बजाई और विलक्षण कूहुक लगाई। इस अनपेक्षित कांड से सभागृह चकित हो गया। सभा के अध्यक्ष रूमानिया के टिटेलेस्क्यू थे, इन्होंने प्रेक्षक दीर्घा में बैठे दो युवकों को देखकर अपना स्मित बिखेरा और तुरंत ही आदेश दिया कि इन असभ्य दर्शकों को दीर्घा से निकाल दिया जाए। पहरे पर तैनात व्यक्ति ने पास आकर फ्रेंच भाषा में कुछ सवाल किए तब राममनोहर ने जवाब हिंदी में दिए। पहरेदार के पुनः प्रश्न करने पर भी जवाब हिंदी में ही दिए गए।

इतने से संतुष्ट होना राममनोहर के स्वभाव में नहीं था। अगले दिन 'लू चावै ह्यूमानिस्ट' समाचार पत्र में सभाध्यक्ष के नाम उनका लिखा एक अनावृत पत्र प्रकाशित हुआ। धारासणा में किए गए अत्याचारों और भगतसिंह को दी गई फांसी की सजा का विस्तृत वर्णन लिखते हुए राममनोहर ने बीकानेर के महाराज के व्याख्यान को मानो चुनौती दी थी और उनके प्रतिनिधित्व की जड़ हिला दी थी। इस समाचार पत्र की बहुत-सी प्रतियां खरीद कर लीग की इमारत के सामने मुफ्त बांटने का उपक्रम भी राममनोहर ने किया।

जब राममनोहर जर्मनी में पहुंचे थे तब जर्मनी की राजनीति के मंच पर हिटलर का प्रवेश हो चुका था और उनकी नाजी पार्टी अपने जोरों पर थी। राजनैतिक पक्षों-उपपक्षों में उफन रहे आपसी झगड़ों, आर्थिक मंदी और अवनति, बेकारी आदि के कारण परेशान जर्मन जनता स्वाभाविक रूप में हिटलर की ओर आकर्षित हो रही थी। जर्मन सोशल डेमोक्रेटिक पार्टी और कम्युनिस्ट पार्टी के सभी प्रयत्नों के बावजूद वे हिटलर नाम के तूफान को रोक नहीं पाई थीं।

इसलिए यह स्वाभाविक था कि राममनोहर के मन में भी जर्मन-राजनैतिक गतिविधियों के प्रति कुतूहल हो जाए। अपनी वैचारिक धारा के अनुकूल पाकर सोशल डेमोक्रेटिक पार्टी के प्रति राममनोहर की अधिक कायलता थी। बावजूद इसके, हिटलर की सभाओं में भी वे कभी-कभार उपस्थित रहा करते थे। कतिपय कम्युनिस्ट राममनोहर के अच्छे मित्र बन गए थे। कट्टर साम्राज्यवाद विरोधी मतों-प्रवृत्तियों के कारण राममनोहर

कम्युनिस्टों के प्रिय व्यक्ति थे। दूसरी ओर नाजी मित्रों का प्रयास रहता था कि राममनोहर उनके दल में सक्रिय बने रहें। एक नाजी मित्र ने एक बार अवसर पाकर निवेदन किया, "आपको चाहिए कि आप भारत में नाजी-दर्शन का प्रचार करें।" इस पर राममनोहर ने अपनी दो टूक प्रतिक्रिया दी, "जर्मनी के अतिरिक्त अन्य किसी भी देश में वंश और जाति की श्रेष्ठता का माननेवाला दर्शन शायद ही स्वीकृत होगा !"

बर्लिन-निवासी राष्ट्रवादी भारतीय विद्यार्थियों के उपक्रमों में पूरी लगन के साथ राममनोहर शरीक हुआ करते थे। 'मध्य यूरोप हिंदुस्तानी संघ' के आप मंत्री थे। जिस समय गांधी-आयर्विन संधि हुई उसी के आसपास हिंदुस्तानी संघ के तत्वावधान में एक परिषद का आयोजन किया गया था। परिषद, चूंकि साम्राज्यवाद के विरोध में थी भारतीय कम्युनिस्ट विद्यार्थी भी इस में सम्मिलित हुए थे। कम्युनिस्ट प्रतिनिधियों ने परिषद में एक प्रस्ताव रखा जिसका अभिप्राय था कि आयर्विन संधि के कारण गांधीजी और कांग्रेस ने देश के साथ गद्दारी की है; परंतु राममनोहर ने इस प्रस्ताव का जोरदार विरोध किया, "इस संधि के कारण कांग्रेस का ही नहीं तो ब्रिटिश सत्ता का भी पराभव हुआ है।"

1932 के आरंभ में राममनोहर ने अर्थशास्त्र में डाक्टरेट पाने के उद्देश्य से अपना प्रबंध प्रस्तुत किया, प्रबंध जर्मन भाषा में लिखा गया था। जर्मन शिक्षा-प्रणाली के अनुसार मार्गदर्शक प्राध्यापक ही परीक्षक होते हैं और परीक्षा का स्वरूप प्राध्यापक और विद्यार्थी की निर्धारित विषय पर गंभीर चर्चा का होता है। राममनोहर के प्रथम परीक्षक डा. शूमाखर रहे थे। आरंभिक दो-एक घंटों की सविस्तार प्रस्तुति के बाद विषय पर गंभीर चर्चा आरंभ होती थी और हंसी-मजाक के वातावरण में संपन्न होती थी। समाजवादी चिंतक प्रो. शूमाखर, इतिहास के प्रकांड पंडित प्रो. जॉन्कीन, मनोवैज्ञानिक फ्रॉयड के शिष्य और नामवर दार्शनिक प्रो. देसनॉर तथा अन्य एक गणमान्य विद्वानों के मंडल ने राममनोहर की परीक्षा की। बातों बातों में इतिहास के विद्वान परीक्षक ने राममनोहर को सुझाव दिया कि आगे चलकर जब कभी अवसर मिले तब यह लिखें कि 1857 के गदर का विदेशियों पर क्या परिणाम हुआ ? दर्शनशास्त्र के परीक्षक ने पूछा कि 'महात्मा' से क्या अभिप्राय है ? अर्थ कहने पर राममनोहर ने एक टिप्पणी भी की, जिस तरह हिंदुओं में महात्मा होते हैं उसी तरह मुसलमानों में भी होते हैं और हुए भी हैं। अन्य परीक्षक ने जानना चाहा कि भारत में लौटने पर आगे क्या करने का इरादा है ? राममनोहर ने सहज परंतु दृढ़ भाव से उत्तर दिया कि हर हालत में प्राध्यापक तो कतई नहीं बनूंगा। प्रो. शूमाखर ने सलाह दी कि राममनोहर को चाहिए कि अब वह जल्दी ही अपने देश लौट जाए क्योंकि अधिक समय तक जर्मनी में रहना अब खतरे से खाली न था।

1933 के आरंभ में ही, डाक्टरेट की उपाधि पाते ही राममनोहर ने जर्मनी से प्रस्थान किया, अपने साथ अपनी सारी पुस्तकें लेकर वे चल पड़े थे परंतु बीच यात्रा में ही आपका सारा सामान चोरी कर लिया गया। कोलंबो होते हुए राममनोहर ने भारत भूमि पर मद्रास में कदम रखा तब उनकी जेब में फूटी कौड़ी तक नहीं थी। आपको मद्रास से कलकत्ता

जाना था। मद्रास में वे सीधे 'हिंदू' के कार्यालय में पहुंचे। दो घंटे वहीं बैठकर 'फ्यूचर आफ हिटलरीज्म' शीर्षक से एक लेख लिखकर पूर्ण किया और रुपए पच्चीस का मेहनताना पाकर कलकत्ता पहुंचे।

बर्लिन में निवास की अवधि में घटित एक घटना से राममनोहर के व्यक्तित्व और विचारों का परिचय प्राप्त होता है। अपने दो-एक मित्रों के साथ यों ही घूमने के लिए निकले राममनोहर सत्तर-अस्सी मील की रफ्तार से मोटर चला रहे थे, शहर से बाहर पहुंच गए थे, सांयकाल था, सामने से एक काश्तकार तरकारी-सब्जीसाग से भरी बिना बत्ती की गाड़ी चलाते आ रहा था और देखते ही देखते राममनोहर की मोटर गाड़ी सामने वाली गाड़ी से टकरा गई। काश्तकार की बूढ़ी मां सड़क पर लुढ़क गई और काश्तकार गुस्से के मारे लाल हो गया। गालियों की झड़ी लगा दी उसने; फिर बोला, "यहीं पर ठहरो ! पुलिस को बुला लाता हूं; अगर भागने की कोशिश करोगे तो तुम्हारा सिर फोड़ दूंगा ?" राममनोहर ने जवाब दिया, "अवश्य ! लेकिन आधे घंटे से अधिक मैं रुकने वाला नहीं !" काश्तकार चला गया, पंद्रह-बीस मिनट गुजर गए, जर्मन मित्रों ने चलने का मशविरा दिया परंतु राममनोहर अपने वचन पर अडिग थे, "मैंने आधा घंटा रुकने की बात स्वीकार की है, इसे मैं तोड़ूंगा नहीं।" आधा घंटा हो रहा था कि काश्तकार लौटा परंतु उसके साथ सिपाही न था; शिकायत भरे स्वर में वह बोला, सरकार नाम की चीज ही बड़ी खराब है, और पुलिस तो बहुत ही खराब है, जब आवश्यकता नहीं होती है तब पूरी पलटन आएगी और व्यक्तिगत मामलों में दखल देगी और आवश्यकता पड़ने पर सब के सब नदारद रहते हैं।" लोहिया की सहज प्रतिक्रिया थी, "आपका कहना एकदम दुरुस्त है भाई साहब ! समूचे संसार भर की शासन व्यवस्था और खासकर पुलिस इसी रोग के मारे हैं।" काश्तकार खुश होकर चला गया।

जर्मनी में बिताए साढ़े तीन वर्षों की अवधि में राममनोहर ने यूरोपीय राजनीति का गहराई से अवलोकन किया। मार्क्स और एंजल्स के लिखे मूल जर्मन-साहित्य का गहरा अध्ययन करने पर राममनोहर इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि यूरोपीय अर्थशास्त्र, फिर वह मार्क्स द्वारा प्रतिपादित हो अथवा एडम स्मिथ का हो अथवा कीन्स का, अधूरा ही है, इसलिए कि ये सारे प्रतिपादन सिर्फ यूरोप को केंद्रित कर लिखे गए हैं। इंग्लैंड और फ्रांस में प्रचलित पूंजीवादी जनतंत्र, मध्य यूरोपीय राष्ट्रों में प्रचलित समाजवादी जनतंत्र और रूस में प्रचलित कम्युनिज्म, तीनों ही प्रणालियां न भारत की समस्याओं का समाधान दे सकती हैं और न व्यापक मानव-समाज की समस्याओं का समाधान। इसलिए तीनों प्रणालियां अधूरी हैं, अपूर्ण हैं। खासकर यूरोपीय समाजवादी जनतंत्र की असफलता को देखते हुए राममनोहर को लगा कि विकसनशील देशों की समस्याओं के संदर्भ में समाजवाद के आशय और सिद्धांतों में ही नहीं बल्कि कार्यप्रणालियों में भी संशोधन और परिवर्तन की आवश्यकता है। उन्होंने गहरा अनुभव किया कि समाजवादी जनतंत्रात्मक आंदोलन में से इच्छा शक्ति और

संकल्पशक्ति के अभाव को तुरंत दूर किया जाना चाहिए। जर्मनी की कम्युनिस्ट और नाजी पार्टी में आपने दोनों शक्तियों को देखा था।

अर्थशास्त्र में डाक्टरेट पाकर 1933 के आरंभ में राममनोहर ने जर्मनी से प्रस्थान किया। अब आप डाक्टर राममनोहर लोहिया थे। जिदंगी भर डाक्टर की उपाधि उन से चिपकी रही और जब कभी कोई इन्हें डाक्टर या डाक्टर साहब कहकर संबोधित करता था तब वे बहुत नाराज हुआ करते थे।

3

कांग्रेस समाजवादी नेता

डा. राममनोहर लोहिया जब भारत लौटे तब भारत के राजनैतिक मंच पर पूरी निराशा और उदासीनता छाई हुई थी। 1932 में पुनः जीवित हुआ सविनय अवज्ञा आंदोलन समाप्त सा था, गांधीजी के आंदोलन का आवेश भी अब कमजोर पड़ गया था। कांग्रेसी नेताओं का एक बड़ा गुट उत्सुक था कि ब्रिटिश शासन के साथ समझौता करें और आंशिक प्रांतीय स्वायत्तता दिलाने वाली विधान सभाओं में नवीन कानून के आधार पर चुनाव जीतकर स्थानापन्न हो जाएं। गांधीजी ने नेतृत्व का त्याग कर दिया था और अब वे हरिजन आंदोलन को समर्पित से हो गए थे।

भारतीय राजनीति में सर्वोच्च स्थान पर विराजमान गांधीजी और नेहरू को राममनोहर ने अपने बचपन में बहुत नजदीकी से देखा था, इनके साथ रहने का अनुभव संजोया था। अपनी युवावस्था में विद्यार्थी-जीवन पर दोनों नेताओं के गहरे प्रभाव को अपने व्यक्तित्व के विकास में सहायक स्वीकार किया था।

लोहिया का विश्वास था कि गांधीजी का स्थान सिर्फ भारत की राजनीति में सर्वोपरि नहीं है बल्कि नवीन मानवता, सभ्यता और संस्कृति की निर्मिति में तथा शोषणहीन नव भारतीय संस्कृति के सृजन में भी गांधीजी उपयोगी हो सकते हैं।

लोहिया का यह भी विश्वास था कि गांधीजी द्वारा प्रतिपादित दो विचार-मानवीय करुणा और मानव, मानव का न शोषण करे और न हत्या, ये न केवल भारतीय संस्कृति के नवीकरण का बल्कि नवीन विश्व-संस्कृति का आधार बन सकते हैं। इसी वैचारिक विश्वास के सूत्र ने लोहिया को गांधीजी के साथ बांध दिया और लोहिया ने भी इस विश्वास-बंधन का अंत तक निर्वाह किया।

अपनी युयुत्सुवृत्ति, लाहौर-कांग्रेस के अध्यक्षीय वक्तव्य में की गई संपूर्ण स्वाधीनता की जोरदार मांग, अपने समाजवादी और जोशीले राजनैतिक विचारों के कारण 1929 के बाद जवाहरलाल नेहरू भारतीय युवकों के निरपवाद नेता बन चुके थे और लोहिया भी जवाहरलाल के कायल थे। लोहिया के नेहरू-आकर्षण के अन्य दो-एक कारण भी थे।

विश्व शांति और विश्व-बंधुता के जिस सपने को लोहिया संजोए चले आए थे, ठीक उसी की अभिव्यक्ति आपको नेहरूजी के विचारों में दिखाई दी। दूसरा कारण था कि लोहिया के संवेदनशील मन को जवाहरलाल की संवेदनशीलता भा गई थी।

गांधीजी और जवाहरलालजी के नेतृत्व में चल रही राजनीति अपनी त्याग और कष्टमयता के कारण उस युग की विशिष्ट राजनीति थी। अपने महाविद्यालयीय जीवन में लोहिया इसी राजनीति में अंशतः सक्रिय थे परंतु जैसे ही वे जर्मनी से लौट आए उन्होंने इसी को अपनाने और, आजीवन इसी को समर्पित हो जाने का फैसला कर लिया था। पिताजी हीरालाल अपना कारोबार बंद कर कांग्रेस के कार्य को अपना जीवन-कार्य बना चुके थे इसलिए लोहिया परिवार आर्थिक कठिनाइयों का सामना कर रहा था इसलिए परिवार के लोग और पिताजी की महज इच्छा थी कि अच्छी-सी अनुकूल नौकरी करते हुए राममनोहर अर्थार्जन करे। अपना मन मारकर लोहिया नौकरी करने के लिए तैयार हुए थे। बनारस विश्वविद्यालय में अर्थशास्त्र के प्राध्यापक का एक स्थान रिक्त था। लोहिया ने प्रयत्न किया परंतु पहले ही उस पर अन्य किसी की नियुक्ति कर दी गई थी। इसी दरम्यान बिरला परिवार के सदस्य उद्योगपति रामेश्वर बिरला से आपका परिचय हुआ और बिरलाजी ने अपने सचिव पद का भार लोहिया को सौंपना चाहा; स्वाधीन और स्वाभिमानी राममनोहर के लिए तो यह नौकरी कतई अनुकूल नहीं थी, परंतु और कोई चारा न पाकर आपने इसे स्वीकार किया। कुछ विशिष्ट और अप्रिय घटनाओं के कारण कुछ दिनों के बाद लोहिया इस जिम्मेदारी से मुक्त हो गए। इसी समय गांधीजी के मुंहबोले बेटे जमनालाल बजाज ने लोहिया को बुला लिया और अपने बेटे की तरह अपने पास ही रखा।

एक बार जमनालालजी लोहिया को लेकर गांधीजी से भेंट करने पहुंचे, बातों बातों में जमनालाल जी ने कहा कि यह बेटा राजनीति में सक्रिय होना चाहता है। गांधीजी ने पूछा "आए दिन के खाने-पीने की क्या व्यवस्था है ?" जमनालाल जी ने तुरंत कहा "इसकी चिंता का कोई कारण नहीं है !"

परंतु लोहिया अधिक समय तक जमनालालजी के साथ नहीं रह पाए, आपका मन यहां भी न रम सका। पुनः कलकत्ता लौटकर राजनीति में सक्रिय हो गए। अपने महाविद्यालयीय जीवन में लोहिया कलकत्ते के विद्यार्थी आंदोलन के सक्रिय सदस्य थे, अपने समाजवादी और स्वातंत्र्यप्रिय मित्रों के साथ लोहिया ने फिर से संपर्क बनाया। आपके मित्र-परिवार का दायरा बहुत बड़ा था। इस तरह लोहिया पिता-पुत्र सक्रिय राजनीति को अपना जीवन-कार्य बना चुके थे। पिताजी अपने रिश्तेदारों के यहां रहते तो पुत्र कभी किसी मित्र के पास और कभी किसी अन्य मित्र के पास रहने लगा था। संयोग होता तो दो जून का खाना मयस्सर होता था, वरना एक समय की रोटी पर ही गुजारा कर लेते थे। दिन भर कामों में व्यस्त रहते थे, चर्चाओं-सभाओं में उपस्थित रहते थे, देर रात तक लेखन-पठन में लगे रहते थे। सुबह देरी से जागना स्वाभाविक हो गया था।

संघर्ष राजनीति के बीच कलकत्ते के कष्टपूर्ण संघर्षमय जीवन ने लोहिया की मनोभूमि

में बो दिए थे। स्वातंत्र्य प्राप्ति का एकमात्र जनमाध्यम कांग्रेस थी, इसे दृढ़ और सफल बनाने के लिए आवश्यक था कि इसे आंदोलन के रास्ते पर चलाया जाए।

यह सिर्फ लोहिया की धारणा नहीं थी बल्कि कांग्रेस में और कांग्रेस के बाहर भी इस विचार के कायल युवकों का बड़ा दल था। यह दल, कम्युनिस्ट पार्टी से अलग और राष्ट्रीय आंदोलन से जुड़े संघर्षशील समाजवादी संगठन की आवश्यकता को तीव्रता से महसूस कर रहा था। कांग्रेस के समाजवादी विचारधारा के कायल कार्यकर्ताओं में जयप्रकाश नारायण, आचार्य नरेंद्रदेव, युसुफ मेहरअली, अच्युत पटवर्धन, मिनू मसानी, संपूर्णानंद, ए. वी. मेनन, कमलादेवी चट्टोपाध्याय, रामनंदन मिश्र, मुन्शी अहमद, फरीदल हक अन्सारी, शिवनाथ बैनर्जी और लोहिया, जैसे प्रमुख कार्यकर्ताओं का समावेश था। इनमें से कुछ नेताओं की मनोभूमि मूलतः मार्क्सवादी विचारधारा के अनुकूल थी और कुछ नेताओं की मानवेन्द्रनाथ राय की विचारधारा के। कुछ नेता क्रांतिकारी आंदोलन से भी जुड़े हुए थे।

17 मई 1934 को पटना में आचार्य नरेंद्रदेव की अध्यक्षता में कांग्रेस के उन कार्यकर्त्ताओं की एक बैठक आयोजित की गई जो समाजवादी विचारधारा के समर्थक थे। इस बैठक में निर्णय किया गया कि कांग्रेस के अंतर्गत ही सोशलिस्ट पार्टी की स्थापना की जाए, पार्टी की नीति, कार्यक्रम और संविधान निर्धारण के लिए गठित समिति में लोहिया का समावेश था, आचार्य नरेंद्रदेव भी थे। इसी अवसर पर नरेंद्रदेव और राममनोहर लोहिया के स्नेह की नींव पड़ी। इस समय पार्टी का लक्ष्य सीमित था—समाजवादी समाज की स्थापना का उद्देश्य। लोहिया चाहते थे कि इसमें संपूर्ण स्वाधीनता प्राप्ति को भी जोड़ लिया जाए परंतु आचार्य नरेंद्रदेव के समर्थन के बावजूद संपूर्णानंद, मिनू मसानी के विरोध के कारण पार्टी के उद्देश्य में संशोधन नहीं हो पाया।

आगे चलकर 21 और 22 अक्तूबर 1934 को बंबई में संपूर्णानंदजी की अध्यक्षता में आयोजित स्थापना-सम्मेलन में कांग्रेस सोशिलिस्ट पार्टी का जन्म हुआ। लोहिया की पार्टी की कार्यकारी समिति पर नियुक्ति हुई और पार्टी के मुखपत्र 'कांग्रेस सोशलिस्ट' के संपादक पद का काम भी सौंपा गया। जयप्रकाश नारायण पार्टी के महामंत्री थे। पार्टी की रचना और व्यवस्था कम्युनिस्ट पार्टी के ढर्रे पर थी, अध्यक्ष का पद नहीं था और महामंत्री के पास व्यापक अधिकार थे। जयप्रकाश नारायण इस कदर मार्क्सवादी थे कि उन्हें कम्युनिस्ट कहने में किसी को संकोच नहीं हो सकता था। आचार्य नरेंद्रदेव और जयप्रकाश जवाहरलालजी के नजदीकी मित्रों में से थे।

लोहिया जवाहरलाल जी के चहेते जरूर थे परंतु नजदीकी मित्र नहीं थे, इसी तरह न मार्क्सवादी थे और न मार्क्सवाद के विरोधी थे। न गांधीवादी थे और न गांधीवाद के विरोधी थे। कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के दो वरिष्ठ नेताओं—जयप्रकाश नारायण और आचार्य नरेंद्रदेव के और लोहिया के वैचारिक संबंधों के संदर्भ में भी उक्त वैचारिक विशेष का महत्व देखा जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त अन्य एक फर्क का भी भान रखना चाहिए। सोवियत रूस के नेतृत्व में विश्वभर में चल रहे वाममार्गी आंदोलन से जवाहरलालजी और

उनके कई समाजवादी मित्र काफी प्रभावित थे। परंतु लोहिया इसके अपवाद थे। लोहिया की निश्चित मान्यता थी कि विश्व शांति और नव विश्व व्यवस्था के लिए आवश्यक आंदोलन का नेतृत्व करने की क्षमता सोवियत रूस के प्रचलित कम्युनिज्म में नहीं थी। इसलिए प्रायः लोहिया पार्टी में अकेले रह जाते थे, वैचारिक नीति और कार्यवाही को लेकर पार्टी की स्थापना से ही यह मत भिन्नता रही थी। परंतु समूचे संसार और भारत की भलाई समाजवादी विचारधारा को अपनाने में है इसका लोहिया को दृढ़ विश्वास था। कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी इसी विश्वास का साकार रूप थी इसलिए भले अल्पमत में सही लेकिन अपने लिए पार्टी में रहना लोहिया जरूरी समझते थे। सामयिक मतभेदों को लोहिया ने महत्वपूर्ण इसलिए नहीं समझा कि अमूर्त सिद्धांतों को मूर्त करने वाली कार्यवाही के कारण मूलभूत विचार परास्त नहीं होते थे।

लोहिया के संपादन में 'कांग्रेस सोशलिस्ट' कलकत्ते से प्रकाशित होने लगा। लोहिया इसी के साथ मजदूर संगठन तथा अन्य पूरक गतिविधियों में भी कार्यरत थे और उस जमाने में पार्टी कार्यकर्ता के माथे जिन विपदाओं को बढ़ाया गया था उन सबको झेलते भी रहे। 'कांग्रेस सोशलिस्ट' धीरे धीरे अपनी साख जमा रहा था। उसमें प्रकाशित विचारोत्तेजक और स्पष्ट विचारों के कारण पाठकों के आकर्षण का केंद्र बन चुका था। इन्हीं दिनों एक बार गांधीजी के साथ लोहिया वैचारिक स्तर पर उलझ पड़े थे; गांधीजी के ग्राम सुधार कार्यक्रम पर टिप्पणी करते हुए लोहिया ने लिखा था कि 'इसकी अपेक्षा विदेशी शासन को हटाने के लिए आवश्यक प्रयत्न किए जाने चाहिए।' इस अंक को गांधीजी के पास इस प्रार्थना के साथ भेज दिया कि गांधीजी इस संदर्भ में अपनी मान्यताओं से परिचित कराएं। गांधीजी ने उत्तर दिया, 'चूंकि आपमें विरोधियों की मान्यताओं को समझने की सहिष्णुता नहीं है, मेरे उत्तर की इच्छा न रखें।' लोहिया ने पुनः लिखा, 'संभव है कि मेरे कतिपय शब्दों नें बेपरवाही हो, परंतु मेरे मतलब को समझते हुए कृपया उत्तर दें।' फिर गांधीजी का स्नेहमय उत्तर प्राप्त हुआ।

अपनी धुन के पक्के होने तथा जिद्दी स्वभाव के कारण साधनों के बावजूद लोहिया मौजमस्ती में जिए जा रहे थे। लोहिया शुरू से आत्मानुशासन के कायल थे, मुक्त-जीवन जीने की ललक मानो लोहिया की जिंदगी का स्थायीभाव बन गई थी। धन का आकर्षण उन्हें कभी नहीं रहा। इसलिए किसी भी तरीके से आर्थिक लाभ न होने वाला राजनैतिक कार्यकर्ता का जीवन वे सहज आसानी से जी लेते थे। लोहिया के अमीर मित्र ने फिर भी उन्हें दो सौ रुपए देते हुए नौकरी करने का मशविरा दिया। इन रुपयों में से लोहिया ने अपने लिए एक टोपी, कुर्ता और धोती खरीद ली और एक चप्पल भी ले ली। परंतु सत्तर रुपयों की पुस्तकें भी साथ में खरीद लीं। दो सौ रुपए देने वाले मित्र के साथ ही होटल में भरपेट भोजन किया और घर लौटते समय रास्ते में जितने भिखारी दिखाई पड़े सबको चवन्नी-अठन्नी देते हुए जब घर पहुंचे तब जेब में सिर्फ तीस रुपए बचे थे। दूसरे दिन सबेरे एक क्रांतिकारी मित्र की पत्नी को अपने घर पर देखकर शेष तीस रुपए उसकी

हथेली पर रख दिए और फिर से स्वयं कफल्लक हो गए।

विवाहबद्ध होने की कल्पना तक लोहिया के मन को छू न सकी। संभव है कि पिताजी ने भी कभी आग्रह न किया हो। अगर कोई बंधु-पिता कभी-कभार मिलता भी था तो दोनों बाप-बेटे उसकी बात हंसी में उड़ा दिया करते थे। ऐसे ही किसी अवसर पर जब एक लड़की के पिता ने स्वयं लोहिया के पास विवाह की बात चलाई तब छूटते ही, ऐनक उतारते हुए कहा, "लो भाई ! मैं ठहरा यों अंधा ! क्यों अपनी बेटी की जिंदगी बरबाद कर रहे हैं इस तरह किसी अंधे के साथ उसे ब्याह कर ?" पिता हीरालालजी बेटे का हाजिरजवाबी स्वभाव देखकर खुश हुए थे।

कलकत्ते में रमे तीन साल हुए थे कि अनपेक्षित अवसर पाकर लोहिया इलाहाबाद पहुंचे। विद्यार्थी परिषद के अवसर पर नेहरूजी से मुलाकात हुई थी और धीरे धीरे लोहिया नेहरूजी के निकट आते गए। नेहरूजी ने भी 'उदयोन्मुख तारा' कहकर एक बार लोहिया की तारीफ की थी। जवाहरलालजी 1936 में कांग्रेस के अध्यक्ष बने थे और इन्हीं के सुझाव पर अखिल भारतीय कांग्रेस समिति के तहत एक 'परराष्ट्र-संबंध-विभाग' शुरू किया था और जवाहरलालजी चाहते थे कि इसका सचिव पद लोहिया स्वीकार करें। आज तक उन्मुक्त और स्वच्छंद जीवन बिताने वाले राममनोहर को टेबल से जकड़ा जीवन रास नहीं आया; इसलिए उन्होंने अस्वीकार तो किया परंतु बाद में आचार्य नरेंददेव के आग्रह पर इसे स्वीकार कर लिया।

लोहिया ने इलाहाबाद में तीन साल बिताए। इन्हीं दिनों जवाहरलालजी और आचार्य नरेंद्रदेव के साथ उनकी मित्रता दृढ़ से दृढ़तर हो गई। उत्तर प्रदेश में जारी कांग्रेस के कामकाज का नजदीकी परिचय आपको हुआ और इसी इलाके से अ0 भा0 कांग्रेस समिति पर आप चुनकर जाते रहे थे। आचार्य नरेंद्रदेव इन्हीं दिनों प्रदेश कांग्रेस के अध्यक्ष थे और कांग्रेस की कई कनिष्ठ स्तरीय समितियों पर कांग्रेस समाजवादियों का अधिकार था।

जब तक लोहिया 'परराष्ट्र संबंध-विभाग' के सचिव नहीं बने थे तब तक सिवा साम्राज्यवाद-विरोध के कांग्रेस की अपनी कोई विदेश-नीति नहीं थी। जवाहरलालजी इस अभाव की पूर्ति चाहते थे। इस समय 'परराष्ट्र-संबंध-विभाग' का काम न विदेश नीति तय करने का था और न इस नीति पर कार्यवाही करने का, अगर ऐसा होता तो संभव है कि लोहिया इस पद को अस्वीकार करते। इसका कारण यह भी था कि इस विदेश नीति विषयक स्वयं लोहिया की अपनी मान्यताएं अभी निश्चित नहीं हो पाई थीं। कांग्रेस में अंतर्राष्ट्रीय नीति पर विचार करने वाले दो दल थे, एक धारा विश्वशांति, जनतंत्र और फासिज्म के विरोध में थी, इस दल के नेताओं की मान्यता थी कि अंतर्राष्ट्रीय राजनीति की प्रचलित और प्रस्थापित व्यवस्था को बिगाड़े बिना शक्ति संतुलन और समझौता करते हुए अपने लक्ष्य तक पहुंचना संभव है। इस मान्यता का प्रेरक स्रोत इंग्लैंड था और जवाहरलालजी इसके प्रमुख भारतीय समर्थक थे। दूसरी विचारधारा के प्रतिनिधि स्वयं गांधीजी थे, गांधीजी का मुख्य प्रतिपादन था कि विश्वशांति और विश्वव्यापक मानवता की सिद्धि के

लिए हर संभव युद्ध का विरोध किया जाना चाहिए। आधुनिक मानव संस्कृति और सभ्यता के असफल होते जाने का अहसास गांधीजी की मान्यता का मुख्य आधार था। इस वैचारिक मत-भिन्नता के साथ दोनों दलों में साम्राज्यवाद के विरोध का समान सूत्र भी था जिससे सामयिक संघर्ष के बावजूद कांग्रेस के तहत दोनों दल कार्यरत थे। परंतु लोहिया के मन में दोनों ही विचारधाराओं पर प्रश्नचिह्न लगा हुआ था, फिर भी 'परराष्ट्र-संबंध विभाग' के सचिव पद को आपने स्वीकार कर लिया था। इस स्वीकृति के अन्य दो कारण भी संभव थे। एक तो यह कि इन दो विचार प्रवाहों के बीच के मौलिक अंतर से लोहिया परिचित नहीं थे और दूसरा कारण यह है कि 'परराष्ट्र-संबंध-विभाग' के कार्य की परिधि भी सीमित थी; संसार के अन्य पराधीन और स्वाधीन देशों से संपर्क स्थापित करने, भारतीय स्वाधीनता संग्राम के लिए इन से समर्थन प्राप्त करने और अपनी मान्यताओं का प्रचार-प्रसार करने तक ही कार्य की व्याप्ति सीमित थी। 'परराष्ट्र-संबंध-विभाग' के काम को लोहिया ने उत्साह के साथ ही नहीं किया बल्कि अपने विभाग की ओर से एक साप्ताहिक बुलेटिन भी प्रकाशित किया। विभाग की ओर से प्रकाशित बुलेटिनों-पत्रकों के द्वारा लोहिया ने एशिया-अफ्रीका में कार्यरत एक दर्जन से अधिक स्वातंत्र्यवादी सक्रिय संगठनों की जानकारी दी, इनकी वैचारिक पृष्ठभूमि अर्थात राजनैतिक दर्शन से भारतीयों को परिचित कराया तथा इन संगठनों के साथ वैचारिक आदान-प्रदान का सिलसिला भी बनाया। विदेशी संगठनों की गतिविधियों को भारतीय कांग्रेस का समर्थन भी दिया।

परराष्ट्र-संबंध-विभाग में लोहिया ने तीन वर्षों में जो काम किया उससे आपके विकसित होते जा रहे वैचारिक विश्व और विदेश नीति के संकेत प्राप्त होते हैं। लोहिया को अभिप्रेत अलग विदेश नीति का संक्षिप्त रूप यों है, "भारत का अस्तित्व ब्रिटिश साम्राज्य से अलग है, भारत अब एंथोनी, ईडन अथवा ब्रिटिश सरकार की राजनीति का न गुलाम है और न पाबंद। भारत की अपनी अलग विदेश नीति है।" फैजपुर कांग्रेस अधिवेशन में प्रस्तुत अपने विभाग के इतिवृत्त में लोहिया निवेदन करते हैं कि "अब कांग्रेस को चाहिए कि अपनी विदेश नीति की ठोस रूपरेखा वह प्रस्तुत करे और इसके लिए आधार भारतीय हित-संबंधों की रक्षा का हो न कि इंग्लैंड के।" इंग्लैंड, फ्रांस, अमेरिका जैसे जनतंत्र का डिमडिम बजाने वाले देशों में प्रचलित जनतांत्रिक प्रणालियों का दो टूक परिचय लोहिया ने इसी समय कराया था। अफ्रीका के एक मात्र स्वतंत्र राष्ट्र ॲबेसीनिया पर हुए फासिस्ट इटली के आक्रमण, स्पेन में जनतंत्र के विरोध में किया गया जनरल फ्रंको का संघर्षमय गदर, चीन पर जापान के आक्रमण जैसे अंतर्राष्ट्रीय महत्वपूर्ण प्रसंगों पर लोहिया ने जो टिप्पणियां की हैं इनसे विदेशी नीति विषयक उनके अलग दृष्टिकोण का पता बखूबी चलता है। जब स्टालीन ने रूसी कम्युनिस्ट पार्टी के और क्रांति-प्रसंग में अपनी स्पर्धा में काम करने वाले सहयोगियों का हत्याकांड रचा था तब इस पर की गई टिप्पणी से स्पष्ट हो जाता है कि लोहिया न केवल रूसी राजनीति का बल्कि कम्युनिज्म का भी मूल्यांकन-पुनर्मूल्यांकन करने पर आमादा हैं। अपने एक पत्रक में लोहिया लिखते हैं, "अब

यह साफ हो गया है कि रूस में एकमात्र गुट की तानाशाही जारी है और रूस शांति का अग्रदूत है, नवीन मानवीय संस्कृति की प्रयोगभूमि है जैसी मान्यताओं पर बड़ा प्रश्न चिह्न अंकित हो गया है।"

अॅबेसीनिया पर हुए विदेशी फासिज्म के आक्रमण और स्पेन के जनतंत्र पर हुए तद्देशीय फासिज्म के आक्रमण को यूरोप के सभी जनतंत्रवादी राष्ट्र और लीग आफ नेशन्स चुपचाप, हाथ पर हाथ धरे देखते रह गए, बस ! रूस में स्टालिन के अपने सहयोगियों के रचे हत्याकांड और समाजवाद के प्रति किए गए विश्वासघात को संसार भर के कम्युनिस्टों ने खुली आंख और चुपचाप सहा ही नहीं बल्कि स्टालीन का समर्थन करते हुए वे अघाते न थे। अंतर्राष्ट्रीय राजनीति के मंच पर घटित इन दो महत्वपूर्ण घटनाओं ने लोहिया की वैचारिक भूमि में सब से अलग विश्वनीति की संकल्पना के बीज बोए जो यूरोपीय जनतंत्रवादी देशों और कम्युनिज्म की राजनीति से अलग थे। लोहिया ने अपना ध्यान एशिया-अफ्रीका की गुलाम जनता पर केंद्रित किया था, लोहिया को विश्वास था कि इन दो महाद्वीपों की गुलाम और पीड़ित जनता को चाहिए कि एक संयुक्त मोर्चा बनाकर, अपने स्वतंत्र सिद्धांतों के मूलाधार पर अपनी स्वाधीनता के लिए लड़े ताकि नवीन संस्कृति के अनुकूल भूमि तैयार हो सके।

एशिया और अफ्रीका के साम्राज्यवादी उपनिवेशों में काम कर रहे स्वातंत्र्यप्रिय संगठनों और अप्रवासी भारतीयों के साथ अपने पत्रकों-बुलेटिनों के द्वारा सूचनाओं और वैचारिक गतिविधियों के लेन-देन को बरकरार रखने का नियमित प्रयत्न लोहिया ने किया था। इस आदान-प्रदान के सफल परिणामस्वरूप फिलीस्तीन अरब राष्ट्रों, ब्रिटिश गिनी, मारीशस, फिजी, जैसे देशों में भारतीय राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन की चर्चा होने लगी। इसी के साथ भारत में भी कांग्रेस के मंच पर इन देशों की गुलाम जनता की अनेकानेक समस्याओं पर गंभीरता के साथ विचार होने लगा। 'परराष्ट्र-संबंध-विभाग' के प्रयत्नों से अखिल भारतीय कांग्रेस ने अॅबेसीनिया, जांजिबार, अंडमान, फिलीस्तीन जैसे देशों में जारी स्वाधीनता आंदोलनों को अपना समर्थन देने के इरादे से अलग से 'दिन-विशेष' मनाने का उपक्रम चलाया था। चीन पर हुए जापान के आक्रमण के समय चीनी जनता की सहायता के लिए डा0 कोटनीस के नेतृत्व में भारतीय डाक्टरों का दल भेजा गया था। कांग्रेस के अध्यक्ष पंडित जवाहरलाल नेहरू ने चीन का और आपसी कलहग्रस्त स्पेन का दौरा भी किया था।

अपने 'परराष्ट्र-संबंध-विभाग' के लिए लोहिया ने चार पुस्तिकाए लिखीं— 'नागरिक स्वातंत्र्य', 'भारतीय विदेश नीति', 'चीन और हिंदुस्तान' तथा 'विदेशी ठेकेदारों द्वारा लूटमार'।

इन्हीं दिनों लोहिया की अपनी विदेश नीति रूपाकार धारण करने लगी थी और इसके स्पष्ट संकेत आपकी पुस्तिकाओं और पत्रकों में मिलते हैं। एक पुस्तिका में विश्व राजनीति में तीसरी शक्ति की आवश्यकता का प्रतिपादन आपने किया है, इस दिशा में

यह आपका आरंभिक चिंतन था जिसका जोरदार प्रतिपादन आगे चलकर सभी स्तरों पर किया गया। लोहिया का निवेदन है कि "एशिया और अफ्रीका के देशों को चाहिए कि वे नवीन विश्वव्यवस्था को कायम करने के लिए नाजीवाद और साम्राज्यवाद के आपसी संघर्ष से अलग हटकर अपनी तीसरी शक्ति को गठित करें।" कांग्रेस के अध्यक्ष होने के नाते पंडित जवाहरलालजी ने इस पुस्तिका की प्रस्तावना लिखी है। तीसरी शक्ति की संभावना पर मतभेदों की गुंजाइश का संकेत देते हुए आपने यह स्वीकार किया है कि 'यह भी एक दृष्टिकोण हो सकता है।'

बुलेटिन में छपे एक लेख को लेकर एक बार लोहिया और जवाहरलालजी में विवाद भी हुआ था। उन दिनों उत्तर प्रदेश में गोविंदवल्लभ पंत के नेतृत्व में कांग्रेस की सरकार का शासन जारी था। किसी आंदोलन के सिलसिले में पुलिस ने बेतहाशा गोली चलाई जिससे कुछ प्रदर्शक मारे गए थे। लोहिया ने बुलेटिन में इस कांड का निषेध किया; यह बुलेटिन विदेशों में जाता था। गोविंदवल्लभ पंत ने इसके विरोध में जवाहरलालजी के पास शिकायत दर्ज की। जवाहरलालजी ने पूछताछ के सिलेसिले में लोहिया से कहा कि ऐसा करना आपको शोभा नहीं देता और इससे कांग्रेस की ही बदनामी होती है। परंतु लोहिया चुप बैठने वाले जीव नहीं थे, उन्होंने नेहरूजी की बात को अस्वीकार करते हुए उसका तीव्र विरोध किया, हालांकि इस पर नेहरूजी ने अपनी कोई प्रतिक्रिया न दी।

आगे चलकर कांग्रेस कार्यकारी समिति के निर्णय के कारण लोहिया को 'परराष्ट्र-संबंध-विभाग' के सचिव पद को छोड़ना पड़ा। समिति का निर्णय था कि कांग्रेस समाजवादी दल का कोई सदस्य अखिल भारतीय कांग्रेस के किसी भी विभाग के अधिकार पद पर नहीं रहेगा। यह बात दूसरी है कि लोहिया इस निर्णय के कारण तुरंत अपने पद से अलग हो गए लेकिन यह कहा नहीं जा सकता था कि लोहिया इस पद पर अधिक काल बने रहते। इन्हीं दिनों वे यह अनुभव बराबर करते थे कि उन्हें अब भारतीय राजनीति में अलग तरीके से क्रियात्मक भूमिका अदा करनी चाहिए।

जिस समय लोहिया कलकत्ते से इलाहाबाद के लिए रवाना हो गए थे उसी समय कांग्रेस समाजवादी दल में कतिपय अप्रिय घटनाओं के घटित होने की संभावना उभरने लगी थी। कुछ कांग्रेस समाजवादियों का प्रयत्न था कि सभी 'वामपंथियों' को समन्वित कर मार्क्सवाद के बूते पर एक सशक्त समाजवादी पार्टी को गठित किया जाए। खासकर जयप्रकाश नारायण की यह इच्छा थी कि समाजवादी दल और कम्युनिस्ट पहले परस्पर निकट हो जाएं और धीरे धीरे दोनों का एक सशक्त दल बने। जब कांग्रेस समाजवादी पार्टी की बुनियाद रखी गई थी तब इस पार्टी की, 'सोशल फासिस्ट' 'पूंजीवाद का जहरीला अवतार' कहकर कम्युनिस्टों ने निंदा की थी। कम्युनिस्ट पार्टी अपने आरंभ से,1924 से, ही केवल गांधीजी का बल्कि राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन का विरोध करती आई थी। जैसे ही 1936 में कोमिन्टर्न नामक कम्युनिस्टों के अंतर्राष्ट्रीय संगठन ने यह आदेश जारी किया कि संसार भर के कम्युनिस्ट अपने अपने देश में सभी स्वातंत्र्यवादी और प्रगतिशील संगठनों

और आंदोलनों का समर्थन कर उनकी सहायता करें वैसे ही भारतीय कम्युनिस्टों की नीति में, सहसा परिवर्तन हुआ। परिमाणतः कम्युनिस्टों के कांग्रेस में शरीक होने के प्रयास शुरू हो गए। कतिपय मुद्दों पर उन्होंने गांधीजी के नेतृत्व को भी कबूल किया और कांग्रेस समाजवादी अब उनके लिए साथी बन गए। परंतु राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन और जनतंत्र को लेकर कम्युनिस्टों की मूल मान्यताओं में कोई बदलाव नहीं हुआ था। कांग्रेस और कांग्रेस समाजवादी दल के साथ वे इसलिए हुए थे कि स्वाधीनता आंदोलन से संबद्ध होने का दिखावा करने की उनकी राजनैतिक साजिश थी। परंतु इस चालबाजी पर जरा भी गौर न करते हुए 1936 के मेरठ अधिवेशन में कांग्रेस समाजवादी दल ने कम्युनिस्टों के लिए अपने दरवाजे एकदम खुले कर दिए, दल के महत्वपूर्ण अधिकार-पदों पर कम्युनिस्टों की नियुक्तियां तक कर दी गईं। अपनी पार्टी को बरकरार रखकर कम्युनिस्ट कांग्रेस समाजवादी दल में घुस आए। कम्युनिस्टों के दीमक ने कांग्रेस समाजवादी पार्टी को अंदर से खोखला करना शुरू कर दिया था और धीरे धीरे इसके प्रमाण भी प्रकट होने लगे थे, परंतु बावजूद इन सारी घटनाओं के कांग्रेस समाजवादी पार्टी के महामंत्री जयप्रकाश नारायण अविचल थे, उनके कानों पर जूं तक नहीं रेंगती थी। कम्युनिस्टों के साथ एकता प्रस्थापित करने के आत्मघाती प्रयोगों का लोहिया, अच्युत पटवर्धन, मिनू मसानी, अशोक मेहता ने अपने तईं भरसक विरोध किया परंतु जयप्रकाश नारायण टस से मस नहीं हुए। इस परिस्थिति में इन चार नेताओं के सामने पार्टी की राष्ट्रीय समिति से इस्तीफा देकर अलग हो जाने के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं था।

1938 में लाहौर के कांग्रेस समाजवादी पार्टी के अधिवेशन में राष्ट्रीय समिति के सदस्यों के चुनाव के अवसर पर कम्युनिस्टों ने अपने उम्मीदवारों को स्वतंत्र तौर पर प्रत्याशी बनाकर पार्टी पर अधिकार जमाने का प्रयत्न किया तब कहीं जाकर कम्युनिस्टों को अपनी पार्टी से खारिज करने का फैसला कांग्रेस समाजवादी पार्टी ने कर लिया। लेकिन अब तक दक्षिण के प्रदेशों—आंध्र, तमिलनाडु और केरल में कम्युनिस्टों ने अपनी घूसखोरी से समाजवादी पार्टी को पूरा खोखला कर दिया था। परिमाणतः कांग्रेस समाजवादी पार्टी को अपने कई बढ़िया से बढ़िया कार्यकर्ताओं से हाथ धोना पड़ा।

4

'भारत छोड़ो' के लिए अधीरता

1937-38 में इसके आसार धीरे धीरे स्पष्ट होते जा रहे थे कि जर्मनी और इंग्लैंड-फ्रांस में हो रहा सत्ता संघर्ष यूरोप को बड़े युद्ध की ओर घसीट देगा। कांग्रेस की विदेशी नीति के लिए यह कड़ी कसौटी और चुनौती का अवसर था। कांग्रेस में एक स्पष्ट विचार प्रवाह यह था कि संभाव्य युद्ध में फासिस्ट तानाशाह जर्मनी के विरोध में भारत को चाहिए कि वह जनतंत्रवादी इंग्लैंड और फ्रांस का समर्थन करे। लोहिया ने इस विचार का प्रतिवाद किया। आपकी भी स्पष्ट मान्यता थी कि 'भारत का यह परम कर्तव्य है कि वह चीन और स्पेन जैसे लोकतांत्रिक राष्ट्रों का जोरदार समर्थन करे और जर्मनी तथा इंग्लैंड जैसे साम्राज्यवादी राष्ट्रों के आपसी संघर्ष में कोई दखल न दे। ... अगर युद्ध हो ही जाता है तो भारत को चाहिए कि अपनी स्वाधीनता के संघर्ष को अधिक तीव्र और पुरजोर बनाने के लिए वह इस अवसर से लाभ उठाए।' इस आशय की मांग लोहिया और कांग्रेस-समाजवादी पार्टी ने भी की।

1939 के आरंभ में यह बहुत ही स्पष्ट हो गया कि अब महायुद्ध बहुत दूर नहीं है। इसके परिणामस्वरूप कांग्रेस की अंदरूनी मत-भिन्नता भी अधिक प्रकट और उग्र होने लगी कि युद्ध का समर्थन किया जाए अथवा विरोध करते हुए भारतीय स्वाधीनता संघर्ष को बल दिया जाए। इस समय सुभाषचंद्र बोस कांग्रेस के अध्यक्ष बने थे। कांग्रेस समाजवादियों की भांति सुभाषचंद्र का भी यह आग्रह था कि युद्ध के अवसर से लाभ उठाकर कांग्रेस को अपने स्वाधीनता संघर्ष को अधिक तूल देना चाहिए। इसी पृष्ठभूमि पर नवीन वर्ष के अध्यक्ष पद के चुनाव के लिए सुभाषचंद्र एक प्रत्याशी थे, दूसरे थे पट्टाभिसीतारामय्या। दोनों में कांटों का टक्कर हुआ। पट्टाभिसीतारामय्या को वरिष्ठ कांग्रेस नेताओं का खासकर गांधीजी का पूरा समर्थन प्राप्त था और कांग्रेस में रहते हुए गांधी विरोधी गुट और लोहिया को छोड़कर शेष सारे समाजवादियों का समर्थन सुभाषचंद्र को प्राप्त था। लोहिया तटस्थ थे, इसलिए कि उनका यह दृढ़ विश्वास था कि गांधीजी के नेतृत्व में कार्यरत कांग्रेस स्वाधीनता प्राप्ति का एकमात्र सामर्थ्यवान साधन और एकात्मता का प्रतीक थी और संभावी

युद्ध-काल में स्वाधीनता आंदोलन को पुरजोर बनाने की दृष्टि से कांग्रेस में आत्मघाती फूट लोहिया को बिलकुल पसंद नहीं थी। लोहिया को यह भी स्वीकार नहीं था कि सुभाष-पट्टाभि चुनाव संघर्ष को कांग्रेस निहित वामपंथी-दक्षिणपंथी दलों के बीच का संघर्ष कहा जाए। आखिर में सुभाषचंद्र विजयी हुए। गांधीजी ने पट्टाभिसीतारामय्या की हार को अपनी हार माना। लोहिया ने मतदान नहीं किया, वे तटस्थ रहे। सारे के सारे कांग्रेस समाजवादियों ने सुभाषचंद्र के पक्ष में मत दिया। सुभाषबाबू की अध्यक्षता में हरिपुरा में कांग्रेस अधिवेशन आयोजित किया गया था, इसमें एक प्रस्ताव के सिलसिले में बात गांधीजी के प्रति विश्वास था या अविश्वास में उलझ गई। जिन कांग्रेस-समाजवादियों ने सुभाषबाबू को मत दिया था उन्होंने ही अब की बार गांधीजी के पक्ष में अपना मत दिया। गनीमत थी कि लोहिया इस तरीके से अवसरवादी कहलाने से बच गए। जब सवाल गांधीजी अथवा सुभाषचंद्र में चयन का उठा तब लोहिया ने गांधीजी का चयन किया। लोहिया को पूरा भान था कि स्वाधीनता के लिए व्यापक जन-आंदोलन का नेतृत्व सिर्फ गांधीजी ही कर सकते हैं। गांधीजी के चयन का अन्य एक कारण भी था, लोहिया ने गांधीजी की अहिंसात्मक क्रांति को मात्र राजनैतिक आवश्यकता के नाते ही नहीं बल्कि एक निष्ठा के रूप में स्वीकार किया था। इस मुद्दे पर सुभाषचंद्र की मान्यताएं दुलमुल थीं, निष्ठा भी संदिग्ध थी। इस समय जयप्रकाश नारायण के साथ साथ अन्य कई कांग्रेस समाजवादियों की अहिंसा-निष्ठा भी निःसंदिग्ध नहीं थी।

1939 के आरंभ में इंग्लैंड-फ्रांस और जर्मनी के संघर्ष में एक के बाद दूसरी ऐसी कई घटनाएं हुईं कि यूरोप में महायुद्ध का विस्फोट किसी भी क्षण संभव नजर आने लगा। मार्च 1939 में, युद्ध के विरोध में लिखे अपने एक लेख में लोहिया ने अपनी भूमिका स्पष्ट करते हुए लिखा था, "गुलाम भारत की दृष्टि में जितनी पापी ब्रिटिश साम्राज्यशाही है उतनी पापी जर्मनी की हिटलरशाही और जापान की साम्राज्यशाही है। बिना साम्राज्यशाही को समाप्त किए संसार सुरक्षित नहीं हो पाएगा। ब्रिटिश साम्राज्यशाही ने ही फासिज्म को पाल-पोसकर बड़ा किया है। इसलिए भारत को चाहिए कि वह फासिज्म और साम्राज्यशाही, दोनों के विरोध में लड़े, तभी संसार के पराधीन देशों का वह सहायक बनेगा।" इसी समय लोहिया ने युद्ध कर, युद्ध कर्ज और सैनिक भारती जैसे उपक्रमों का विरोध करने का उपाय भी सुझाया था।

धीरे धीरे लोहिया की धारणा दृढ़तर होती गई कि युद्ध के विरोध में सत्याग्रह आंदोलन करने का अवसर निकट आ रहा है। जून 1939 में आपने गांधीजी को पत्र लिखकर निवेदन किया कि वे सत्याग्रह का नारा देकर समूचे देश को युद्ध के विरोध में खड़ा कर दें। न केवल इस आंदोलन की भूमिका और दार्शनिक पृष्ठभूमि के रूप में बल्कि विश्वशांति के लिए भी उपयोगी चार सूत्री योजना लोहिया ने सुझाई थी 1. सभी पराधीन देश स्वाधीन होने चाहिए तथा हर देश में प्रौढ़-वयस्क मतदान के अधिकार और प्रणाली से चुनी गई स्वराज पंचायतों द्वारा अपना अपना संविधान बनाया जाना चाहिए। 2. सभी देश समान समझे जाएं, किसी वंश को कोई भी विशेष अधिकार न सौंपा जाए और संसार के हर

व्यक्ति को यह अधिकार हो कि वह मनचाहे देश में बिना पूर्व अनुमति प्राप्त किए निवासी बन कर रह सके। 3. अगर किसी भी अन्य देश में दूसरा कोई देश संपत्ति अर्जित करता है अथवा उद्योगों में पूंजी लगाता है तो उस संपत्ति और पूंजी को जब्त कर लिया जाए। 4. जब संसार भर के सारे देश इन चार सूत्रों को स्वीकार करेंगे तभी संपूर्ण निरस्त्रीकरण किया जाए।

लोहिया की चतु:सूत्री को गांधीजी ने अपनी स्वीकृति तुरंत दे दी लेकिन सत्याग्रह आंदोलन को तत्काल शुरू करने के लिए मनाही की। गांधीजी ने मनाही के दो कारण कहे थे, अव्वल यह कि समूचे देश ने अभी अहिंसा को निष्ठापूर्वक स्वीकार नहीं किया है और दूसरा यह कि अभी देश में आवश्यक अनुशासन भी नहीं है।

अपनी युद्धविरोधी भूमिका को स्पष्ट करते हुए लोहिया ने कहा था कि दो समतुल दुष्टों में छिड़े संघर्ष में किसी का भी समर्थन किए जाने का कोई उचित कारण नहीं है। भारत के सैनिकों और साधनों का जबरदस्ती उपयोग करते हुए भारतीयों की राष्ट्रीय भावनाओं को ब्रिटेन चुनौती दे रहा है। न केवल भारत को बल्कि एशिया और अफ्रीका के किसी भी पराधीन देश को इस युद्ध से कुछ भी लेना-देना नहीं है। युद्धरत राष्ट्रों में से कोई भी विजयी हो, स्वातंत्र्य और न्यायाधिष्ठित विश्वव्यवस्था कायम करने की दृष्टि से किसी का भी विजयी होना बेमानी है। लोहिया चाहते थे कि संभावी साम्राज्यशाही युद्ध में सम्मिलित न होते हुए भारत को अपने साथ साथ अन्य पराधीन देशों को भी युद्ध के शिकंजों से मुक्ति दिलाने के लिए प्रयत्न करना चाहिए। लोहिया का विश्वास था कि युद्ध का विरोध अंहिसा के रास्ते ही संभव है और परिणामकारक विरोध के लिए आवश्यक शक्ति का निर्माण जनता में कर पाना भी अहिंसा से संभव है। उन्हें लगता था कि युद्ध विरोधी आंदोलन को जनता का व्यापक समर्थन अवश्य प्राप्त होगा। इसके पांच कारण आपने बताए थे : 1. जनता में युद्ध विरोधी भावना पहले से है। 2. देश में दिन-ब-दिन राष्ट्रीय भावना दृढ़ और बलवती होती जा रही है। 3. जनता में स्वातंत्र्य की प्रज्वलित आकांक्षा है। 4. युद्ध की अवधि में होने वाली ब्रिटिशों की दुर्दशा का भान भारतीय जनता को पूरा पूरा है। 5. अहिंसक मार्ग पर बढ़ते विश्वास के कारण जनता में युद्ध में होने वाले नरसंहार को लेकर तीव्र नाराजगी है।

जहां जहां और जब जब अवसर होता लोहिया युद्धविरोधी भूमिका का प्रचार और प्रसार करते थे। लोहिया की इन प्रवृत्तियों के कारण ब्रिटिश सरकार बेचैन थी। प्रत्यक्ष युद्ध अभी शुरू नहीं हुआ था। कलकत्ता विश्वविद्यालय में लोहिया की कर्मभूमि कलकत्ता में ही ऐसे एक भाषण के अपराध में मई 1939 में लोहिया को कैद कर लिया गया था। कलकत्ता के ही चीफ प्रेसिडेंसी मैजिस्ट्रेट के सम्मुख कार्यवाही और सुनवाई हुई। अपनी तरफ से स्वयं लोहिया वकील थे। 14 अगस्त को लोहिया को निर्दोष बताते हुए बरी किया गया था। उनके कानून के गहरे ज्ञान और पैनी दृष्टि पर टिप्पणी करते हुए मैजिस्ट्रेट ने कहा, "अगर आप बैरिस्टर बनते तो बहुत ही सफल रहते।"

युद्धपूर्व परिस्थितियों में नेहरू और कतिपय वरिष्ठ कांग्रेस जनों की मान्यताएं लोहिया

की मान्यताओं की तुलना में एकदम विपरीत थीं। अगर फासिज्म के विरोध में हम जनतंत्र का समर्थन करते हैं तो होने वाले युद्ध में भारत को इंग्लैंड के विरोध में संघर्ष नहीं करना चाहिए; अपनी इस मान्यता के अनुरूप एक तार कांग्रेस अध्यक्ष डा0 राजेंद्रप्रसाद के द्वारा विश्वशांति परिषद के पास इस निवेदन के साथ भेजा था कि स्वाधीनता के एवज में भारत होने वाले युद्ध में अंग्रेजों का सहयोग देने के लिए तैयार है।

अपेक्षा के मुताबिक यूरोप में 1 सितंबर 1939 को युद्ध छिड़ गया। हिटलर की नाजी फौज ने पोलैंड पर धावा बोल दिया। 3 सितंबर को ब्रिटेन ने जर्मनी के विरुद्ध युद्ध का ऐलान किया। फ्रांस भी युद्ध में सम्मिलित हो गया था। इसी के साथ यूरोप में दूसरा महायुद्ध ठन गया। भारतीयों की अनुमति पाए बिना ब्रिटिश सरकार ने उन्हें युद्ध में मानो घसीट लिया, इन पर युद्ध थोप दिया था। वाइसराय लिनालिथगो ने गांधीजी को चर्चा के लिए आमंत्रित किया और बातों बातों में वाइसराय ने गांधीजी का आह्वान किया कि भारत युद्ध में सहयोग करे। अपनी भेंट का इतिवृत्त 'हरिजन' में देते हुए गांधीजी ने लिखा था कि "मैंने अपनी तरफ से कांग्रेस की भूमिका पहले स्पष्ट कर दी और फिर कहा कि सिर्फ मानवता की दृष्टि से इंग्लैंड और फ्रांस के प्रति मेरी सहानुभूति है जो लंदन आज तक अजित रहा है उसके विनाश की कल्पना तक मुझे विह्वल कर देती है, मेरा हृदय कांप उठता है। 'वेस्ट मिनिस्ट एबे' के विनाश की संभावना को भावावेश में मैं शब्दों में बांध नहीं पाया।"

गांधीजी के इस निवेदन पर लोहिया थोड़े से नाराज थे। लोहिया को लगता था कि मात्र मानववादी आधार पर गांधीजी ने इंग्लैंड और फ्रांस के प्रति सहानुभूति भले दिखाई हो परंतु वाइसराय के साथ बातचीत में गांधीजी मर्यादा लांघ कर वचनबद्ध हुए हैं सो गलत है। इसलिए कि इससे गांधीजी ने इंग्लैंड के प्रति पक्षपाती भावना व्यक्त की है गांधीजी के पूरे इतिवृत्त से लोहिया को कभी भी यह जरा भी नहीं लगा कि स्वाधीनता के मुद्दे पर गांधीजी इंग्लैंड के साथ संधि के विषय निर्धारित कर रहे थे। लोहिया को इसका बोध था कि 'वेस्ट मिनिस्टर एबे' के विनाश से गांधीजी को जितना दुख होगा उतना ही मेन्थीन सभागार, मास्को के क्रेमलिन और अमेरिका के जेफरसन स्मृतिस्थान के विनाश से भी होगा। लोहिया ने अपनी प्रतिक्रिया से अवगत कराने के उद्देश्य से गांधीजी को एक पत्र लिखा। बाद में गांधीजी से भेंट भी की, तब गांधीजी बोले, 'मेरे किसी भी वक्तव्य पर आपको जो भी आपत्ति हो मुझे लिखकर सूचित करें, किसी भी विषय पर, कभी भी आप मुझे लिख सकते हैं, आपको खुली छूट है।'

युद्ध के सिलसिले में मात्र नैतिक भूमिका से गांधीजी ने फ्रांस और इंग्लैंड के प्रति सहानुभूति अवश्य व्यक्त की थी परंतु स्पष्ट शब्दों में कोई सहायता देने का आश्वासन गांधीजी ने नहीं दिया था। कांग्रेस की भूमिका स्पष्टतः राजनैतिक धरातल की थी। कांग्रेस ने एक प्रस्ताव पारित करते हुए ब्रिटिश सरकार का आह्वान किया कि वह अपनी युद्ध विषयक भूमिका, कारणों आदि को स्पष्ट करे और यह भी घोषित किया कि अगर भारत को स्वाधीनता देने का आश्वासन दिया जाएगा तो भारत युंद्ध में इंग्लैंड की सहायता करेगा।

वाइसराय और कांग्रेस-नेताओं में बीच बीच में वार्ताएं होती थीं, फिलहाल कुछ छोटे-मोटे अधिकार और भविष्य में स्वायत्त शासन के अधिकार देने का आश्वासन दिलाकर कांग्रेस से सहयोग पाने के लिए वाइसराय प्रयत्नशील थे। यह डर जरूर था कि कहीं कांग्रेस नेता वाइसराय की बातों के बहकावे में गलत-सलत आश्वासन न दे बैठें। इसलिए लोहिया ने डंके की चोट पर साफ साफ समझाया कि 'अगर भारत को तुरंत स्वाधीनता दी जाती है तो, भारत युद्ध में इंग्लैंड के पक्ष में सहायता करने पर विचार करेगा।' लोहिया की भूमिका बहुत साफ थी, इंग्लैंड और फ्रांस जैसे जनतंत्रवादी देशों को चाहिए कि वे साम्राज्यवाद का त्याग करते हुए अपने अधीन उपनिवेशों को तुरंत स्वाधीन घोषित कर दें तभी युद्ध में इनकी सहायता के मसले पर विचार किया जाए।

परंतु जब तक युद्ध जारी था भारत को कोई स्वातंत्र्य अधिकार दिए जाने के पक्ष में इंग्लैंड नहीं था। इंग्लैंड की यह नीति तब अधिक साफ हुई जब वाइसराय और लंदन की ब्रिटिश सरकार ने युद्ध की समाप्ति पर भारत को औपनिवेशक स्वाधीनता, संपूर्ण नहीं, दिए जाने का ऐलान किया।

ब्रिटिश सरकार की इस करारी नीति के कारण कांग्रेस दुविधा में फंस गई। 1935 के कानून के प्रांतिक कानून के मुताबिक चुनाव कराए गए और 1937 में सात राज्यों में कांग्रेसी मंत्रिमंडलों ने सत्ताधिकार ग्रहण किए थे। सरकार के नाते युद्ध विषयक कामकाजों से आलिप्त रहना मुश्किल था और प्रत्यक्ष सम्मिलित होना भी मुश्किल था। आखिर कांग्रेस ने सातों राज्यों के अपने मंत्रिमंडलों को इस्तीफा देने के आदेश दिए। परिमाणतः इन सातों राज्यों में गवर्नर की अनियंत्रित सत्ता चलने लगी। जनता की इच्छा के विरुद्ध जबरदस्ती से युद्ध के लिए आदमियों, साधनों और पैसा इकट्ठा करने का जोरदार अभियान शुरू किया गया।

उत्तर प्रदेश में सुलतानपुर जिले की राजनैतिक परिषद में लोहिया ने कहा था कि "सात राज्यों में गवर्नरों का निरंकुश शासन चल रहा है और सत्याग्रह आंदोलन चलाने के लिए इसे काफी समझना चाहिए। अन्य देशों के शोषण और गुलामगिरी पर अधिष्ठित ब्रिटिश साम्राज्यशाही की इमारत की नींव अब डिग चुकी है, ब्रिटिश सत्ता अपनी डगमगाती इमारत को अधिक काल तक नहीं बचा पाएगी।"

इस वक्तव्य को देने के जुल्म में भारत संरक्षण कानून के तहत इलाहाबाद में अखिल भारतीय कांग्रेस समिति के कार्यालय में लोहिया को 7 जून 1940 को गिरफ्तार किया गया था। इलाहाबाद से उन्हें सुलतानपुर ले जाया गया और कोतवाली को हिरासत में रखा गया। जब जब सुनवाई होती थी लोहिया को अदालत तक, जो तीन मील की दूरी पर थी, हथकड़ियां लगाकर पैदल ले जाते थे। लोहिया ने बेड़ियां लगवाने का विरोध किया तब बल प्रयोग कर बेड़ियां चढ़ाई गईं। सुनवाई के दरम्यान लोहिया ने जो भी बयान दिए उन पर गांधीजी के विचारों की गहरी छाप दिखाई देती है। लोहिया ने कहा कि "पुराने जमाने की लाठी का भी मैं विरोधी था और आज के बमबारी करने वाले हवाई जहाजों का भी। मानव जीवन के चिरस्थायित्व और शस्त्रावलंबन या शस्त्रनिष्ठा के बीच का

विरोधाभास दिन-ब-दिन गहराता जा रहा है। हमारा हर आचरण अहिंसा का पालन करने वाला आचरण होना चाहिए। अहिंसा व्यावहारिक आवश्यकता मात्र नहीं है बल्कि एक नैतिक इष्टता है। मेरे मन में किसी भी राष्ट्र के प्रति विद्वेष या कटुता नहीं है। मैं जर्मनी में रह चुका हूं; सर्वव्यापकता की लगातार तलाश करने की प्रवृत्ति, वैज्ञानिक मानसिक दृष्टि और कार्यक्षमता जैसे उनके गुणों का मैं कायल हूं, मुझे बहुत पसंद हैं ये सारे गुण-विशेष! मुझे इस बात पर बहुत गहरा दुख है कि इन्हीं जर्मन नागरिकों को फिलहाल उस बोझ को ढोना पड़ रहा है जो युद्ध की जय-विजय और पराभव का परिणाम होगा। ब्रिटिशों के साथ मेरा अधिक परिचय नहीं है, हो सकता है कि इनमें भी कुछ गुण-विशेष होंगे। मैं यह कदापि नहीं चाहता कि ब्रिटेन का नाश हो यद्यपि अंग्रेजों ने हम भारतीयों के साथ निंदनीय व्यवहार किया है तथापि मैं नहीं चाहता कि उनका बुरा हो। विपरीत इसके मुझे इस बात पर बहुत खेद है कि ब्रिटिश जनता को आज भी उस पद्धति का बोझ अपने कंधों पर ढोना पड़ रहा है जिसके तहत संसार के राष्ट्रों को गुलाम बनाया जाता है और गुलामी को बरकरार रखा जा रहा है।''

न्यायमूर्ति ने दो साल की बामशक्कत की सजा लोहिया को सुनाई, अपने निर्णय में न्यायमूर्ति ने कहा कि ''मुजरिम न केवल उच्च शिक्षा प्राप्त विद्वान है बल्कि उतना ही सुसंस्कृत सज्जन है। इनके व्यक्तित्व में उदात्त सिद्धांतों और नैतिक चरित्र का अनोखा समन्वय भी है। इनके उदात्त उद्देश्यों पर शंका उठाने की किसी को हिम्मत नहीं होगी। अपने उद्देश्यों की पूर्ति की खातिर चाहे जिस संकट का सामना करने की शक्ति आप में है। इन्हें इस बात की जरा भी चिंता नहीं है कि कितनी लंबी सजा भुगतनी पड़ेगी।''

लोहिया के बाएं हाथ पर भारी बेड़ी चढ़ाई गई और उन्हें बरेली के कारागृह में रवाना कर दिया।

लोहिया के अदालत में दिए हुए बयान में से महत्वपूर्ण अंशों को गांधीजी ने 'हरिजन' में प्रकाशित करवाया था। इस पर लिखी अपनी टिप्पणी में गांधीजी कहते हैं कि ''लोहिया और अन्य कांग्रेसजनों को सुनाई जाने वाली सजाएं, भारत को गुलामी में जकड़ने वाली शृंखला पर हथौड़े के कड़े प्रहार हैं। जब इंग्लैंड युद्ध के संकट से घिरा हुआ है तब कांग्रेस नहीं चाहती कि सविनय अवज्ञा आंदोलन चलाया जाए परंतु सरकार ही हमें विवश कर रही है कि हम आंदोलन चलाएं।''

युद्ध विरोधी प्रचार करने के इल्जाम में पंडित नेहरू, आचार्य नरेंद्रदेव, अच्युत पटवर्धन, जयप्रकाश नारायण और अन्य सैकड़ों कांग्रेस और समाजवादी कार्यकर्ताओं को जेल में बंद कर दिया गया था। गांधीजी का निवेदन था, ''मैं तो हर युद्ध को गैरकानूनी समझता हूं लेकिन मेरे पास ऐसा कोई उपाय नहीं जिससे युद्ध को रोका जा सके। इसलिए एक तरफ से मैं युद्ध को झेल रहा हूं और दूसरी ओर से युद्धखोरों के अत्याचारों को भी सह रहा हूं।'' परंतु लगता है कि सितंबर 1940 के आसपास गांधीजी की सहनशक्ति अपनी पराकाष्ठा पर पहुंच गई थी; उन्होंने कहा, ''जब तक डा. लोहिया और जयप्रकाश जेल में बंद हैं तब तक मुझे चैन नहीं होगा क्योंकि इनसे बढ़कर अधिक शूर और प्रांजल व्यक्ति

मैं जानता नहीं हूं।'

कांग्रेस के और गैर कांग्रेसी लड़ाकू कार्यकर्ताओं का साम्राज्यवादी युद्ध के विरुद्ध सामुदायिक आंदोलन शुरू किए जाने के लिए दबाव बढ़ता आ रहा था। सुभाष बाबू ने आंदोलन के लिए ललकारा था और जयप्रकाशजी ने जेल में से ही कांग्रेस का आह्वान किया कि वह आंदोलन शुरू करे।

परंत अब भी गांधीजी सामुदायिक आंदोलन को शुरू करने के पक्ष में नहीं थे। उन्होंने और कांग्रेस ने प्रतीकात्मक तौर पर युद्ध विरोध के लिए देश का आह्वान किया। 'न एक भाई न एक पाई'—ब्रिटिशों को युद्ध के लिए पैसा और सैनिक देना अनुचित है। हर युद्ध का अहिंसात्मक प्रतीकार किया जाए क्योंकि यही उचित कार्य है। इस घोषणा और वक्तव्य को देते हुए अक्तूबर 1940 से दिसंबर 1941 तक लगभग 25000 वैयक्तिक सत्याग्रहियों ने गिरफ्तारी करवाई।

7 दिसंबर 1941 को जापान ने पर्ल हार्बर बहुत बड़े अमरीकी नौ अड्डे पर बमबारी की और युद्ध निर्णायक मोड़ पर पहुंच गया। यूरोपीय सत्ता संघर्ष में एक एशियाई देश उतर आया था, इससे युद्ध की व्याप्ति बढ़ गई और अब सही मायने में वह विश्व युद्ध बन गया। सिर्फ तीन-चार महीनों की अल्पावधि में जापान ने एक एक कर एशिया के कई देशों पर अपना अधिकार कर लिया था। ब्रिटिश सरकार की अभेद्य घेराबंदी के प्रतीक सिंगापुर को अधीन कर लिया और ब्रिटिश अजेयता को मिट्टी में मिला दिया। सिंगापुर, मलाया, थाइलैंड, इंडोनेशिया, फिलिपिंस, के साथ प्रशांत महासागर के अनेक द्वीपों और आखिर में ब्रह्मदेश को जीत कर जापानी सेना भारत की उत्तरी-पूर्व सीमा पर आ पहुंची।

जापान की विजयी घुड़दौड़ का भारतीय जनमानस पर वह परिणाम हो रहा था जो ब्रिटिशों के जरा भी अनुकूल नहीं था। जब जब जापान ब्रिटिशों को हराता तब तब भारतीय मन आनंदित होता था। जापान के प्रति भारतीयों का आकर्षण दिन-ब-दिन बढ़ने लगा। भारतीय जनमानस से वह विश्वास उठ गया कि ब्रिटिश सेना भारत की हर संभवी आक्रमण से संरक्षण करेगी।

परिणामतः ब्रिटेन को यह जरूरी लगने लगा कि भारत विषयक अपनी आज तक चलाई गई नीति में परिवर्तन किया जाए। अमेरिका और चीन ब्रिटेन के युद्ध मित्र थे उनकी ओर से ब्रिटेन पर यह दबाव बढ़ता गया कि वह भारत के साथ समझौता करे। आखिर ब्रिटेन ने समझौते की दिशा में एक कदम उठाया। पंडित नेहरू, आचार्य नरेंद्रदेव, लोहिया, अच्युत पटवर्धन आदि राजबंदी बनाए गए नेताओं को मुक्त किया गया। परंतु जयप्रकाश को रिहा नहीं किया गया। कांग्रेस नेताओं के साथ बातचीत के दौर शुरू हुए। ब्रिटिश सरकार ने ऐलान किया कि युद्ध की समाप्ति पर भारत को औपनिवेशिक स्वाधीनता दी जाएगी। परंतु इस ऐलान में इस बात का कोई संकेत नहीं था कि भारत को स्वराज्य की ओर ले जाने वाले कौन से और कितने राजनैतिक अधिकार तुरंत युद्धकाल में दिए जाएंगे। इस घोषणा में भारत की संपूर्ण स्वाधीनता की स्वीकृति नहीं थी। साथ ही उन प्रदेशों को अलग रहने की इच्छा थी उन्हें अलग रहने के स्वातंत्र्य की स्वीकृति इस घोषणा में थी। इस प्रकार

देश के टुकड़े करने वाली घोषणा थी यह कुल मिलाकर। इस ऐलान के बाद भारतीय नेताओं के साथ चर्चा करने के लिए सर स्ट्रफर्ड क्रिप्स-ब्रिटेन के मंत्री मय एक योजना के भारत आ पहुंचे। चर्चा का चर्वितचर्वण बहुत दिनों तक चलता रहा। इससे एक बात फिर से पक्की हो गई कि किसी भी हालत में भारत को स्वाधीनता के कोई अधिकार तुरंत देने के लिए ब्रिटिश सरकार तैयार नहीं है। कांग्रेस ने क्रिप्स योजना को साफ साफ अस्वीकार किया। क्रिप्स योजना पर गांधीजी की व्यंग्यभरी टिप्पणी थी—'डूबने वाले बैंक पर लिखा गया अगली तारीख का चेक यानी प्रस्तुत क्रिप्स योजना है !'

क्रिप्स के साथ बातचीत के असफल रहने पर सब से अधिक दुख जवाहरलालजी को हुआ क्योंकि अगर सम्मानजनक समझौता होता तो वे बहुत चाहते थे कि फासिस्ट शक्तियों के विरुद्ध मित्र राष्ट्रों की भरसक सहायता की जा सके। छापामार टोलियां बनाकर जापान का मुकाबला करने की बातें नेहरू करते थे। वास्तव में नेहरूजी दुविधा में फंस गए थे। लोहिया चाहते थे कि इस अवसर पर नेहरूजी को भारतीय युवाओं का प्रखर और दृढ़ नेतृत्व करना चाहिए। इसलिए निराश लोहिया ने एक बार जवाहरलालजी को स्पष्ट तौर पर आगाह किया, "जवाहरलालजी अपनी नीति-मान्यताओं में वांछित परिवर्तन करें वरना जो युवा पीढ़ी आज तक दो नेताओं को मानती चली आई है वह एक को ही मानेगी !"

कांग्रेस नेतृत्व शृंगापत्ति में फंस गया, और कांग्रेस पर अकर्मण्यता और निराशा का दौर पड़ा। एक ओर ब्रिटिश सरकार अपनी नीति पर अडिग थी तो दूसरी ओर विदेशी सरकार को अपनी नीति में परिवर्तन हेतु विवश करने के लिए सत्याग्रह का आंदोलन शुरू किया जाए या नहीं इस का निर्णय कांग्रेस नेतृत्व नहीं कर पा रहा था, इस दुविधा का कोई उपाय नजर नहीं आ रहा था। प्रतीकात्मक और नैतिक स्तर पर चल रहा युद्धविरोधी वैयक्तिक सत्याग्रह का आंदोलन समाप्त हो चुका था। नजर कैद से भागकर सुभाष बाबू जर्मनी पहुंच गए थे ताकि उसकी सहायता से भारत को स्वाधीन किया जा सके। स्वाधीनता के लिए भारत किस कदर ललक रहा था इसका प्रतीक था सुभाष बाबू के सारे प्रयत्न। जयप्रकाश नारायण, उनके सैकड़ों समाजवादी अनुयायी और सुभाषचंद्र के अनुयायी अभी कैद में ही थे। समाजवादियों और कांग्रेस के अन्य संघर्षशील गुटों का सामूहिक संघर्ष करने के लिए गांधीजी पर दबाव बढ़ता जा रहा था।

क्रिप्स-वार्तालाप की असफलता को देखते हुए 'हरिजन' में लिखे अपने लेख में लोहिया ने गांधीजी का आह्वान किया था कि अब तुरंत ही सामूहिक सत्याग्रह आंदोलन को चलाया जाए। इंग्लैंड-अमेरिका आदि दोस्त राष्ट्रों के एशिया में हुए पराभव का विश्लेषण करते हुए आपने लिखा था, "इंग्लैंड, फ्रांस आदि साम्राज्यवादी राष्ट्रों ने अपने अपने उपनिवेशों में जनता को गुलामी में इस कदर जकड़ रखा है कि वह पूरी निःशक्त बन गई है और इसमें जापान के विरोध में लड़ने की शक्ति जरा भी बाकी नहीं है।" इसी मुद्दे पर आपने आह्वान किया कि वर्तमान युद्ध गुलाम राष्ट्रों की स्वाधीनता का संग्राम बन जाए।

वैसे तो समूचे देश भर में परंतु सीमावर्ती बंगाल, बिहार, असम में युद्ध सहायता

पाने के लिए जनता पर अनन्वित जुल्म जबरदस्ती ढाया जा रहा था। रोज होने वाले अत्याचारों का वृत्त गांधीजी के पास पहुंचता था। गांधीजी बहुत बेचैन थे। परेशान जनता में ब्रिटिशों के विरोध में परंतु जापान के लिए अनुकूल भावना उभरती जा रही थी। स्वातंत्र्य भावना के विरोध में पड़ने वाली भावना थी यह ! गांधीजी ने इस खतरे को पहचान लिया था और धीरे धीरे अपनी नीति-धारणाओं में परिवर्तन कर दिया। परिणामतः गांधीजी इस निर्णय पर पहुंचे कि जब तक अंग्रेज और अंग्रेजों की सेना भारत में है तब तक भारत को जापान के आक्रमण का खतरा होगा इसलिए यह जरूरी हो गया है कि अंग्रेज भारत से चले जाएं।

26 अप्रैल 1942 के 'हरिजन' के अंक में अपने संपादकीय में जिसका शीर्षक 'हिंदुस्तान में विदेशी सैनिक' था, गांधीजी ने ब्रिटिशों का प्रकट आह्वान किया था कि वे देश छोड़कर चले जाएं। यह लेख गांधीजी की परिवर्तित मानसिकता का ही नहीं बल्कि परिणाम में बदली उनकी ब्रिटिश-विषयक मान्यताओं का भी संकेत देता था। तुरंत अगले ही महीने में बंबई में आयोजित पत्रकार परिषद में संवाददाताओं को संबोधित करते हुए गांधीजी ने कहा था कि "एक समय वह भी था कि जब मेरी सहानुभूति इंग्लैंड के साथ थी परंतु आज मेरा मन कह रहा है कि मैं ब्रिटिशों का नैतिक समर्थन तक न करूं !"

कुल मिलाकर, लोहिया और समाजवादियों ने गांधीजी के प्रति जो विश्वास दिखाया था वह सार्थक सिद्ध हुआ।

अप्रैल 1942 के बाद लगातार तीन-साढ़े तीन महीनों में गांधीजी अपनी भूमिका को 'हरिजन' के जरिए स्पष्ट और स्पष्टतम करते गए। इससे देश-विदेश का साधारण जनता का समर्थन पाने का भी उनका प्रयत्न लगातार जारी था।

इन दिनों लोहिया का गांधीजी से संपर्क बराबर बना हुआ था। गांधीजी से लोहिया का आग्रह भी बराबर जारी था कि ब्रिटिश सत्ता के विरोध में सत्याग्रह आंदोलन अविलंब शुरू कर दिया जाए। एक बार जब लोहिया गांधीजी से मिले थे तब आपने एक अभिनव सुझाव गांधीजी को दिया कि वे वाइसराय के जरिए यह मांग करें कि 'युद्धरत राष्ट्रों को चाहिए कि वे भारत के सभी प्रमुख शहरों को 'मुक्त शहर' घोषित करें; लोहिया का दावा था कि हर युद्धरत देश प्रतिपक्ष से इस तरह मांग कर सकता है। 'मुक्त शहर' पर बमबारी—कोई भी युद्धरत क्यों न हो—नहीं कर सकता और न इन शहरों में शस्त्रास्त्रों के कारखाने लगा सकता है। गांधीजी को लोहिया का सुझाव अनुकूल और उचित लगा। गांधीजी ने वाइसराय को एक पत्र लिखा, जिसे लोहिया को भी दिखाया था; और यह कहा कि 'अहिंसानिष्ठ समाजवादी लोहिया ने यह सुझाव दिया है कि भारतीय शहरों को 'मुक्त शहर' मानने के लिए सारे युद्धरत राष्ट्र अपनी अपनी अनुमति दें और इस तरह का ऐलान किया जाए।' परंतु लोहिया इस पत्र मात्र से संतुष्ट नहीं थे, वे चाहते थे कि गांधीजी इस सुझाव को अपना बनाकर वाइसराय को 'गांधीजी का सुझाव' दें। परंतु गांधीजी इसके लिए तैयार नहीं थे, साथ ही इस पत्र के कारण संभवनीय खतरे का संकेत

भी किसी ने दिया कि 'अगर ऐसा पत्र वाइसराय को भेजा जाएगा तो हम अपने ही हाथों लोहिया को ब्रिटिश पुलिस के हवाले करेंगे' गांधीजी ने भी इस खतरे को भांप लिया और आखिर इस पत्र को भेजा नहीं गया।

लोहिया यह भी चाहते थे कि औपनिवेशिक और गुलाम राष्ट्र जनतंत्रवादी परंतु युद्धरत अमेरिका, इंग्लैंड, फ्रांस जैसे देशों से यह मांग करें कि न्यायाधिष्ठित नई विश्वव्यवस्था में वे अपनी युद्धनीति को वैचारिक धरातल पर प्रस्थापित करें। इस आशय की एक योजना भी लोहिया ने गांधीजी को प्रस्तुत की थी। इस योजना के प्रमुख मुद्दे थे—संसार के सभी गुलाम राष्ट्रों को तुरंत स्वाधीनता दी जाए, गुलाम देशों में लगी विदेशी पूंजी को जब्त कर लिया जाए, संसार के हर नागरिक को संसार के किसी भी देश का निवासी होने का अधिकार हो, और विश्व नागरिकता की भावना का इस प्रकार निर्माण किया जाए। गांधीजी ने प्रस्तुत योजना को अनुकूलता दिखाई और अपने समर्थन के साथ इसे 'हरिजन' में प्रकाशित भी किया।

गांधीजी और नेहरू, आजाद जैसे कांग्रेस में इस मुद्दे पर मतभिन्नता थी कि जब संसार में एक तरफ जनतंत्रवादी शक्तियों और दूसरी तरफ फासिस्ट शक्तियों के बीच निर्णायक संघर्ष जारी है तब क्या यह उचित होगा कि भारत में ब्रिटिशों के विरोध में संघर्ष शुरू किया जाए ? इस मतभिन्नता को समाप्त करने के लिए गांधीजी को लगभग तीन-साढ़े तीन महीने लगातार अथक घोरतम प्रयत्न करने पड़े थे। पहले कांग्रेस कार्यकारी समिति में, और बाद में अखिल भारतीय कांग्रेस महासमिति ने गांधीजी की भूमिका को सर्वानुमति से स्वीकार किया। परिमाणतः 7 और 8 अगस्त 1942 को बंबई में आयोजित अधिवेशन में बहुत बड़े समर्थन के साथ यह प्रस्ताव पारित किया गया कि ब्रिटिशों को चाहिए कि वे भारत में से तुरंत चले जाएं और भारतीय जनता इसके लिए व्यापक और तीव्र आंदोलन करने के लिए तत्पर हो जाए। इस प्रस्ताव का कांग्रेस में अल्पमत में बचेखुचे कम्युनिस्टों और रायवादियों ने विरोध किया। जिस युद्ध के आरंभ होते ही कम्युनिस्टों ने जिसे साम्राज्यवादी युद्ध कहकर अस्वीकार किया था वही युद्ध जैसे ही रूस इसमें दोस्त राष्ट्रों की ओर से सहभागी हुआ, अपना और 'लोकयुद्ध' या 'जनवादी युद्ध' लगने लगा था। इसलिए साम्राज्यवाद के विरोधी कम्युनिस्टों ने साम्राज्यवादी इंग्लैंड-फ्रांस के पक्ष में अपना समर्थन दिया था।

लोहिया और आचार्य नरेंद्रदेव ने प्रस्ताव का जोरदार समर्थन किया था, लोहिया ने अपने भाषण में कम्युनिस्टों की नीति पर जोरदार आघात किया। इस अवसर पर जयप्रकाश नारायण, चूंकि जेल में थे, इस अधिवेशन में उपस्थित नहीं हो सके थे। 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव के पारित होने से न केवल भारत के राजनैतिक इतिहास का बल्कि लोहिया के जीवन का भी अत्यंत महत्वपूर्ण और नया अध्याय आरंभ हुआ।

5

भूमिगत क्रांतिनेता

8 अगस्त 1942 की देर रात को अखिल भारतीय कांग्रेस महासमिति ने 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव पारित किया और 9 अगस्त के सवेरे ही गांधीजी के साथ नेहरू, आजाद, पटेल आदि कार्यकारी समिति के सभी सदस्यों को गिरफ्तार कर जेल में बंद कर दिया गया। इसी दिन समूचे देश भर में ऐतिहासिक अगस्त क्रांति पर्व का आरंभ भी हुआ।

9 अगस्त को जिन्हें गिरफ्तार नहीं किया गया था या जो पुलिस से बच निकले थे वे सारे वरिष्ठ और कनिष्ठ समाजवादी नेता और कार्यकर्ता पूर्व निश्चित गोपनीय निर्णय के मुताबिक भूमिगत हो गए। सुचेता कृपलानी जैसे कुछ गांधीवादी और विधायक कार्यकर्ता तक भूमिगत हो गए। सबने सम्मिलित होकर एक भूमिगत मध्यवर्ती संचालक समिति (सेंट्रल डायरेक्टोरेट) स्थापित की और अखिल भारतीय कांग्रेस समिति के प्रतिनिधि के नाते संघर्ष का मार्गदर्शन किया।

लोहिया, अच्युत पटवर्धन, अरुणा आसफअली जैसे वरिष्ठ समाजवादी नेताओं के साथ पूरा समाजवादी पक्ष भूमिगत आंदोलन में हमेशा मोर्चे पर अग्रणी रहता था। अपनी समूची संगठन शक्ति के साथ समाजवादियों ने जनता की जाग्रत स्वातंत्र्य आकांक्षा को ब्रिटिश सरकार के विरोध में संघर्षरत बनाने का काम शुरू किया। कार्य का अलिखित विभाजन हुआ। संगठनात्मक कार्य करते हुए लोहिया ने अगस्त क्रांति को स्पष्ट वैचारिक आधार और संघर्षनीति दी। इसे सफलता दिलाने हेतु कई पत्र-पत्रिकाएं प्रकाशित-प्रसारित कीं और कई छोटी-बड़ी पुस्तकें भी प्रकाशित कीं जो आगे चलकर क्रांतिसाहित्य में महत्वपूर्ण ऐतिहासिक दस्तावेज बन गईं। अखिल भारतीय कांग्रेस की ओर से प्रतिदिन नए नए कार्यक्रम-उपक्रमों को लोहिया दिया करते थे। अगस्त क्रांति के दूसरे अग्रणी नेता अच्युत पटवर्धन ने भी यह स्पष्ट कर दिया है कि क्रांति को दृढ़ वैचारिक अधिष्ठान देने का श्रेय लोहिया को ही है। पुलिस चौकियों, रेल स्थानकों, तार-टेलीफोन और पोस्ट कार्यालयों पर अल्पकालीन ही सही परंतु पूरी प्रखरता के साथ अधिकार करने की योजना लोहिया की ही थी क्योंकि विदेशी शासन के इन प्रतीकों को नष्ट करने से और इन मर्म स्थानों पर

स्वामित्व जमाने से ही ब्रिटिशों को यहां से खदेड़ देना संभव था। परंतु इन सारे कामों में मानव पर अत्याचार और मानव हत्या न हो इस पर भी लोहिया ने साग्रह बल दिया था।

परंतु यह भी ध्यातव्य है कि लोहिया की दृष्टि परदासता से मुक्ति तक सीमित या संकीर्ण नहीं थी। अपने इन दिनों प्रकाशित एक भूमिगत पत्र में आपने अपनी मान्यता को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि "यह सर्वविदित है कि विगत डेढ़ सौ वर्षों की गुलामी के बावजूद भारत संसार भर में विश्व इतिहास का विषय बना हुआ है। भारत को चाहिए कि वह विश्व इतिहास का एक विषय मात्र न रहकर विश्व इतिहास का निर्माता बने।"

ब्रिटिश सरकार के गुप्तचरों को चकमा देकर 8 अगस्त 1942 से 20 मई 1944 तक भूमिगत रहते हुए लोहिया ने क्रांति का जिम्मा निभाया। न केवल लोहिया के बल्कि इन दिनों क्रांति में समर्पित कई नेताओं की क्रांति-अवधि की प्रवृत्तियों और गतिविधियों, हलचलों और कारनामों का सही सही ज्ञान किसी के पास सप्रमाण नहीं है। वैसे पता नहीं इसे क्या कहा जाए परंतु सत्य यही है कि भारत छोड़ो क्रांतिकालीन समस्त घटनाओं, पद्धतियों और तौर-तरीकों, नेताओं की हलचलों, सरकारी और खासकर पुलिस और सेना की कार्य-प्रणालियों पर क्रांति के परिणामों आदि का सम्यक् और यथार्थ इतिहास आज तक अज्ञात है।

लोहिया के भूमिगत जीवन का अधिकतर काल बंबई और कलकत्ते जैसे महानगरों में बीता, कारण साफ था, पुलिस की नजर से बचकर शहरों में ही रहा जा सकता है। लोहिया की प्रेरणा से ही बंबई और कलकत्ते से भूमिगत कांग्रेस आकाशवाणी केंद्र कार्यान्वित हुए थे। बंबई केंद्र ने पूरे 90 दिनों तक अपने अविरत प्रसारणों के जरिए क्रांति का संदेश जन जन तक पहुंचाया था। परदेसों में बसने वाले स्वातंत्र्य प्रिय भारतीय भी बड़ी उत्सुकता और उतावली से कांग्रेस रेडियो सुना करते थे। बंबई और कलकत्ते से प्रसारित अधिकतर वक्तव्य लोहिया के लिखे हुए थे। अपने वक्तव्यों में लोहिया ने संसार के स्वातंत्र्य प्रेमी राष्ट्रों का लगातार यह आह्वान किया कि वे भारतीय स्वाधीनता संग्राम को अपना भरसक समर्थन प्रदान करें।

एक बार आकाशवाणी केंद्र पर छापा मारने के लिए पुलिस पहुंची थी परंतु बड़ी कुशलता के साथ लोहिया और उनके साथी वहां से खिसक जाने में सफल हुए। एक बार तो वह अवसर आया था कि लोहिया, अरुणा आसफअली और अच्युत पटवर्धन, तीनों सर्वोच्च नेता गिरफ्तार हो जाते परंतु संयोगवश इस दुर्धर प्रसंग से तीनों सही सलामत निकल गए।

कलकत्ता के अज्ञात आकाशवाणी केंद्र से लोहिया ने जो धुआंधार और जोरदार प्रसारण किए वे कलकत्ते को प्रज्वलित करने में बहुत प्रभावशाली सिद्ध हुए।

लोहिया के अज्ञातवासी जीवन का एक प्रसंग वाकई रोमहर्षक रहा है। जयप्रकाशजी के नेतृत्व में नेपाल में भूमिगत क्रांतिकारियों का एक शिविर आयोजित था, लोहिया भी

इस शिविर में शरीक थे। अंग्रेज सरकार के आदेश पर नेपाल सरकार ने लोहिया, जयप्रकाश, आदि पांच नेताओं को मई 1943 में गिरफ्तार किया और पहाड़ी इलाके के हनुमाननगर की पुलिस हवालात में बंद कर दिया था। अपने कब्जे में इन कैदियों को लेने के लिए ब्रिटिशों का फौजी दल नेपाल-भारत की सीमा पर आने वाला था और इसकी खबर क्रांतिकारियों के छापामार दस्ते ने जैसे ही पाई उन्होंने अपने नेताओं को इससे भगा ले जाने की योजना तैयार की। छापामार दस्ता रात को हनुमाननगर की पुलिस हवालात के पास पहुंचा, आसपास की बिजली पहले ही गुम करा दी गई थी, हवालात के रखवालों को बांध दिया गया और छापामार दस्ता लोहिया और जयप्रकाश को लेकर भारतीय सीमा में सकुशल लौट आया।

आखिर, 10 मई 1944 को लोहिया को गिरफ्तार करने में—अर्थात 21 महीनों के बाद—पुलिस को सफलता मिली। लोहिया की गिरफ्तारी से भूमिगत आंदोलन को बहुत बड़ी हानि हुई।

लोहिया का अज्ञातवास समाप्त हुआ; वैसे यह बहुत सही है कि लोहिया का स्वभाव भूमिगत कार्य के लिए अनुकूल जरा भी नहीं था। मुक्त प्रचार और मुक्त संचार की गांधीवादी परंपरा के आप कायल थे। इसलिए एक तरीके से भूमिगत गोपनीयता, कभी कभी झूठ बोलने की अनिवार्य विवशता जैसी क्लेशकारक अपरिहार्यताओं से लोहिया को मुक्ति मिल गई।

एक महीना भर बंबई के कारागृह में रखने के बाद लोहिया को लाहौर फोर्ट-जेल में ले जाया गया। इस जेल का नाम सबसे खतरनाक कैदियों की जेल के नाते प्रसिद्ध था। कैदियों से वांछित और आवश्यक जानकारी पाने के लिए दी जाने वाली यंत्रणाओं के लिए लाहौर जेल कुख्यात था। इसी कारागृह में पहले शहीद-ए-आजम भगत सिंह को रखा गया था। लोहिया के सहकारी रामनंदन मिश्र और जयप्रकाश नारायण को भी इसी कैदखाने में रखा गया था।

लोहिया को जब लाहौर फोर्ट जेल में रखा गया था तब उन्हें यह पता नहीं चल पाया था कि उन्हें लाहौर ले जाया जा रहा है। कुछ दिनों बाद ही पुलिस ने लोहिया को मानसिक और शारीरिक यंत्रणाएं देना शुरू किया ताकि वे सारी जानकारी बयान करें। आरंभ के कुछ दिनों तक ही क्रम जारी था—जेल की कोठरी से दफ्तर तक ले जाते और ले आते, बस ! रात-दिन यही काम होता था। आगे चलकर कार्यालय में कुर्सी पर बिठा देते थे, लगातार घंटों सिर्फ बैठना था। कभी कोई पुलिस अधिकारी उनके सामने एक ही शब्द या वाक्य सौ-पचास बार बीच बीच में दुहराता जाता था। फिर रातभर कुर्सी पर बिठाकर रतजगा की यंत्रणा शुरू की गई। पलक झपकने में जितनी अवधि लगती है इससे अधिक तक आंखें बंद करने की इजाजत नहीं दी जाती थी। अगर कभी आंखें बंद हो जातीं तो पुलिस बेड़ियों की जंजीर खींचा करती थी। कभी आंख लगने पर पुलिस वाले लोहिया को झकझोर देते थे। लगातार पांच दिन-रात कुर्सी पर बिठा रखना, बिना नींद

क़ी अनुमति के इस प्रकार की यंत्रणा को झेलते झेलते चार महीने बीत गए। इसी समय लोहिया को उत्तेजित करने के उद्देश्य से पुलिस ने गांधीजी के बारे में कुछ अपशब्दों को कहा और स्वाभाविक प्रतिक्रिया के रूप में लोहिया बौखला उठे, ऐसी हरकतों से बाज आने के लिए पुलिसवाले को ताकीद दी। इसी तरह का एक अन्य प्रसंग—मुश्किल से सवेरे के चार पांच का समय होगा, लगातार जागरण क़ी पांचवीं रात थी, लोहिया को लगता था कि मानो अपना मस्तक गर्म राख में रखा गया हो, इस कदर सिर तप्त था, लोहिया ने आंखें मूंद ली थीं, सामने खड़े अंग्रेज पुलिस अधिकारी को लपक कर आते देख लोहिया शांत और गंभीरता से बोले, "मारना चाहते हैं ? लेकिन ऐसा करना उचित नहीं है !" इस पर अधिकारी पीछे हट गया। उसने चिल्लाकर अन्य पुलिसवालों को सहायता के लिए पुकारा। दरवाजे पर खड़ा बंदूकधारी और अन्य चार पुलिसवाले दौड़ कर अंदर आए। उन्होंने लोहिया को कुर्सी से उठाया और दीवार से सटाकर खड़ा कर दिया। जैसे ही अधिकारी नजदीक आने लगा लोहिया चिल्लाए 'किले का डरपोक'! पुलिसवालों ने लोहिया को नीचे गिरा दिया, जमीन पर बिछे खुरदरे टाट पर कई बार घसीटा, यह पीड़ा घंटे भर चलती रही।

कभी कभार पुलिस वाले उल्टी चाल भी चलते थे अर्थात लोहिया की तारीफ करते, पैरों पड़ते और जानकारी पाने का प्रयास करते थे। इन सारी यंत्रणाओं से लोहिया को बड़ी घिन हुई। लेकिन पुलिस वाले जो चाहते थे वह लोहिया ने कभी नहीं कहा। लोहिया का एक ही बयान सदा रहता था। "मेरे अपने बारे में आप जो चाहें मुझ से पूछ लें परंतु ऐसा एक भी शव्द मैं नहीं कहूंगा जिससे अन्य किसी को गुनहगार सिद्ध किया जा सके, और इस प्रकार की आपकी आशा निरर्थक है।" जिसने भगतसिंह की पूछताछ की थी वही अधिकारी लोहिया के लिए तैनात था। लोहिया को उकसाने के लिए वह बोला, "भगत सिंह ने कई गोपनीय बातों का भेद खोल दिया था।" लोहिया ने तुरंत जवाब दिया, "भगत सिंह अवस्था में छोटा था, छोटों के लिए कई बातें क्षम्य और उपेक्षणीय होती हैं, प्रौढ़ों के लिए वे लागू नहीं होती।"

चार महीनों के इस यंत्रणा कांड में एक बार लगातार दस दिन-रात लोहिया को नींद नहीं मिली। परिमाणतः लोहिया के मुख और नाक से रक्तस्राव होने लगा। नाक में रक्त जम गया, कुछ दिनों तक तेज बुखार चढ़ा। इन चार महीनों में एक बार भी दांत मांजने के लिए न पेस्ट दिया गया और न ब्रश, यहां तक कि मंजन भी नहीं दिया गया। सिर्फ एक बार नहाने दिया गया लेकिन उस दिन का खाना लोहिया को ऐवज में छोड़ना पड़ा था। लगातार के निद्रानाश के कारण लोहिया को हमेशा लगता रहता था कि अपने मस्तक से आग की लपटें या गर्म पानी की भाप उठ रही है। कभी न कभी इन लपटों-भापों के कारण मस्तिष्क छिन्न विच्छिन्न हो जाएगा। इन्हीं यंत्रणाओं से गुजरने के कारण लोहिया का हृदय हमेशा के लिए कमजोर हो गया और दांत खराब !

इस तरह की जानलेवा यंत्रणाओं को क्यों और किस बल पर वे झेल सके इसका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करते हुए लोहिया ने बाद में एक लेख में कहा कि "इन दिनों मैं

एक बहुत बड़ा सबक सीख सका और वह है कि कोई भी दुख असहनीय नहीं होता, मेरे लिए यह पाठ अविस्मरणीय रहा है। हम में जो भी भीति होती है वह भविष्य के दुखों की कल्पना से निर्मित होती है। हर भारतीय कभी न कभी योग और हठयोग के बारे में पढ़ता-सुनता अवश्य है; मैंने भी बचपन में पिताजी से पतंजलि के दो योगसूत्र सुने थे। योग का मतलब है इच्छास्रोतों का नियंत्रण और संयम। क्या मैं इसे निभा सकता हूं ? इसे आजमाने का अवसर मुझे लाहौर जेल में मिला। मैं हमेशा यही अनुभव करता रहा कि इस बहाने मैं हठयोग का प्रयोग कर रहा हूं। और इसी साधनावस्था को प्राप्त करने से मुझे वह शक्ति प्राप्त हुई जिसके सहारे मैं सारी यातनाओं-यंत्रणाओं से पार उतर आया।"

छह महीनों के बाद लोहिया को आगरा की जेल में भेजा गया। आपने यहां से ब्रिटिंश मजदूर पार्टी के प्रसिद्ध नेता प्रो0 हेराल्ड लास्की के नाम एक पत्र लिखा, इसमें आपने बड़े विस्तार से लिखा कि किस तरह भारतीय स्वाधीनता आंदोलन का गला घोंट देने के लिए ब्रिटिश सरकार निघृण अत्याचारों को, रक्तपातों को ढहा रही है; इसी में आपने लाहौर जेल की यातना-यंत्रणा के बारे में सविस्तार लिखकर दो टूक सवाल भी किया कि "क्या आपकी संसद में ऐसा कोई व्यक्ति नहीं जो अपने पक्ष की बनी सरकार के पाखंड को बेनकाब कर दे ?"

भूमिगत क्रांति के प्रयत्न मद्धिम होते होते लगभग समाप्ति पर थे और लोहिया को अब थोड़ी-सी फुरसत मयस्सर थी। इस समय अर्थात भूमिगत आंदोलन के अंतिम दो-चार महीनों में आपने 'इकोनामिक्स आफ्टर मार्क्स'—मार्क्सोत्तर अर्थशास्त्र—शीर्षक से एक दीर्घ प्रवंध का लेखन पूर्ण किया। भूमिगत जीवन की अस्थिरता, लगातार पीछे पड़ी पुलिस, आंदोलन के भविष्य की चिंता, संदर्भ साहित्य की कमी के बावजूद लोहिया का लिखा प्रस्तुत प्रबंध विश्वभर के आर्थिक विचार और समाजवादी आंदोलन को दी गई बहुत बड़ी देन समझी जाती रही है। अपने प्रबधं में लोहिया ने मार्क्स के अर्थशास्त्र और उसके निष्कर्षों की बहुत ही मौलिक और विलकुल नए सिरे से व्याख्या प्रस्तुत की है। अपने प्रबंध लेखन के उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए लोहिया ने प्रारंभ में ही लिखा है कि "1942-43 की अवधि में ब्रिटिश सत्ता के विरोध में जो क्रांति-आंदोलन चला उस समय समाजवादी जन या तो जेल में बंद थे या पुलिस उनके पीछे पड़ी हुई थी। यह वह समय भी है जब कम्युनिस्टों ने अपने विदेशी मालिकों की हां में हां मिलाते हुए 'लोकयुद्ध' का ऐलान किया था। परस्पर विरोधी पड़ने वाली कई असंगतियों से ओतप्रोत मार्क्सवाद के प्रत्यक्ष अनुभवों और दर्शनों से मैं चकरा गया और इसी समय मैंने तय किया कि मार्क्सवाद के सत्यांश की तलाश करूंगा, असत्य को मार्क्सवाद से अलग करूंगा। अर्थशास्त्र, राज्यशास्त्र, इतिहास और दर्शनशास्त्र, मार्क्सवाद के चार प्रमुख आयाम रहे हैं इनका विश्लेषण करना भी मैंने आवश्यक समझा। परंतु अर्थशास्त्र का विश्लेषण जारी ही था कि मुझे पुलिस पकड़ कर ले गई।"

6

विभाजन का जख्म

1944 के अंत तक 'भारत छोड़ो', क्रांति समाप्त हुई थी। 1945 में द्वितीय महायुद्ध भी समाप्त हो गया था। ब्रिटिश सरकार ने गांधीजी को मई 1944 में शारीरिक अस्वस्थता के कारण जेल से मुक्त कर दिया था और जून 1945 में नेहरू, पटेल, आजाद आदि कांग्रेस कार्यकारी समिति के सदस्यों को रिहा कर दिया गया। सब से अंत में अप्रैल 1946 में 'भारत छोड़ो' आंदोलन के सर्वोच्च नेताओं—जयप्रकाश नारायण और लोहिया—को मुक्त कर दिया गया। आश्चर्य इस बात पर है कि गांधीजी के अतिरिक्त न अन्य किसी भी वरिष्ठ नेता ने और न कार्यकारी समिति के सदस्य ने जयप्रकाश और लोहिया की मुक्ति के लिए आवाज उठाई। जब लोहिया जेल के बाहर आए तब ऐसे अनेक रोगों के बीजों ने उनके शरीर में अपना अड्डा जमा लिया था जो अंत तक उनके साथ जुड़े रहे। कलकत्ता पहुंचने पर लोहिया ने पितृहीनता का तीव्र अनुभव किया। जब लोहिया आगरा की जेल में कैद थे तभी हीरालालजी का देहावसान हुआ था। इस समय यह सुझाव दिया गया था कि पिताजी की अंत्येष्टि के लिए लोहिया कुछ दिनों के लिए पॅरोल लेकर बाहर आ जाएं परंतु लोहिया को पॅरोल पर मुक्ति स्वीकार नहीं थी।

महायुद्ध के बाद इंग्लैंड में मजदूर पार्टी के एटली के नेतृत्व में बनी सरकार सत्तारूढ़ थी। भारत को 'शीघ्रातिशीघ्र स्वाधीनता' दिलाने की एक योजना के साथ त्रिसदस्यीय ब्रिटिश शिष्टमंडल भारत के दौरे पर पहुंचा। इस पर अपनी प्रतिक्रिया देते हुए लोहिया ने कहा था, "भारतीय जनता की ताकत देखकर ही कैबिनेट मिशन भारत में आया है। शायद समझौते की बातचीत असफल होगी तो लोगों को मन गंभीर रख के, जब तक आवश्यक हो, स्वातंत्र्य आंदोलन चलाने की हिम्मत रखनी चाहिए।"

त्रिमंत्री-योजना के तहत भारत को अपना संविधान तैयार करने का अधिकार दिया गया था परंतु भारतीय एकात्मता की सुरक्षा में मुस्लिम लीग का रोड़ा अटका देने की धूर्तता भी दिखाई गई थी। लोहिया और समाजवादी पार्टी ने इस योजना का डटकर विरोध किया।

1946 के जून में जवाहरलालजी ने सहसा यह प्रस्ताव किया कि लोहिया कांग्रेस के महामंत्री हो जाएं, इस समय नेहरूजी कांग्रेस के अध्यक्ष थे। लोहिया की तीन शर्तें थीं जो इसका आदर्श उपस्थित करती हैं कि पार्टी की सरकार और पार्टी संगठन में आपसी संबंध कैसे हों, जिनका अपना महत्त्व सजग जनतंत्र प्रणाली के विकास में अनन्य रूप से असाधारण था। तीन शर्तों में से दो शर्तें इस प्रकार थीं—कांग्रेस अध्यक्ष न मंत्रिपरिषद के सदस्य होंगे और न प्रधानमंत्री बनेंगे तथा न प्रदेश मंत्रिपरिषद से और न केंद्रीय मंत्रिपरिषद से कोई मंत्री कार्यकारी परिषद का सदस्य होगा। तीन तीन दिन-रात लगातार चर्चा हुई, नेहरूजी की इस टिप्पणी के साथ 'ये सारी बातें निरर्थक हैं' नेहरू-लोहिया की वार्ता समाप्त हो गई। इस समय जवाहरलालजी केंद्रीय अस्थायी मंत्रिपरिषद में प्रधानमंत्री थे। इस प्रसंग से एक बात साफ हुई कि लोहिया का मार्ग वह नहीं था जो जवाहरलालजी चाहते थे।

इन्हीं दिनों लोहिया को नेहरूजी के 'स्वातंत्र्योत्तर दृष्टिकोण' की आहट मिल चुकी थी। नेहरूजी की मान्यता—राजनैतिक अधिकारों और नौकरशाही के सहारे ही देश का पुनर्निर्माण संभव है—का और जनशक्ति और कांग्रेस संगठन के कर्तृत्त्व में नेहरूजी के विश्वास के उठ जाने का अहसास लोहिया को दिन-ब-दिन अधिकाधिक होने लगा था। लोहिया का यह अहसास दृढ़ विश्वास में तब परिवर्तित हुआ जब नेहरूजी ने आगे चलकर अंग्रेजी शासन में काम करने वाले, राजनिष्ठ सनदी-राजपत्रित आई.सी.एस. अधिकारियों की महत्वपूर्ण पदों पर नियुक्तियां कीं। नौकरशाही में नेहरूजी के बढ़ते विश्वास का यह सबसे अधिक ठोस प्रमाण था।

'भारत छोड़ो' आंदोलन के समय कांग्रेस समाजवादी पार्टी पर ब्रिटिश सरकार ने पाबंदी लगा डाली थी, जब इसे उठाया गया तब फरवरी 1947 में पार्टी का अधिवेशन कानपुर में लोहिया की अध्यक्षता में संपन्न हुआ। इस अधिवेशन में यह महत्वपूर्ण निर्णय किया गया कि पार्टी के नाम में से 'कांग्रेस' शब्द को हटाया जाए तथा अब समाजवादी पार्टी के सदस्य बनने के लिए कांग्रेस का सदस्य बनने की पूर्व शर्त को भी हटाया गया। अपनी बात का स्पष्टीकरण करते हुए लोहिया ने कहा था कि "कांग्रेस शब्द हटाने का मतलब कांग्रेस के साथ विरोध नहीं। अनिवार्य रूप से कांग्रेस का सदस्य बनने वाली शर्त हटाई गई है। इसका अर्थ यह भी नहीं है कि हम कांग्रेस से निकल गए हैं। कांग्रेस शब्द हटाने का कारण यह है कि दूसरे दल के लोग भी पार्टी में शामिल हो सकें, जो हमारे उद्देश्यों से सहमत हैं मगर कांग्रेस में शामिल नहीं होना चाहते।"

कानपुर अधिवेशन में पारित पार्टी नीति के प्रस्तावों पर लोहिया की मान्यताओं की पूरी पूरी छाप स्पष्टतः थी। जयप्रकाश नारायण और आचार्य नरेंद्रदेव के मार्क्सवादी विचारों के कारण कांग्रेस समाजवादी पार्टी ने भारतीय जाति व्यवस्था और इसके परिणामों को कभी भी दखल देने योग्य नहीं समझा था और कानपुर अधिवेशन में पहली बार यह घोषित किया गया कि समाजवादी पार्टी वर्गविहीन समाज व्यवस्था के साथ साथ वर्णहीन समाज व्यवस्था की स्थापना को अपना उद्देश्य समझती है। बिजली तथा अन्य ऊर्जा

साधनों पर परिचालित, छोटी छोटी मशीनों पर आधारित और विकेंद्रित औद्योगिक व्यवस्था लोहिया की अपनी संकल्पना थी जिसको पार्टी अधिवेशन में स्वीकार किया गया। पार्टी अधिवेशन में सबसे महत्वपूर्ण निर्णय यह किया गया कि समाजवादी व्यवस्था के लिए सशस्त्र क्रांति और तानाशाही को अनिवार्य मानने वाली मार्क्सवादी विचारधारा से हमेशा अलग रहा जाए।

यह, वह अवसर भी था जब भारत में हिंदू-मुस्लिम संघर्ष अपनी चरम सीमा पर पहुंच चुका था। मुस्लिम लीग की उत्तेजनाओं के कारण समूचे उत्तरी और पूर्वी भारत में भयानक दंगों का तांडव जारी था। दोनों धर्मों के कार्यार्ताओं द्वारा बड़े पैमाने पर खून-खराबा हो रहा था। इस कांड से आगाह करते हुए लोहिया ने कहा, "अंग्रेज देश छोड़ेंगे इसमें संदेह नहीं है लेकिन वे इस महान देश की एकता भंग करने की साजिश करके देश छोंड़ेंगे।"

लोहिया की भविष्यवाणी के मूर्त होने के आसार नजर आने लगे थे। इंग्लैंड के प्रधानमंत्री मेजर एटली ने घोषित किया कि 1947 में हम भारत छोड़ कर अपने देश लौट जाएंगे परंतु अगर इस समय सत्ता और अधिकार ग्रहण करने के लिए यहां केंद्रीय व्यवस्था नहीं होगी तो सभी प्रांतों-प्रदेशों के हाथों अपनी अपनी स्वाधीनता अधिकारों को सौंप जाने के अतिरिक्त हमारे पास कोई चारा नहीं रहेगा। यह ऐलान अपने आप में पाकिस्तान निर्मिति की छुपी घोषणा ही थी। जब आगे चलकर लार्ड माउंटबैटन वाइसराय बनकर भारत में आए तब मेजर एटली की घोषणा के अनुसार उन्होंने भारतीय नेलाओं के साथ बातचीत आंरभ की और सत्तांतर की अपनी योजना उन्होंने विचारार्थ सामने रखी जो आगे चलकर 'माउंटबैटन योजना' नाम से जानी जाने लगी।

माउंटबैटन के प्रस्ताव का विरोध करते हुए गांधीजी ने कहा था कि भारत विभाजन से पहले मेरी देह के टुकड़े हो जाएंगे जिससे नेहरू और पटेल का मनोधैर्य लगभग समाप्त हो गया था। इसका परिणाम हुआ कि कांग्रेस नेतृत्व को विश्वास हो गया था कि बिना विभाजन के भारतीय स्वाधीनता असंभव है और विभाजन स्वीकार करने पर कम-से-कम स्वाधीन भारत में हिंदू-मुस्लिम संघर्ष समाप्त होगा, इसलिए गांधीजी ने अनजाने ही भारत-विभाजन के लिए अपनी स्वीकृति पहले ही चुपचाप दे रखी थी। इस पृष्ठभूमि पर जून 1947 में माउंटबैटन योजना पर विचार करने हेतु कांग्रेस कार्यकारी समिति की बैठक दिल्ली में आयोजित की गई थी। विशिष्ट निमंत्रित व्यक्ति के नाते इस बैठक के लिए जयप्रकाश नारायण और लोहिया उपस्थित थे। दोनों ने विभाजन की योजना का डटकर विरोध किया। गांधीजी और खान अब्दुलगफ्फार खान के अलावा सभी कार्यकारी सदस्यों ने विभाजन के पक्ष में अपना मत दिया। अंत में गांधीजी ने टिप्पणी की, "जब आप सब ने विभाजन को तत्त्वतः स्वीकार किया है तब मैं यह नहीं कहता कि अपने निर्णय को आप बदल दें।" इसके बाद गांधीजी ने एक आश्चर्यजनक सुझाव दिया, ब्रिटिश सरकार को सूचित किया जाए कि अंग्रेज कार्यकारी समिति को भारत विभाजन योजना स्वीकार है परंतु यह भी सूचित कीजिए कि योजना पर समूची गहराइयों और बारीकियों के साथ

तथा निश्चित अमल करने का उत्तरदायित्व कांग्रेस और लीग को सौंपा जाए; इस काम के लिए ब्रिटिशों की जरा-सी भी दखल नहीं होगी।" गांधीजी को संभवतः यह आशा थी कि अगर वाइसराय इसे स्वीकार करेंगे तो शायद विभाजन टल जाएगा। परंतु गांधीजी के सुझाव की पूरी उपेक्षा कार्यकारी समिति ने की और इस पर बिना किसी चर्चा के विभाजन योजना पारित हो गई। लोहिया के मत में गांधीजी का सुझाव कूट राजनीतिज्ञ का चतुर सुझाव था। सुझाव का विरोध करने वाले एक सदस्य से लोहिया ने सवाल किया कि, "बिना अंग्रेजों की मध्यस्यता के जिन्ना और कांग्रेस में एकमत न भी हो सके लेकिन इससे भारत का तो कोई नुकसान नहीं है न ?" परंतु एक बात लोहिया को बराबर सालती रही, 'गांधीजी को चाहिए था कि अपने सुझाव के साथ वे विभाजन के विरोध में आंदोलन का अपना निश्चय भी व्यक्त करते तो संभव है कि गांधीजी के सुझाव पर कार्यकारी समिति कोई निर्णय करती।'

विभाजन योजना प्रस्ताव पर कई घंटों तक चर्चा होती रही और आखिर में कार्यकारी समिति ने इसे अपनी स्वीकृति दे दी। लोहिया के सुझाए और गांधीजी के द्वारा अनुमोदित सुझावों का पुनरुच्चार प्रस्ताव के अंतिम मसौदे में किया गया; लोहिया ने द्विराष्ट्र सिद्धांत का विरोध किया था और अविभक्त भारत के प्रति अपनी श्रद्धा को व्यक्त किया था।

विभाजन योजना के पारित हो जाने से समाजवादी पार्टी दुविधा में फंस गई क्योंकि विभाजन का विरोध तो वह करती रही परंतु पार्टी के पास वह साधन और शक्ति नहीं थी कि वह विभाजन का सफल और सक्रिय विरोध करने के लिए आंदोलन चलाती। स्वयं गांधीजी भी तो विभाजन का सक्रिय विरोध करने वाले नहीं थे।

इस दुविधा से पार पाने के लिए लोहिया की अध्यक्षता में दिल्ली में आयोजित समाजवादी पार्टी की राष्ट्रीय कार्यकारी समिति ने स्वाभाविक परिणति के रूप में यह फैसला किया कि कांग्रेस कार्यकारी समिति का विभाजन योजना का प्रस्ताव जब अंतिम स्वीकृति के लिए अखिल भारतीय कांग्रेस महासमिति के सामने रखा जाएगा तब समाजवादी सदस्य न विरोध करेंगे और न कोई तरमीम देंगे परंतु तटस्थ रहेंगे। लोहिया, जयप्रकाश नारायण और आचार्य नरेंद्रदेव ने बाद में प्रकट तौर पर कहा कि चूंकि समाजवादियों के पास विभाजन योजना के विकल्प में अन्य कोई योजना न थी इसलिए हमें तटस्थ रहना पड़ा।

जब तक गांधीजी जीवित थे तब तक लोहिया को यह आस बंधी हुई थी कि विभाजन अस्थायी है और गांधीजी के प्रयत्नों से भारत फिर से एक होगा। भावुक श्रद्धावश नहीं परंतु अचूक तार्किक परिणति के रूप में लोहिया हिंदू-मुस्लिम सामंजस्य और एक-राष्ट्रीयता के विचारों को मानते थे। इसलिए अपने अंत तक, न मन से और न बुद्धि से, लोहिया ने विभाजन को स्थायी समझा। इसी दृढ़ मान्यता के सहारे आगे चलकर लोहिया ने भारत-पाकिस्तान एका की दिशा में पहले चरण के में भारत-पाक महासंघ की कल्पना का साग्रह प्रतिपादन किया था।

दस वर्षों के उपरांत अपने कर्तृत्त्व की निर्मम समीक्षा करते हुए लोहिया ने लिखा,

"मेरा और हम समाजवादियों का विभाजन-विरोध यद्यपि स्तब्ध नहीं था तथापि शाब्दिक जरूर था, शायद हिंदू-मुसलमानों के हुए भीषण दंगों का यह परिणाम हो। मेरा क्या ? मैं तो एक साधारण व्यक्ति था और स्थिति कुछ यों थी कि मैं अथवा अन्य कोई भी एक व्यक्ति इतिहास के क्रम को बदल नहीं सकता था। फिर भी हमें अपना विरोध दर्ज करना चाहिए था, मुझे इस पर बहुत खेद है कि अपने देश के टुकड़े किए जा रहे थे। मैं इसका विरोध कर जेल में क्यों नहीं गया ! शायद मैं अपनी निष्ठाओं से अलग हो गया था, मेरे जीवन में यह बहुत बड़ा निर्णायक क्षण था !"

गांधीजी की विभाजन विषयक मान्यताओं का विश्लेषण करते हुए इन्हीं दिनों लोहिया ने लिखा था कि "गांधीजी विभाजन का लगातार विरोध करते आए थे और यह भी बहुत साफ है कि विभाजन गांधीजी के मन के विरुद्ध किया गया था। फिर भी विभाजन के अपराध से उन्हें मुक्त नहीं माना जा सकता, भले उन्हें नंबर दो का अपराधी माना जाए ! फिर गांधीजी अकेले क्यों नहीं विरोध में लड़े ?" प्रश्न को उठाते हुए इसके उत्तर में स्वयं लोहिया ने एक प्रतिप्रश्न भी उपस्थित किया, 'क्या यह वाकई होता कि विभाजन का विरोध करते हुए गांधीजी जेल में जाते अथवा ऐसा इशारा भर करते तो क्या विभाजन टल जाता ?'

भारत ने विभाजन को बिना किसी विरोध के क्यों स्वीकार किया होगा इसके बुनियादी कारणों पर विचार करते समय लोहिया लिखते हैं कि "विभाजन के कुछ कलंकमय कारणों में, कुछ ऐतिहासिक शक्तियों की गणना करनी होगी जो व्यक्तिनिरपेक्ष हैं। कुछ यों हैं— कनोज के कलह के बाद हुआ हिंदुओं का पतन, दो हजार वर्षों से चली आ रही हिंदू धर्म की जाति प्रथा, भारत में चली आ रही इस्लाम धर्म की अंधी और आत्मघाती कट्टरता, ब्रिटिश साम्राज्यशाही की आखिरी साजिश, और सबसे अधिक महत्वपूर्ण है विदेशी आक्रमण का डटकर सामना न कर समर्पण और समझौते की भारतीयों की दीन भावना ! बलिदान के इस अवसर पर भी भारतीय अपनी दीन भावना को झटक कर उसे अलग नहीं कर पाए !"

7

आग्वाद के सिंह

1946-47 के राजनैतिक दृष्टि से धूमधाम के कालखंड में जो सत्तांतर की दृष्टि से महत्वपूर्ण था, बिना किसी पूर्वकल्पना के लोहिया नेपाल और गोवा के प्रश्नों में उलझ गए।

नेपाल की राजसत्ता के विरोध में नेपाली युवक जनतांत्रिक अधिकारों के लिए संघर्ष कर रहे थे। उनके नेता विश्वेश्वरप्रसाद कोइराला तथा कुछ अन्य साथी लोहिया से वार्तालाप करने पहुंचे और उन्होंने नेपाली युवकों के लिए 'कुछ करने' की प्रार्थना की थी। लोहिया ने तुरंत जवाब देते हुए कहा था कि, पहले आप लोग कुछ कर दिखाएं, फिर मैं आपकी सहायता करूंगा। लोहिया से प्रेरणा पाकर नेपाल में राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना हुई और कांग्रेस के झंडे के नीचे नेपाली जनता एकत्रित हुई तथा अपनी स्वाधीनता के लिए लड़ने पर आमादा हो गई। लोहिया ने नेपालियों के संघर्ष में सक्रिय योगदान दिया, जिसके लिए उन्हें एक बार जेल भी जाना पड़ा।

गोवा में पुर्तगाली राजसत्ता के रूप में भारतीयों की पराधीनता के खंडहर अभी बाकी थे। बीच में एक बार पुर्तगाल की अल्पकालिक जनतंत्र प्रणाली की अवधि के अतिरिक्त उर्वरित दीर्घकालावधि में गोवा पर पुर्तगाली गवर्नर का शासन जारी था। यह अवधि लगभग 500 वर्षों की थी। नागरिक-स्वाधीनता का गोवा में कोई नामोनिशान तक नहीं था।

जब लोहिया जर्मनी में थे तब गोवा के निवासी डा0 मेनेजिस भी आपके साथ थे। डा0 मेनेजिस के साग्रह आमंत्रण पर लोहिया विश्रांति के लिए जून 1946 में गोवा गए थे। डा0 मेनेजिस से पुर्तगाली तानाशाहों के जुल्म-जबरदस्ती के जो प्रसंग लोहिया ने सुने थे, उन्हीं को गोवा के राष्ट्रवादी नेता-मित्रों से इस बार पुनः सुनने को मिले। 'भारत छोड़ो' आंदोलन के अग्रणी नेता के गोवा में होने की खबर कानोंकान फैल गई और लोहिया से भेंट करने हेतु कार्यकर्ताओं का तांता-सा लग गया, इसमें कई स्वाधीनता के पुजारी विद्यार्थी, युवा अध्यापक, और प्राध्यापक, व्यापारी, सुप्रतिष्ठित नागरिक, आदि के साथ साथ कतिपय सरकारी अधिकारी और पुलिस के अधिकारी तक समाविष्ट थे। लोहिया ने जर्मनी में ही

डा0 मेनेजिस से कहा था कि पुर्तगाली तानाशाही के विरुद्ध आवाज बुलंद करनी ही चाहिए; जब गोवा के हालात उन्होंने देखे सुने तब उन्होंने निर्णय कर लिया कि 'अब लड़ना ही है !' पांच सौ वर्ष पुरानी और कठोर तानाशाही के घेरे को तोड़ने के लिए आवश्यक था कि गोवा की जनता में सामूहिक प्रतिकार की भावना को जगाया जाए। सविनय सामूहिक सत्याग्रह के अस्त्र का प्रयोग जो उर्वरित भारत में गांधीजी के नेतृत्व में सफलता के साथ हुआ था; गोवा की जनता इसे नहीं जानती थी। लोहिया ने फैसला किया कि इस प्रयोग के लिए एकमात्र सीधी और सरल-सी मांग—नागरिक स्वाधीनता— रखने का निर्णय किया गया। इन दिनों गोवा में सभा, जुलूस, समाचार-पत्र, मुद्रणालय, धार्मिक उत्सव, विवाह, आदि पर कठोर पाबंदियां थीं। लोहिया के निर्देशन में गोवा के राष्ट्रवादी नेताओं ने इन्हीं पाबंदियों के विरुद्ध सत्याग्रह आंदोलन चलाने का निर्णय किया।

18 जून 1946 को इस संघर्ष का सिंहनाद हुआ, पाबंदी के बावजूद मडगांव में लोहिया की आम सभा का ऐलान किया गया! आश्चर्य था कि भयमुक्त होकर, और अकर्मण्यता को झटककर गोवा के बच्चे-बूढ़े, स्त्री-पुरुष हजारों की तादात में सभा-स्थान पर इकट्ठा हुए। सतही स्तर पर साधारण लगने वाली नागरिक स्वाधीनता की मांग के लिए चलाए जा रहे आंदोलन में छिपी अदम्य शक्ति का अहसास पुर्तगाली सत्ताधीशों को हुआ। सभास्थान पर बड़े पैमाने पर पुलिस तैनात की गई थी। एक उच्च अधिकारी—एडमिनिस्ट्रेटर मिरांडा—स्वयं निगरानी के लिए उपस्थित हुए थे। जैसे ही लोहिया की मोटर सभा-स्थान पर पहुंची मिरांडा ने लोहिया को रोका परंतु उन्हें एक ओर हटाकर लोहिया मंच पर पहुंच गए। 'लोहिया जिंदाबाद' के नारों से आसमान गूंज उठा। लोहिया भाषण शुरू करने वाले ही थे कि मिरांडा ने अपना पिस्तौल ताना, लोहिया ने पिस्तौल वाला हाथ ऊपर ही पकड़ लिया और कहा, "आप खुद देख रहे हैं, कितनी भीड़ यहां लगी हुई है ! अगर खून-खराबा होगा तो शांति कैसे टिक पाएगी ? कुछ तो विवेक से काम लो !" खड़ी भीड़ इस दृश्य को देखकर अवाक थी। ऐसा समां गोवा की जनता के लिए अपूर्व था। अपनी छोटी-सी कृति द्वारा लोहिया ने कर्तुम-अकर्तुम गोवा के पुर्तगाली शासन को ललकारा था और यह चुनौती बिलकुल शांति के साथ ही। सत्याग्रह के प्रथम दर्शन पाकर स्वतंत्र्योत्सुक गोवा निवासियों की हिम्मत और उनका उत्साह द्विगुणित हुआ। स्वाधीनता पाने का उनका संकल्प दृढ़ हो गया।

लोहिया के भाषण की मुद्रित प्रतियां पहले ही वितरित की जा चुकी थीं, लोहिया ने वक्तव्य दिया था कि "भारत में साम्राज्यवाद की आखिरी निशानी बने पुर्तगाली शासन को उखाड़ने की दिशा में यह पहला चरण है।"

लोहिया की गिरफ्तारी के कारण निष्क्रिय गोवा-निवासियों में चैतन्य की लहर उठी। समूचे गोवा प्रदेश में आए दिन शहर शहर और गांव गांव में सभाओं और जुलूसों का आयोजन किया जाने लगा। यह उपक्रम कई दिनों तक लगातार जारी रहा।

19 जून को लोहिया को भारत की सीमा पर मुक्त कर दिया गया और तुरंत पुर्तगाली कमांडेंट ने यह भी ऐलान किया कि बिना पूर्व अनुमति के जाहिरा तौर पर सभाओं का

आयोजन किया जा सकेगा।

इस आंशिक और समसामयिक विजय से न लोहिया संतुष्ट थे और न गोवा के नेता-गण। गोवा से निकलकर भारतीय भूमि पर कदम रखते हुए लोहिया ने पोर्तुगीज सरकार को सचेत कर दिया कि अगर तीन महीनों के भीतर गोवा के निवासियों को नागरिक-स्वातंत्र्य न दिया गया तो वे फिर से गोवा में आ जाएंगे।

रिहा होने पर लोहिया सीधे बंबई पहुंचे। गोवा के बाहर गोवा-निवासियों की जितनी संख्या बंबई में है उतनी समूचे देश में एकत्रित रूप में कहीं भी नहीं है इसलिए गोवा की स्वाधीनता के आंदोलन का बंबई ही मुख्य केंद्र हो सकता था। लोहिया ने गोवा-मुक्ति संघर्ष के लिए जनमत संगठित करने और बंबई में रहने वाले मूल गोवा निवासियों को प्रोत्साहित करने के लिए जोरदार अभियान चलाया। एक आम सभा में लोहिया ने उर्वरित भारतीयों को संबोधित करते हुए उनका आह्वान किया कि न केवल गोवा के कल्याण के लिए बल्कि समूचे भारत की स्वाधीनता के लिए यह आवश्यक है कि साम्राज्यवादी संस्कृति के इस खतरनाक अवशेष को नष्ट किया जाए।

इस समय दिल्ली में कांग्रेस और लीग की मिली जुली सरकार अस्थायी रूप से बागडोर संभाले हुई थी, जवाहरलालजी प्रधानमंत्री थे। उनके मत में गोवा की स्वाधीनता के लिए आंदोलन चलाए जाने की आवश्यकता नहीं थी। बंबई में एक संवाददाता सम्मेलन को संबोधित करते हुए जवाहरलालजी ने कहा था कि "अंग्रेजों की सत्ता के समाप्त होते ही पुर्तगालियों की सत्ता अपने आप खत्म हो जाएगी। गोवा की पराधीनता भारत के गाल पर उभरी वह छोटी-सी फुंसी है जिसे उंगलियों से आसानी से मरोड़ दिया जा सकता है।" सरदार पटेल की मान्यता थी कि अपनी सरकार को गोवा आंदोलन के साथ कोई सरोकार नहीं है। यहां तक कि स्वयं समाजवादी पार्टी की—जो लोहिया की अपनी पार्टी थी—भूमिका भी उदासीनता की रही थी।

अकेले गांधीजी ही थे जिन्होंने लोहिया को अपना पूरा पूरा भरसक समर्थन दिया। लोहिया की गिरफ्तारी की खबर पाते ही गांधीजी ने अपने 'हरिजन' में लिखा था, "अपनी कृति द्वारा उन्होंने नागरिक स्वतंत्रता की और खासकर गोमांतकीयों की सेवा की है। बंदूक की एक भी गोली के बिना गोवा की जनता आजाद मुल्क की मांग कर सकती है और उसे प्राप्त भी कर सकती है। गोवा के नागरिकों से मैं कहता हूं कि उन्हें पुर्तगाली सरकार का डर छोड़ना चाहिए।" नेहरू और पटेल की मान्यता का गोवा के राष्ट्रवादी कार्यकर्ताओं के विचारों पर विपरीत परिणाम हुआ जो स्वाभाविक ही था। लोहिया ने इन नेताओं को समझाया, "गोवा की जनता को गांधीजी की मान्यताओं पर ध्यान देना चाहिए अन्य नेता क्या सोचते हैं इस पर तनिक भी विचार नहीं करना चाहिए, क्योंकि ऐसा करना निरर्थक है।"

अपने पूर्वघोषित गोवा में फिर से जाने के निर्णय में कोई परिवर्तन न करने का कारण देखते हुए लोहिया ने बंबई में गांधीजी से मुलाकात की और गोवा आंदोलन की उन्हें जानकारी देते हुए अपने गोवा जाने का निर्णय भी बता दिया। फिर लोहिया ने गोवा

की ओर कूच किया। दक्षिण-महाराष्ट्र के कुछ शहरों में तूफानी प्रचार करते हुए शांति नाईक और अपने अन्य सहकारियों के साथ लोहिया 29 सितंबर को बेलगांव पहुंच गए। कुछ गोमांतकीय मित्रों ने यहां उन्हें सलाह दी कि वे पुनः गोवा में न जाएं। अपने मित्रों को लोहिया ने दो टूक उत्तर दिया, "मुझे जाना ही है, अपने दिए हुए वचन का पालन मैं करूंगा।"

लोहिया के गोवा में पुनर्प्रवेश के संकल्प से पुर्तगाली सरकार पशोपेश में पड़ गई। जैसे ही लोहिया कोलेम स्टेशन पर उतरे, उन्हें गिरफ्तार किया गया। यहां से लोहिया को आग्वाद किले के दमघोंटू तहखाने में कैद रखा गया।

लोहिया की गिरफ्तारी की खबर ने देखते ही देखते गोवा में तूफान मचा दिया, जुलूसों और गिरफ्तारियों का सिलसिला बन गया। इस वातावरण में लोहिया की मुक्ति की आशा दुराशा ही थी, परंतु गांधीजी इस काम में जुटे हुए थे। 'हरिजन' में उन्होंने अपनी आवाज बुलंद की, "लोहिया, सड़क चलता साधारण व्यक्ति नहीं, पुर्तगाली सरकार ने लोहिया को नहीं ब्लकि भारत की आत्मा को कैद करने का दुस्साहस किया है।" फिर गांधीजी ने नेहरू को पत्र लिखकर सरकारी तौर पर लोहिया की रिहाई के लिए प्रयत्न करने के लिए कहा। जवाहरलालजी ने इस पर अपनी असमर्थता बताई। फिर गांधीजी ने वाइसराय वेवेल को लिखा कि वे इस मामले में दखल दें और पुर्तगाली सरकार पर दबाव डालें।

आखिर, वाइसराय अथवा गोवा के धर्माधिकारियों के दबाव के कारण नौ दिनों की कैद के बाद, लोहिया को छोड़ दिया गया। पुलिस की निगरानी में लोहिया को भारत की सीमा तक लाकर मुक्त कर दिया गया।

लोहिया ने अब सीमा पर रहते हुए गोवा में सत्याग्रह आंदोलन को तेज करने के प्रयत्न जारी रखे। भारतीय जनता को इस बात के लिए प्रेरित किया कि वह गोवा का आर्थिक बहिष्कार करे। थोड़ी-बहुत मात्रा में इसका परिणाम हुआ—साग-सब्जी, फल, अंडे, गोवा में नहीं भेजे गए। गोवा के कसाईखानों में गौओं-बकरियों को भेजना बंद कर दिया गया। पुर्तगाली सरकार ने अध्यादेश जारी किया कि 'जिस किसी के पास एक से अधिक जानवर हों वे सब एक के अतिरिक्त सब पशु सरकार को सौंप दें। सीमा पर स्थित शहरों के दौरे करते हुए लोहिया ने सत्याग्रहियों को जुटाने का काम शुरू किया। प्रति दस दिन के बाद दस दस सत्याग्रहियों के गोवा में सत्याग्रह आंदोलन करने की योजना बनाई गई। गोवा सत्याग्रह आंदोलन के लिए जनमत और आर्थिक सहायता जुटाने के लिए लोहिया ने बंबई में फिर से अभियान चलाया।

यद्यपि भारतीय केंद्र सरकार ने गोवा आंदोलन में दखल नहीं दिया तथापि संयुक्त राष्ट्र संघ ने इस पर ध्यान अवश्य दिया। 'राष्ट्र संघ' की सदस्यता दिलाने का पुर्तगाल का आवेदन राष्ट्र संघ ने इसलिए खारिज किया कि गोवा तथा अन्य उपनिवेशों को स्वाधीनता देने से पुर्तगाल ने इनकार किया था।

गांधीजी की राय इस बीच की अवधि में बदल गई। नौआखाली शांति यात्रा के समय लोहिया से हुई भेंटवार्ता में गांधीजी ने कहा, "आप गोवा आंदोलन में अब दखल

न दें। भारत सरकार अपने स्तर पर इस समस्या का समाधान पाने की कोशिश कर रही है और संभव है कि आपके इस मामले में दखल देने से सरकारी प्रयत्नों में बाधा आ जाए। मुस्लिम लीग अस्थायी सरकार को मुसीबत के वक्त पकड़ने के लिए घात लगाए बैठी है, ऐसे समय आप को कठिनाइयों को संगीन नहीं करना चाहिए।" सच तो यह था कि गांधीजी के मुख से नेहरू ही बोल रहे थे। कहते हैं कि पोप और फ्रांस की ओर से दबाव डालकर गोवा की स्वाधीनता के लिए जवाहरलालजी प्रयत्नशील थे।

लोहिया अकेले रह गए। गोमंतकियों को साहस बंधाते हुए लोहिया ने कहा, "चूंकि गांधीजी और जवाहरलालजी को मेरा गोवा आंदोलन में उतरना पसंद नहीं है, भले मैं न आऊं तब भी आप अपना आंदोलन जारी रखें, पीछे न हटें और न इसे रुकने ही दें।"

गोमांतकीयों की प्रार्थना और नेहरू तथा गांधीजी की इच्छा का आदर करते हुए लोहिया ने फैसला किया कि वे अब गोवा में फिर से नहीं जाएंगे। परंतु बंबई और बेलगांव केंद्रों से गोवा आंदोलन को जारी रखने का बल्कि उसी आवेश में जारी रखने का उपक्रम लोहिया ने बरकरार रखा। जनवरी 1947 में बंबई के जिला हॉल में लोहिया की बहुत बड़ी सभा आयोजित हुई। इस सभा में लोहिया के आह्वान पर कई स्त्रियों ने अपने बहुमोल गहने-जेवर आंदोलन की सहायता में दे दिए। वेलगांव में आयोजित गोमांतकीयों के शिविर में भी लोहिया उपस्थित थे।

परंतु इसी समय गोवा मुक्ति आंदोलन लग रहा था कि अपनी सांसें गिनकर जल्द ही दम तोड़ देगा क्योंकि आंतरिक कलह और फूट पुरजोर बनती जा रही थी; सत्याग्रह के लिए नवीन जन सम्मिलित नहीं हो रहे थे। गोवा निवासी इस दरम्यान गोवा आंदोलन को लेकर गांधीजी और नेहरू की मान्यताओं से परिचित हो चुके थे और इसका परिणाम भी अनिवार्य रूप से हुआ। भारतीय स्वातंत्र्य अब दरवाजे पर दस्तक दे रहा था; लोहिया ने गोमांतकीयों का आह्वान किया कि अगर आगामी दो-तीन महीने वे पूरे जोरोहिम्मत के साथ आंदोलन जारी रखेंगे तो गोवा भी भारत के साथ साथ स्वाधीनता पाएगा। परंतु काश इस आह्वान का अनुकूल परिणाम होता ! आखिर सारा आंदोलन बुझ गया !

18 जून 1946 को लोहिया ने गोवा में सत्याग्रह संग्राम का सूत्रपात किया था और इसकी सफलता इसी बात से आंकी जानी चाहिए कि इस संघर्ष के कारण गोवा निवासियों ने अहिंसात्मक सामूहिक सत्याग्रह का पाठ ही नहीं पढ़ा बल्कि पुर्तगाली तानाशाही को लेकर जो भी उनके मन में था उससे भी वे मुक्त हुए। आगे चलकर 1954-55 में गोवा निवासियों ने गोवा में सत्याग्रह आंदोलन और संपूर्ण भारत की जनता ने हजारों की तादाद में गोवा में प्रवेश कर जो सत्याग्रह आंदोलन विशाल पैमाने पर चलाया उसकी नींव 1946 में ही लोहिया के चलाए आंदोलन के साथ जुड़ी थी। लोहिया के इस योगदान को गोवा निवासी भूले नहीं हैं और इसी की स्मृति में प्रति वर्ष 18 जून को अपने स्वाधीनता दिवस के रूप में मनाते हैं।

8

दुबारा यतीम/अनाथ

1946-47 के बीच का एक वर्ष का कालखंड हिंदू-मुसलमानों में हुए विभाजनपूर्व दंगों और भीषण हत्याकांडों का बदनसीब कालखंड रहा है। मुस्लिम लीग ने 16 अगस्त 1946 का दिन प्रत्यक्ष कृति दिवस मनाने का ऐलान कर दिया था। इस दिन उत्तर भारत के कतिपय प्रमुख नगरों और कलकत्ते में भारतीयों ने मौत का प्रलयकारी रूप देखा था।

इसी खौफनाक और जानलेवा वातावरण में, अपने पूर्व घोषित कार्यक्रम के मुताबिक लोहिया बंगाल के चटगांव में पहुंचे जहां 80% से अधिक बस्ती मुसलमानों की थी। चटगांव स्टेशन पर हजारों की भीड़ ने उनका हार्दिक स्वागत किया। मुस्लिम लीग के नेताओं के विरोध के बावजूद लोहिया के स्वागत में जोरदार शोभायात्रा भी आयोजित की गई। मुस्लिम लीग के कार्यकर्ता इस लिए कमर कसे थे कि गांधी मैदान पर होने वाली लोहिया की सभा में भगदड़ मचा दी जाए। लोहिया का भाषण शुरू हुआ ही था कि सहसा पथराव होने लगा, लाउडस्पीकर्स की तोड़-फोड़ हुई। झंडों और फलकों को तहस-नहस कर दिया गया। सामान्य भीड़ में घबड़ाहट के मारे भगदड़ मची परंतु एक श्रोता अपने स्थान पर अडिग था और सहसा इसके दो टुकड़े कर दिए गए। लोहिया भी मंच पर दृढ़ता के साथ खड़े थे, चारों ओर से उन पर पथराव जारी था। 'मारो-पीटो', 'तोड़ो-फोड़ो', और 'अल्ला हो अकबर' के नारे आसमान में गूंज रहे थे। भीड़ में एक ही शोर था 'लोहिया का सिर अलग कर दो।' लोहिया ने हिम्मत के साथ ललकारा 'लो ! मैं खड़ा हूं यहां ! काट लो मेरा सिर!' एक भी माई के लाल की इसकी हिम्मत नहीं हुई परंतु सभा में तूफान मचाने और हंगामा करने में मुस्लिम लीग को सफलता अवश्य मिल गई।

मुस्लिम लीग के नेताओं ने लोहिया के सिर पर दस हजार रुपयों का इनाम घोषित किया था, लोहिया इसे जानते थे फिर भी उस रात वे चटगांव में ही टिके रहे।

आगे के कुछ दिन गांधीजी की नौआखाली शांतियात्रा में गांधीजी के सहायक बनकर रहे। एक अवसर पर जब गांधीजी पर हमला हुआ था लोहिया ने अपनी जान की बाजी लगाकर गांधीजी की जान बचाई थी।

मुस्लिम लीग की ओर से घोषित प्रत्यक्ष कृति दिन के अवसर पर कलकत्ते में हिंदू-मुसलमानों के बीच भयानक दंगा हुआ। शांति कायम रखने के इरादे से गांधीजी ने कलकत्ते में ही अपना डेरा जमा लिया था, इसी समय जब एक बार लोहिया गांधीजी से भेंट करने पहुंचे थे जब गांधीजी ने उन्हें सुझाव दिया था कि कलकत्ते में रहते हुए वे शांति स्थापन कार्य में सहायक बनें। परंतु लोहिया को विश्वास नहीं हो रहा था कि वे इस मामले में गांधीजी की कोई सहायता कर पाएंगे ! तीन दिन तक लोहिया ने विचार किया और लोहिया के मन में सुप्त पड़ा गांधीजी के प्रति कृतज्ञता का भाव सहसा जाग उठा। नेपाल और गोवा के प्रसंगों में गांधीजी ने अपना समर्थन और आशीर्वाद लोहिया को भरसक दिया था। आखिर लोहिया ने शांति कार्य में सम्मिलित होकर गांधीजी की सहायता करने का निर्णय किया। फिर भी लोहिया यह निश्चित नहीं कर पा रहे थे कि गांधीजी की सहायता किस तरह करें। गांधीज़ी ने सुझाव दिया, 'अपने मुसलमान मित्रों को ढूंढ़ लो, उनसे मिलो और दोस्ती का दामन बढ़ाओ।'

लोहिया को लगा कि गांधीजी बहुत ही मामूली बात कह रहे हैं, परंतु यथार्थ इससे बहुत भिन्न था। हिंदू-मुसलमानों में परस्पर विद्वेष का जहर इस कदर घुल गया था कि वे परस्पर के मुहल्लों में झांक तक नहीं पाते थे। फिर भी दो मुहल्लों के बीच के ऐसे कुछ स्थान थे जहां आबादी तो नहीं थी परंतु अंडे, फल, साग-सब्जी, कपड़े बेचने और परस्पर लेन-देन के लिए वे ही हिंदू-मुसलमान आते थे जो आज खुले आम एक दूसरे को काटने के लिए दौड़ रहे थे।

कलकत्ता निवासी अपने मुसलमान मित्रों के पते ढूंढ़ने के लिए लोहिया ने अपने कुछ साथियों से कहा परंतु जब देखा कि उन से काम नहीं हो पा रहा है तब खुद इस काम के लिए निकल पड़े। जब एक बार लोहिया बस्ती रहित क्षेत्र को लांघ कर मुस्लिम बस्ती में प्रवेश कर रहे थे तब दो-तीन सौ हिंदुओं की भीड़ अवाक होकर उनके पीछे खड़ी थी, भीड़ में आश्चर्य और डर था। मुस्लिम मुहल्ले के मुहाने क्रुद्ध मुस्लिम युवकों का झुंड लोहिया के 'स्वागत' के लिए तैयार था। लोहिया, बेखौफ आगे चल पड़े और एक मुस्लिम युवक से 'मुस्लिम विद्यार्थी संघ' का पता पूछा, तब एक अन्य मुस्लिम युवक आगे बढ़ा और लोहिया को विद्यार्थी निवास तक ले गया।

'भारत छोड़ो' आंदोलन के अग्रणी नेता के रूप में लोहिया विद्यार्थी संसार में सुपरिचित थे। जब लोहिया खुलकर मुक्त भाव से विद्यार्थियों से बतलाने लगे तब वातावरण पर छाया आतंक और तनाव कुछ कमजोर पड़ गया। धीरे धीरे विद्यार्थियों पर लोहिया का प्रभाव हो गया। विद्यार्थियों ने सवाल किया कि 'क्या आप जिन्ना साहब को मीर जाफर और ब्रिटिशों का आदमी मानते हैं ?' लोहिया का उत्तर था, 'जिन्ना साहब के प्रयास ब्रिटिश शासन को कायम और मजबूत करने के हैं।' विद्यार्थियों की दो टूक प्रतिक्रिया थी कि 'अगर आप जिन्ना साहब को मीर जाफर और देशद्रोही कहेंगे तो आप भी हमारी नजरों में देशद्रोही होंगे'। लोहिया ने दृढ़ता के साथ कहा 'जैसी आपकी मर्जी ! लेकिन आपका सवाल तो जिन्ना साहब को लेकर था !' तब विद्यार्थियों की आवाज मद्धिम हो गई। वे बोले

'खैर ! छोड़िए इन सारी बातों को ! पहले आप पाकिस्तान मंजूर करें फिर हम सब मिलकर बिरला और इस्पहानी से लडेंगे।' दो घंटों तक चली बहस को खत्म कर जब लोहिया अकेले ही अंधेरे में चल पड़े तब उन्हें बिदा करने कई मुस्लिम विद्यार्थी गली के छोर तक आए। दूसरे छोर पर खड़ी चिंतित हिंदुओं की भीड़ ने लोहिया को सकुशल लौटते देख कर राहत की सांस ली।

इन्हीं दिनों लोहिया ने कलकत्ते में दंगाग्रस्त जनता के लिए राहत केंद्र चलाए थे।

गांधीजी के प्रयत्नों से शांत हुआ वातावरण कुछ दिनों बाद फिर बौखला गया। गांधीजी दंगा पीड़ित बिहार और दिल्ली के दौरे पर थे, उसे अधूरा छोड़कर फिर से कलकत्ता आ गए। लोहिया, अब भी कलकत्ता में थे। शहर की कुछ सड़कों पर ट्राम की आवाजाही ठप्प हो गई थी। ट्राम कर्मचारियों का यूनियन सोशलिस्ट पार्टी के तहत काम करता था, गांधीजी ने लोहिया से कह कि जैसे भी हो ट्राम का यातायात फिर से जारी हो जाना चाहिए। लोहिया के नेतृत्व कलकत्ता में 'गणफौज' नाम से एक स्वयंसेवी संगठन कार्यरत था। हर ट्राम में एक एक स्वयंसेवक ड्राइवर और कंडक्टर के साथ खड़ा हो गया, फिर क्या था ! ड्राइवरों-कंडक्टरों ने निर्भय होकर ट्राम चलाए। एक बार बीच रास्ते में एक स्टॉप पर जब ट्राम ठहरा, मुसलमानों की भीड़ को देखकर गणफौज के स्वयंसवकों ने नारा दिया 'हिंदू-मुस्लिम भाई भाई !' भीड़ से आवाज आई 'क्या तहेदिल से कह रहे हो या सतही लफ्ज है ?' स्वयंसेवकों ने फिर से आवाज दी 'तहेदिल से ! हिंदू-मुस्लिम भाई भाई ! तहे दिल से !'

14 अगस्त को हिंदू-मुस्लिम मुहल्लों के बीच खड़ी कर दी गई अदृश्य दीवारें ढह गईं और एक बहुत बड़े जुलूस का आयोजन संपन्न हुआ, इसका नेतृत्व लोहिया ने किया था।

15 अगस्त के स्वाधीनता दिवस के पर्व पर कलकत्ते में शांति थी परंतु 31 अगस्त के बाद फिर से हिंसाचार का उद्रेक हो गया। गांधीजी ने आमरण अनशन ठान लिया। गांधीजी के इस 'शांतियज्ञ' का हिंदू-युवकों ने विरोध किया। भीषण नरमेध रोके रुक न पाता था। इस समय बंगाल में सु-हावर्दी के नेतृत्व में मुस्लिम लीग की सरकार के हाथों में रियासती बागडोर थी। मुस्लिम गुंडों और सरकार की मिली भगत थी। हिंदू-मुसलमान गुंडों के पास शस्त्रों का बड़ा जखीरा था। जब तक इन शस्त्रों को बराम्द नहीं किया जाता तब तक खूनखराबा रुकनेवाला नहीं था। लोहिया को आशा थी कि अगर कुछ शस्त्रों को इकट्ठा कर गांधीजी के पास दिया जाए तो संभवतः गांधीजी अपना अनशन छोड़ देंगे। इस आशा में लोहिया शस्त्रों को ढूंढ़कर इकट्ठा करने के काम में जुट गए। लोहिया को मालूम था कि 'भारत छोड़ो' आंदोलन में शरीक युवकों के पास अभी वे सारे शस्त्र मौजूद थे। जगमोहन नाम के एक क्रांतिकारी के पास लोहिया ने अपनी मांग पेश की। थोड़ी बहुत आनाकानी करने के बाद उन्होंने अपने शस्त्र लोहिया को सौंप दिए। लोहिया की बात सुनते ही वह गुस्सा हो गया और बोला 'आखिर आप हैं कौन ? और मेरे पास किसलिए आए हैं ?' लोहिया ने कहा कि 'मैं भी यही सोच रहा हूं !' तब वह बोला, 'आप हमारे

हथियार लेने आए हैं ! माना कि हमने आपको अपने हथियार सौंप दिए ! लेकिन, अगर आइंदा कभी हमें इनकी आवश्यकता पड़े, तो हम क्या करेंगे ?' लोहिया ने तुरंत उत्तर दिया, 'भाई ! मैं तो हथियार चाहता हूं आपके हाथ तो नहीं चाहता !' बयालीस के संग्राम में जब जरूरत महसूस हुई तब सारे हथियार इकट्ठा किए, सच्ची ताकत तो अपने बाहुओं में होती है, शस्त्रों में नहीं !' उस व्यक्ति ने और जगमोहन ने आपस में थोड़ी बातचीत की और फिर एक स्टेनगन, कुछ हैंडग्रेनेड्स, कुछ बम लोहिया को सौंप दिए। उसी रात लोहिया ने, इकट्ठा किए सारे शस्त्र गांधीजी के सामने रखे। गांधीजी खुश हुए और मुस्कुराकर बोले 'अच्छा इतनी जल्दी थी !'

जब कलकत्ता में फिर से अमन-चैन कायम हुआ, तब गांधीजी ने अपना अनशन समाप्त किया।

शांति को पुनः स्थापित करने के लिए गांधीजी दिल्ली में आए थे। गांधीजी से आदेश पाकर लोहिया भी फिर से उनके साथ जुट गए। पंजाब और सिंध से आए हजारों शरणार्थियों की सहायता में गांधीजी के साथ लोहिया भी कटिबद्ध हो गए। अमन-चैन को बरकरार रखने के प्रयासों में कभी-कभार लोहिया का पाला क्रोधित भीड़ से भी पड़ता था। एक बार लोहिया मोटर से मुस्लिम बस्ती में जा रहे थे, साथ में एक मुस्लिम युवक भी था। अपने मुहल्ले पर हिंदुओं के हमले की अफवाह के कारण मुहल्ले के स्त्री-पुरुषों में भगदड़ मची हुई थी। लोहिया के साथ जो मुस्लिम युवक था वह मोटर पर खड़ा होकर भागनेवालों को रोककर धीरज बंधाने की कोशिश कर रहा था। ऐसे ही एक प्रसंग में सिखों के एक झुंड ने लोहिया की मोटर को रोक लिया। लोहिया ने मुस्लिम युवक को मोटर में बैठने के लिए कहा और पायदान पर खड़े होकर भीड़ के सामने पहुंच गए। सिखों की भीड़ मुस्लिम युवक की मांग कर रही थी, लोहिया ने इससे साफ मना किया। भीड़ में कुछ लोगों ने लोहिया को पहचान लिया था, उन्होंने हाथ जोड़कर लोहिया से हट जाने की प्रार्थना की, लोहिया नहीं माने, पायदान पर डटे रहे, कुछ युवकों ने उन्हें पायदान से ढकेल दिया, लोहिया संभल कर फिर पायदान पर चढ़ जाते थे। परंतु हर हालत में, लोहिया का प्रयास था कि मोटर में बैठे मुस्लिम युवक पर आंच न आने पाए। संयोग से इसी समय एक फौजी अधिकारी वहां से जा रहे थे, उन्होंने लोहिया को मोटर में बिठा कर अपने गंतव्य तक सुरक्षित पहुंचा दिया।

हिंदू-मुस्लिम और सिखों के छोटे छोटे गुटों की सभाओं का आयोजन कर उनसे सीधा संपर्क करने पर लोहिया ने अपना ध्यान केंद्रित किया था। इस तरह की एक सभा में गांधीजी उपस्थित थे; विशेष बात यह थी कि इसी समय जारी कांग्रेस की कार्यकारी समिति की बैठक में उपस्थित न होकर गांधीजी लोहिया की सभा में सम्मिलित हुए थे। थोड़ी देर बाद नेहरू, पटेल और आजाद इस बैठक में शरीक हुए और इनके साथ कार्यकारी समिति के अन्य सदस्य भी थे।

लोहिया के इसी सिलसिले में दिए गए एक वक्तव्य के कारण न केवल जिन्ना बल्कि सत्तारूढ़ कांग्रेस दल के नेता भी क्षुब्ध हुए थे। फिलहाल स्वीकृत विभाजन सदा के लिए

नहीं है और भारत को फिर से अखंड करने के तीन उपायों को भी लोहिया ने कह दिया था, जिससे विभाजन के कलंक को मिटाना वे संभव मानते थे। पहला उपाय था कि स्वयं मुसलमान अर्थात पाक सरकार और मुस्लिम लीग विभाजन का विरोध करें दूसरा, पाक नेता यह स्वीकार करें कि द्विराष्ट्र सिद्धांत का आग्रह करने में उनकी गलती थी और तीसरा, अगर पाक युद्ध लाद ही देगा तो समूची शक्ति के साथ उसे परास्त किया जाए। लोहिया के वक्तव्य पर जिन्ना ने जाहिरा तौर पर विरोध प्रकट किया और समूचे राजनैतिक वातावरण में तहलका मच गया।

इसी समय गांधीजी ने लोहिया को कश्मीर में इसलिए भेजा कि वहां की परिस्थितियों का जायजा लिया जा सके। यद्यपि कश्मीर का भारत में विलीनीकरण हुआ था तथापि लोहिया को आशंका थी कि कहीं कश्मीर के प्रधान मंत्री शेख अब्दुल्ला स्वतंत्र कश्मीर के सपने को तो अपने मन में पाले हुए नहीं हैं ?

यह वही समय था जब कुछ अवधि के लिए और गांधीजी के आग्रह पर लोहिया ने केंद्र सरकार की ओर से नियुक्त अनाज-नीति विषयक समिति पर सदस्य के नाते काम भी किया। अपने पूरे राजनैतिक जीवन में किसी भी सरकारी समिति के सदस्यत्व को स्वीकार करने का यह पहला और आखिरी प्रसंग था। अनाज-नीति विषयक समिति ने अपनी अंतरिम रिपोर्ट पेश की परंतु लोहिया ने इस के साथ अपनी असहमति की अलग टिप्पणी जोड़ दी थी। अपनी टिप्पणी में लोहिया ने दो-तीन सुझाव भी दिए थे—अनाज का उत्पादन बढ़ाने के लिए विशेष प्रयत्न किए जाएं, अनाज के उत्पादन और बिक्री की कीमतों को निर्धारित किया जाए, तथा वितरण पर लागू सरकारी पाबंदियों को हटाया जाए। वितरण पर लागू निर्बंधनों को हटाने के सुझाव पर लोहिया को सोशलिस्ट पार्टी के वरिष्ठ नेताओं का गुस्सा भी झेलना पड़ा। आखिर, समिति की कार्यवाही ढंग से न चलती देखकर लोहिया ने अपना इस्तीफा दे दिया।

इसी दरम्यान केंद्र सरकार में सरदार पटेल के नेतृत्व में कार्यरत गृह मंत्रालय में वह रिपोर्ट पहुंची जिससे लोहिया की अहिंसा विषयक धारणाओं को लेकर आशंका की जाने लगी। नागपुर में दिए गए एक वक्तव्य का हवाला देते हुए सी0आई0डी0 ने सूचना दी थी—कोई एक नेता भूमिगत आंदोलन के जरिए भारतीय मंत्रिमंडल को ठीक उसी तरह खत्म करने की योजना बना रहा है जैसे ब्रह्मदेश में आंगसान को बम विस्फोट में खत्म कर दिया गया था। सरदार पटेल ने इस रिपोर्ट को गांधीजी तक पहुंचा दिया। पता नहीं, कहीं पटेल को यह तो नहीं लगा कि वह नेता अन्य कोई न होकर स्वयं लोहिया ही हो? जब कुछ दिनों बाद लोहिया से वार्तालाप करते हुए गांधीजी ने बड़ी साफगोई के साथ पूछा 'क्यों भाई ? कहीं नेहरू-पटेल का खात्मा करने का तो आपका विचार नहीं है ?' गांधीजी का सवाल सुनकर क्षणभर तो लोहिया असमंजस में पड़ गए लेकिन संदर्भ को पाते ही बोले 'बापूजी ! ये तो सरासर पागलपन है, मूर्खता है ! बयालीस के अंग्रेजों के खिलाफ किए गए आंदोलन तक में मैंने मनुष्य हत्या का विरोध किया था, क्या वही मैं स्वतंत्र भारत की सरकार को लेकर इस तरह का विचार कर भी सकता हूं ? मेरी पार्टी

की यह स्पष्ट राय अवश्य है कि प्रस्तुत सरकार नालायक, बुद्धिहीन और अकार्यक्षम है लेकिन इसका मतलब यह कतई नहीं कि हम इसे हिंसाचार के रास्ते या भूमिगत आंदोलन के रास्ते खत्म करना चाहते हैं !' इस खबर के स्रोत का खुलासा करते हुए गांधीजी ने पूछा 'अभी जो आपने कहा, क्या इसे पत्र लिखकर सरदार पटेल को सूचित करेंगे ?' लोहिया ने साफ मना कर दिया। इस पर गांधीजी बोले 'फिर एक काम करें, पटेल को न सही, लेकिन मुझे तो आप लिख सकते हैं ?' फिर लोहिया ने वह सब लिख दिया, जो गांधीजी चाहते थे।

बहुत ही तनावपूर्ण, खस्ता और संवेदनशील परिस्थितियों में भरी सरकारी नौकरशाही कितनी मूर्खता के साथ पेश आती है इसका लोहिया ने अनुभव किया था।

केंद्र सरकार के सूचना और प्रसारण मंत्रालय का हवाला देते हुए समाचारपत्रों ने खबर दी थी कि दिल्ली के एक मुस्लिम मुहल्ले में 303 किस्म की बंदूकें बरामद की गई हैं। जबकि वास्तविकता यह थी कि एक मुसलमान के घर से सिर्फ एक बंदूक बरामद की गई थी और मुहल्ला भी वही था जहां लोहिया काम करते थे। गांधीजी को यह समाचार दिखाते हुए लोहिया बोले, 'बापूजी ! ऐसी छोटी-सी खबर भी अपने कई दिनों के किए-कराए पर पानी फेर देती है।' साथ ही गांधीजी के चेलों की सरकार की गिनेचुने शब्दों में आपने भर्त्सना भी की।

लोहिया की भर्त्सना को सहसा मोड़ देने की अनपेक्षित मुद्रा में गांधीजी ने पूछा, 'फिर, स्वयं आप ही गृह मंत्रालय को क्यों नहीं संभाल लेते ? कहीं जिम्मेदारियों से कन्नी तो नहीं काटना चाहते ?' लोहिया ने भी सहसा गंभीर होते हुए परंतु तुरंत उत्तर दिया, 'जब तक आप यह निर्णय नहीं करते कि कांग्रेस के नेता सबसे श्रेष्ठ नेता नहीं हैं तब तक किसी जिम्मेदारी का ग्रहण करने के लिए मुझसे न कहें !' गांधीजी ने विनोद में कहा, 'तो क्या मैं यह घोषित कर दूं कि जवाहरलालजी की अपेक्षा आप अधिक अच्छे नेता हैं?' लोहिया ने भी उतने ही सहज विनोद भाव से, लेकिन गहरे आत्मविश्वास के साथ कहा, 'ऐसा ऐलान करने में, मुझे नहीं लगता कि आपको कोई कठिनाई हो सकती है ! और अगर कोई कठिनाई हो तो मुझे कह दें !' आसपास बैठे कार्यकर्ता जब छंट गए तब गांधीजी अपने शयनकक्ष में लोहिया को ले गए और बोले, 'मैंने कब कहा कि कांग्रेस के नेता सब से अच्छे नेता हैं?' लोहिया खीझ में बोले, 'एक नहीं, आपने हजार बार कहा है यह !' तब गंभीर आवाज में गांधीजी बोले, 'लगता है कि आपकी बुद्धि अब पहले जैसी पैनी नहीं रही, मैंने यह कभी नहीं कहा कि वे सब से श्रेष्ठ नेता हैं, मैंने इतना भर कहा था कि इनसे अधिक अच्छे नेता अन्य कोई नहीं हैं !' लोहिया को लगा कि गांधीजी में बैठा वकील बोल रहा है अथवा असिधारा सत्य कहा जा रहा है। परंतु सौजन्य के मारे लोहिया चुप रह गए !

यह बात बिल्फुल सही है कि विगत दस-बारह वर्षों की अवधि में गांधीजी और लोहिया के बीच बहुत ही आत्मीयता के संबंध दृढ़ से दृढ़तर हो गए थे लेकिन गांधीजी ने कभी लोहिया के व्यक्तिगत जीवन में झांकने और दखल देने का कोई खास प्रयास नहीं

किया था। परंतु एक बार गांधीजी ने एक प्रयास अवश्य किया था। एक बार अपनी सायंकालीन सभा के बाद गांधीजी हमेशा की तरह टहलने के लिए चल पड़े। लोहिया को भी साथ कर लिया था। बातों बातों में, लोहिया के कंधे पर हाथ रखते हुए गांधीजी ने सहसा पूछा, "कहते हैं कि आप आजकल न केवल बहुत ज्यादा सिगरेट पीने लगे हैं, बल्कि चाय-कॉफी भी बेशुमार पीते हैं ? आपके स्वास्थ्य के हिसाब से यह अच्छा नहीं है। एक समाजवादी के नाते तुम्हें सिगरेट नहीं पीना चाहिए क्योंकि इसी कारण आप अपनी जनता से तादात्म्य नहीं स्थापित कर पाएंगे।" लोहिया चुप रहे। तब गांधीजी ने कहा "कहीं ऐसा तो नहीं कि ये सारी बातें मुझे नहीं कहनी चाहिए थीं, क्योंकि लगता है कि आपको पसंद नहीं आईं !" तब लोहिया बोले, "नहीं नहीं ! ऐसी कोई बात नहीं बापूजी ! आपको पूरा अधिकार है आप अवश्य कहते जाइए !" गांधीजी ने पूछा, "क्या आप यह मानते हैं कि आपके सार्वजनिक जीवन तक ही मेरी दखल हो ?" लोहिया बोले, "बिल्कुल नहीं ! ऐसी कोई सीमा मैं नहीं मानता ! हालांकि थोड़ा-सा अंतर जरूर करता हूं ! लेकिन पक्की पाबंद-सीमा नहीं मानता !" लेकिन गांधीजी के अपेक्षित उत्तर के आसपास भी लोहिया नहीं जा रहे थे। इसी तरह आधा-पौना घंटा बीत गया होगा, तब लोहिया ने कहा, "बापूजी! अभी तो मैं कुछ नहीं कहता लेकिन जल्द ही कहूंगा !"

गांधीजी के सिगरेट न पीने के लिए दिए गए तर्क पर लोहिया को आपत्ति थी, आखिर दो-तीन महीने इसी उधेड़बुन में बिताये कि क्या यही एक मात्र मार्ग है कि जिसपर चलकर जनता से तादात्म्य स्थापित किया जा सकता है ? लोहिया ने सिगरेट पीना छोड़ दिया !

ऐसे ही एक अवसर पर गांधीजी ने लोहिया के बारे में अपना मत प्रकट किया, बोले, "आप बहुत ही शूर हैं परंतु संभव है कि आपकी मंडली में अधिक शूर ही होंगे ! आप बड़े बुद्धिमान भी हैं, लेकिन ऐसी चतुर बुद्धि वकीलों में भी तो होती है ! लेकिन आप में एक वह गुण-विशेष अवश्य है जो अन्य जनों में शायद ही होता हो और वह है आपका शीलवान चारित्र्य !" लोहिया के एक प्राध्यापक मित्र ने शील का अर्थ धारावाहिकता, प्रवहमानता और सुसंगत सत्य कहा था।

29 जनवरी 1948 को लोहिया गांधीजी से भेंट करने पहुंचे थे, लगता था कि बापूजी को बहुत-सारी बातें उनसे करनी थीं। गांधीजी ने कहा, "कांग्रेस और आपकी पार्टी को लेकर कुछ निर्णय अब किए जाने चाहिए। आप कल आइए, बहुत कुछ कहना है आपसे। जी भर कर बातें करेंगे !"

30 जनवरी की शाम को लोहिया बापूजी से मिलने चले थे कि बीच में उन्हें बुरी और आश्चर्यजनक, दुखद खबर मिली। गांधीजी की हत्या कर दी गयी थी ! जब लोहिया बिरला-भवन पहुंचे तब वे गांधीजी के पार्थिव शरीर के ही दर्शन कर पाए।

गांधीजी की शवयात्रा के दृश्य से लोहिया बड़े बेचैन और दुखी हुए थे, गांधीजी को सैनिकी गाड़ी पर लिटाया गया था, आस-पास गांधीजी के वारिस, नजदीकी रिश्तेदार और शिष्य बैठे थे। लोहिया के मन में विचार कौंध आया—कैसी विडंबना है कि आजीवन अहिंसा के पुजारी रहे बापूजी के शव को अंत में सैनिकी गाड़ी पर जाना पड़ रहा है !

और शेष सारे जनों को चाहिए था कि वे नंगे पांव और नंगे सिर पीछे पीछे चलते, वे भी सब मोटरों में चढ़े जा रहे थे। आखिरी दम तक जिनकी पूजा की उनके साथ अंत में यह कैसा विलक्षण व्यवहार किया जा रहा है ? तीर्थराज प्रयाग के संगम में प्रवाहित करने के लिए बापूजी की रक्षा इलाहाबाद लाई गई थी, एक खास रेलगाड़ी इसलिए तैनात थी, इसमें लोहिया भी थे। हर स्टेशन पर रक्षा के दर्शन करने जनसमूह उमड़ पड़ता था। एक स्टेशन पर लोहिया ने देखा कि कोई किसान अपने श्रद्धा-सुमन चलती रेलगाड़ी पर बिखेरे जा रहा था। जनता के अकृत्रिम और शुद्ध शोकभावना विष्कार से लोहिया के हृदय में अस्फुट पड़ी दुखार्तता सहसा प्रकट हुई। लोहिया को यह स्वीकार न था कि प्रौढ़ जन प्रकट तरीके से दुखावेग में आंसू बहाएं परंतु लोहिया की आंखों से ही सहसा आंसू प्रवाहित हो गए।

लोहिया का एकमात्र आधार बिछड़ गया, फिर से एक बार उन्होंने अपने को अनाथ पाया, न जाने कैसे, पर लोहिया को गांधीजी से पिता का वात्सल्य और स्नेह मिला था। लोहिया का बड़ा प्यारा स्वप्न थे गांधीजी ! भारत और समूचे संसार की नवरचना के अपने स्वप्न के प्रतिरूप में लोहिया ने गांधीजी को पाया था। लोहिया और भारत के लिए गांधीजी रक्षा-पुरुष थे। लोहिया ने आज अपने और देश के उस रखवाले को खोया था जो गलतियों को भी प्रेम और सहानुभूति से समझाने के उपाय जानता था।

जब गांधीजी के दाएं-बाएं रहने वाले शिष्यों—नेहरू, पटेल के हाथों में शासन की बागडोर थी तब गांधीजी की हत्या कैसे संभव हुई ? समाजवादी नेता इस बात पर सदैव सखेद आश्चर्य ही करते रहे ! जयप्रकाश नारायण और कमलादेवी चट्टोपाध्याय ने तो गांधी-हत्या की पूरी जिम्मेदारी सरकार की और खासकर गृहमंत्री पटेल की मानी और सरकार के इस्तीफे की मांग की। इस आशय का एक प्रतिवेदन तैयार किया गया था, इसमें नेहरू का जिक्र नहीं था, जब नेहरू के नाम का समावेश लोहिया के सुझाव पर किया गया तब लोहिया ने इस पर हस्ताक्षर किए।

गांधी हत्या के मूलगामी कारणों का विश्लेषण करते हुए लोहिया कहते हैं "गांधीजी की हत्या हिंदू-मुस्लिम संघर्ष को लेकर उनकी मान्यताएं मात्र नहीं है, इसके पीछे हिंदू समाज में चला आ रहा उदारमतवाद और कट्टरतावाद के बीच का प्राचीन संघर्ष भी है। उदारमतवाद के विरोध में निराश और पराभूत होते जा रहे कट्टरवाद का सब से हीन जुआ था यह हत्या !' कट्टरवादियों ने इससे पहले तीन बार गांधी हत्या की कोशिश की थी इसका स्मरण कराते हुए लोहिया ने कहा था कि 'वर्णवर्चस्व के विरोध में और स्त्रियों के पक्ष में तथा धन-संपत्ति के विरोध में और सहिष्णुता के पक्ष में किए जा रहे गांधीजी के कामों से संतप्त हुए व्यक्तियों ने गांधीजी की हत्या की है !'

9

नई दिशा

गांधीजी की हत्या के कारण जिस तरह भारत के इतिहास के एक युग की समाप्ति हुई उसी तरह लोहिया के व्यक्तिगत और राजनैतिक जीवन के युग का भी अंत हुआ; लोहिया के लिए यह युगांतरकारी कांड था।

अब गांधीजी के नेतृत्व और छत्रछाया में पनपे, उभरे कांग्रेस के नेता, विधायक कार्यकर्ता और समाजवादी विचारधारा को माननेवाले कार्यकर्ता अपने अपने भविष्य के रास्ते की तलाश में थे। अधिकांश कांग्रेसी नेता पहले ही केंद्र सरकार में स्थानापन्न थे, कुछ गांधीजी के भक्त और रचनात्मक कार्यकर्ता भी कांगेस की राजनैतिक गतिविधियों में दखल देते हुए राजनीति में शामिल हो गए थे और कुछ कार्यकर्ता उन खादी, ग्रामोद्योग और हरिजन-सेवा के कामों में उलझ गए जो अधिकतर सरकारी आर्थिक सहायता के मुखापेक्षी थे।

ले-देकर वे समाजवादी कार्यकर्ता बचे जिन पर गांधी हत्या का गहरा असर हुआ जिन्होंने गांधी हत्या के दो महीनों बाद हुए—मार्च 1948 में नासिक में आयोजित अधिवेशन में पक्ष के स्तर पर कांग्रेस से अलग होने का फैसला कर लिया। वैसे, 1946 से ही, कांग्रेस के नेता अपने संगठन में समाजवादियों को रोड़े की भांति टालने की कोशिशों में थे अर्थात कांग्रेस में किसी भी तरीके से उपपक्ष को सह पाने की मानसिकता कांग्रेस नेताओं में नहीं थी। गांधीजी के कारण ही कांग्रेस नेता कांग्रेस के भीतर समाजवादियों के संगठनात्मक अलग अस्तित्व को सहते-झेलते चले आए थे। नौबत यहां तक आगे बढ़ी थी कि एक बार गांधीजी ने सलाह दी कि कांग्रेस का नेतृत्व समाजवादियों को ही सौंपा जाए। गांधीजी की मौत के बाद कांग्रेस पार्टी ने अपने संविधान में संशोधन किया कि कांग्रेस का कोई सदस्य कांग्रेस में रहते अन्य किसी पार्टी का सदस्य नहीं होगा। जिस तरह जब तक गांधीजी जीवित थे तब तक वे नेहरू-पटेल और समाजवादियों के बीच अटूट पुल बने हुए थे, उसी तरह लोहिया और अन्य समाजवादियों को यह आशा थी कि गांधीजी सत्ताधीश बने कांग्रेस नेतृत्व के लिए न केवल अंकुश का काम करेंगे बल्कि केंद्र

सरकार को उन उद्देश्यों और आश्वासनों की पूर्ति के लिए विवश भी करेंगे जो स्वाधीनता-आंदोलन के समय बार बार दिए गए थे। परंतु गांधीजी के देहावसान के बाद न केवल आशा का अंत हुआ बल्कि समाजवादी इस विश्वास को भी खो बैठे, जिसके बाल पर उन्हें कभी लगता था कि वे अपने बल पर कांग्रेस को सही रास्ते पर चला पाएंगे। इन सब बातों का अनिवार्य परिणाम यही हुआ कि समाजवादी कांग्रेस से अलग हो गए।

बावजूद इस अलगाव के निर्णय के अनेक प्रदेशों के कई समाजवादी नेता कांग्रेस से अलग नहीं हुए। कुछ नेताओं की राय थी कि कांग्रेस-त्याग की जल्दबाजी ठीक नहीं है। कुछ नेताओं को अब भी लगता था कि कांग्रेस में रहते हुए ही प्रभावशाली कार्य कर पाना संभव होगा और आखिर में कांग्रेस पर अपना अधिकार कर पाना भी संभव होगा। कतिपय समाजवादी नेताओं की, जो कांग्रेस में थे और जो बाहर भी थे, मान्यता थी कि नेहरू तो समाजवादी हैं परंतु चूंकि वे सरदार पटेल जैसे पूंजीवाद के कायलों से घिरे हुए हैं, कुछ कर नहीं पाते हैं। समाजवादी नेतृत्व की स्थिति भी बड़ी विलक्षण थी। जयप्रकाश नारायण, आचार्य नरेंद्रदेव, अरुणा आसफअली जैसे वरिष्ठ नेताओं का अब भी यही विश्वास था कि जवाहरलालजी भारत को समाजवाद की तरफ ले जाएंगे। जयप्रकाश और नरेंद्रदेव के नेहरूजी के साथ वही स्नेह पूर्ण संबंध अब भी बरकरार थे। परंतु लोहिया को अब नेहरूजी से कोई आशा नहीं थी। लोहिया के शब्दों में, "महायुद्ध से पहले लोहिया के 'दो नेता' थे—गांधी और नेहरूजी। परंतु महायुद्ध के आरंभ में जिस भूमिका को लेकर नेहरू बोल रहे थे और भारत छोड़ो आंदोलन के बाद के सत्तांतरण के समय लोहिया के 'डेढ़ नेता' थे— पूर्ण गांधीजी और आधे नेहरूजी। जैसे ही जवाहरलालजी प्रधानमंत्री बने वैसे ही लोहिया के अपने एक ही नेता बचे—सिर्फ गांधीजी।" नेहरूजी और लोहिया की मित्रता अब औपचारिक मात्र रह गई थी।

समाजवादी जब कांग्रेस से अलग हुए तब उत्तर प्रदेश जैसे कतिपय प्रांतों में कांग्रेस समितियों पर उन्हीं का अधिकार था परंतु पार्टी का अपना कोई कारगर संगठन नहीं था। कुछ प्रदेशों में किसानों-मजदूरों के क्षेत्र में और कुछ प्रांतों में विद्यार्थी-युवकों के क्षेत्र में समाजवादी संगठन थे। समाजवादियों के पास अब एकमात्र धरोहर था, एकमात्र सहारा था, जो भारत छोड़ो आंदोलन में अपने अद्भुत कर्तृत्व के कारण उन्हें प्राप्त हुआ था। परंतु ऐसे अवसर भी कम नहीं थे जो विरोधियों की शक्ति को बढ़ावा दे सकें—स्वाधीनता आंदोलन के सिलसिले में कांग्रेस ने जनता को कई आश्वासन दिए थे, इनकी पूर्ति के लिए सरकार पर दबाव डालना बहुत जरूरी था। भारत में छह सौ पचास रियासतें अब भी सार्वभौम-स्वतंत्र थीं। भारत द्वारा अपनाए गए जनतंत्र के साथ इन रियासतों की जनता के जनतंत्रात्मक अधिकारों का प्रश्न भी जुड़ा हुआ था।

मध्यभारत, मध्यप्रदेश, राजस्थान, उड़ीसा, हैदराबाद, महाराष्ट्र आदि प्रदेशों की रियासतों के निवासियों के संघर्ष में समाजवादियों ने नेतृत्व किया। इन लोगों के निवासियों के संघर्ष की भूनिका स्पष्ट करते हुए लोहिया ने कहा कि 'भारत में और जगहों पर सार्वभौम

सत्ता और रियासतों में निरंकुश सामंतशाहा चले इस विसंगति को कभी स्वीकार नहीं किया जा सकता। दिल्ली की सत्ता भी सार्वभौम रहे और रियासतों में भी वह इसी रूप में होनी चाहिए। रियासतों में सही मायनों में जनता की सरकारें होनी चाहिए।' रियासतों में चली आ रही प्रतिगामी सत्ता को तुरंत समाप्त करने की आवश्यकता पर बल देते हुए लोहिया ने कहा था कि 'राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और हिंदू सभा जैसे जातिवादी संगठनों के केंद्र और आश्रयस्थान रियासतें बनी हुई हैं और कुछ महीनों पूर्व ही इन्होंने दिल्ली की सत्ता को काबू में करने का प्रयत्न किया था !'

सरदार पटेल की सख्त नीति के कारण रियासतों का भारत में विलीनीकरण तो अवश्य हुआ परंतु इन रियासतों को पास के प्रदेश में लीन करने के बजाय सौराष्ट्र, मध्यभारत, पेप्सू, जैसे छोटे छोटे संघराज्य बनाए गए। साथ ही नए ढंग से चुनाव न करा पुराने रियासतदारों को ही प्रदेश-प्रमुख बनाया गया। समाजवादी पार्टी ने इन संघराज्यों में जनतांत्रिक प्रणाली को उचित चुनाव प्रक्रिया द्वारा प्रतिनिधिक रूप में लागू किए जाने के लिए व्यापक आंदोलन चलाया। रीवा में जारी जन आंदोलन लोहिया से प्रेरित था, इस आंदोलन में एक बार प्रदर्शनकारियों पर गोलीबारी हुई जिसमें चार व्यक्ति मरे और बाईस हताहत हुए थे, लोहिया सीधे रीवा पहुंच गए परंतु उन्हें पकड़ कर रीवा-मिर्जापुर की सीमा पर लाकर छोड़ दिया गया।

रियासतों के प्रदेशों के जनतांत्रिकरण के प्रश्न के साथ साथ लोहिया ने इसी समय भारतीय खेती, किसानों और देहातों के अतिशय महत्वपूर्ण प्रश्न की ओर भी अपना ध्यान केंद्रित कर दिया था। मार्क्सवादी समाजवादी क्रांति में औद्योगिक मजदूरों का महत्व बहुत अग्रिम था परंतु लोहिया की मान्यता थी कि नवीन विश्वसंस्कृति की रचना और समाजवाद में किसानों को वही स्थान ग्रहण करना है। परंतु लोहिया की यह मान्यता स्वप्नवत सिद्ध हुई। स्वयं लोहिया भी इसकी सिद्धि को लेकर साशंक थे क्योंकि "काश्तकारों का समाज वह समाज है जो सर्वाधिक लकीर का फकीर बनकर जीवन जीने वाला है। संस्कृति रचना के दैनिक कार्य में, आए दिन घटित होनेवाली राजनैतिक घटनाओं में अर्थात नव संस्कृति के सर्जनात्मक कार्यों में और समाज के अन्य घटकों का साथ निभाते हुए नवसंस्कृति के निर्माण के कार्य में किसान समुदाय बनाकर शायद ही सम्मिलित हो पाएगा और सही और अहं सवाल यही है।"

बावजूद इस आशंका के लोहिया का दृढ़ विश्वास था कि छोटे छोटे और असंख्य समुदायों में विभाजित काश्तकार भले गतिशील न हो पर यह एक बहुत बड़ी शक्ति साबित हो सकती है और इसीलिए इस समाज को चाहिए कि भारत के नवसमाज की रचना के लिए अगर अपने आपको उपयुक्त सिद्ध करना है तो वह एक संगठन तैयार करे। 1948 में लोहिया की प्रेरणा से ही 'हिंद किसान पंचायत' की नींव रखी गई। 1950 में रीवा में लोहिया की अध्यक्षता में पंचायत का प्रथम अधिवेशन संपन्न हुआ। अपने अध्यक्षीय वक्तव्य में लोहिया ने किसानों की दस मांगों की सनद घोषित की। इनमें कुछ मांगें यों थीं—काश्तकार

जमीन के मालिक होंगे, न्यूनतम 12.5 एकड़ और अधिकतम 30 एकड़ के मानदंड से जमीन का पुनर्वितरण किया जाए, खेती से उत्पन्न माल और यंत्रोत्पादित माल की कीमतों में समतोल स्थापित कर किसानों के उत्पादनों को न्यायिक दर मिले। भूमिसेना, अन्नसेना और चौखंभी शासन व्यवस्था की महत्वपूर्ण संकल्पनाओं से देश तब परिचित हुआ जब लोहिया ने अपने भाषण में इनका प्रतिपादन किया था। अपने देश में लगभग 15 करोड़ एकड़ जमीन अनउपजाऊ पड़ी है, उसे उपजाऊ बनाने के लिए 10 लाख सवेतन काश्तकारों की भूमिसेना गठित की जाए। इससे देहात में बसने वाले बेरोजगारों को रोजगार मिल जाएगा, और उत्पादनवृद्धि में जो सहायता होगी सो अलग। प्रशासकीय व्यवस्थापन और आर्थिक नियोजन का विकेंद्रीकरण करते हुए ग्राम, जिला, राज्य और केंद्र के आधार पर—चार खंभों के आधार पर चौखंभा शासन व्यवस्था लागू की जाए। इससे देहाती जनता का नियोजन और शासन में सहयोग बढ़ेगा। परिणामतः जिस पर सदियों से लादी निष्क्रियता को दूर किया जा सकेगा और देहाती जनता में छाई उदासीनता का साम्राज्य भी समाप्त हो जाएगा।

1950 में देश और समाजवादी पक्ष की अंतर्राष्ट्रीय नीति तथा देश की सीमाओं को लेकर दो महत्वपूर्ण सवाल इसलिए उभरे कि दक्षिण और उत्तर कोरिया में युद्ध छिड़ गया था तथा चीन ने तिब्बत पर आक्रमण किया था। लोहिया 1938 से ही—अर्थात 1939 में द्वितीय महायुद्ध शुरू हुआ इससे पहले तीसरी शक्ति के सिद्धांत का पुरजोर समर्थन, प्रतिपादन करते आए थे और अंतर्राष्ट्रीय राजनीति की उनकी सूझ-बूझ का ही यह परिणाम था। स्वतंत्र भारत की विदेश नीति को लेकर लोहिया की धारणा भी बहुत साफ थी, "स्वतंत्र भारत की विदेश नीति अर्थात नेहरू सरकार की नीति भले तटस्थता की रही हो फिर भी भारत की तटस्थता बारी बारी से अमेरिका और रूस की सेवा में लगी हुई तटस्थता है।" इन दोनों सत्ता गुटों से अलग तीसरी शक्ति की अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में आवश्यकता है और इसके निर्माण में वर्तमान विदेश नीति निरुपयोगी है। कांग्रेस से अलग होने का प्रस्ताव नासिक के जिस अधिवेशन में समाजवादियों ने पारित किया उसी अधिवेशन में लोहिया ने तीसरी शक्ति की आवश्यकता का सूत्रपात भी किया था। समाजवादी पार्टी की विदेशनीति समिति के लोहिया स्वयं अध्यक्ष थे। लोहिया की कोशिश थी कि कांग्रेस और भारत सरकार की विदेश नीति से अलग और निश्चित तथा चिरस्थायी विचारों के आधार पर समाजवादी पार्टी की विदेश-नीति विकसित की जाए। परंतु तीसरी शक्ति का विचार जयप्रकाश नारायण, अशोक मेहता जैसे नेताओं के गले आसानी से नहीं उतर पाया और इसकी प्रतीति कोरिया युद्ध प्रसंग से हुई, इस युद्ध में दक्षिण कोरिया को समर्थन देने का प्रस्ताव जो अमेरिका के अनुकूल था—मद्रास अधिवेशन में सर्वानुमति से पारित हुआ, लोहिया इस अधिवेशन में उपस्थित नहीं थे। लोहिया के मत में दक्षिण-उत्तर कोरिया का संघर्ष कोरियाई संघर्ष उतना नहीं था जितना अमेरिका और रूस नाम की दो सत्ताओं के बीच का था।

1950 में नवोदित चीन ने स्वतंत्र तिब्बत पर आक्रमण किया और अपनी सत्ता

वहां प्रतिस्थापित की। इस पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए लोहिया ने कहा था कि 'यह तो शिशु हत्या है !' 1949 में क्रांति के बाद सत्ताधिष्ठित होते ही चीन की कम्युनिस्ट सरकार ने तिब्बत पर अपना दावा घोषित किया था। लोहिया ने इसी समय चीन के दावे का विरोध किया था। लोहिया का साफ साफ यह कहना था कि भारत की उत्तर-पूर्व सीमा और चीन की सीमा के बीच में स्थित तिब्बत पर चीनी सत्ता का स्थापित होना अपनी सीमा सुरक्षा की दृष्टि से भारत के लिए खतरनाक हो सकता है। अपनी बात को अधिक स्पष्ट करते हुए लोहिया ने कहा था—"नए दमखम के साथ चीन में सीमा विस्तार की आकांक्षा और राष्ट्रीय आकांक्षा के तहत आसपास के देशों और समूचे संसार तक में क्रांति कराते हुए विश्व आकांक्षा के निर्माण होने की संभावना है, इस आकांक्षा के परिणाम स्वरूप चीन भारत पर आक्रमण करने की भी संभावना है, ऐसी स्थितियों में लगता है कि अब हिमालय भी गरमाने लगा है।" लोहिया के इस इशारे पर भारत सरकार ने क़ान नहीं दिया, इस की घोर उपेक्षा की। वह जमाना हिंदी-चीनी भाई भाई का था और भारत सरकार ने चीन की तिब्बत पर अधिसत्ता को कबूल किया था।

चीन द्वारा अधिगृहीत तिब्बत और भारत के बीच की विस्तृत हिमालयीन सीमा प्रदेश के छोटे छोटे देशों और वहां की जनता के संबंध में भारत को अपनी अल्पकालिक और दीर्घकालिक नीति अभी निश्चित करनी चाहिए; लोहिया का आग्रह था कि ऐसी नीति की आवश्यकता होने से इसका निर्णय तुरंत कर लेना चाहिए। उत्तुंग और अनुल्लंघनीय हिमालय द्वारा अपनी सुरक्षा होने के भ्रम में रहने के दिन अब लद गए हैं। कश्मीर, नेपाल, भूटान, सिक्किम, आदि उत्तर-पूर्व प्रदेश के छोटे छोटे देशों में बसनेवाली आठ करोड़ जनसंख्या का विश्वास अपने पक्ष में कर लेने की आवश्यकता है और इन देशों में जहां प्रजातांत्रिक सरकार की स्थापना के लिए जन आंदोलन हो रहे हैं हमें चाहिए कि हम उनका भरसक समर्थन करें, तभी भारतीय सीमा की सुरक्षा संभव होगी। लोहिया ने अपना पूरा प्रतिपादन 'हिमालय नीति' शीर्षक से समाजवादी पार्टी की विदेश-नीति-समिति को दिया था।

नेपाल में 1949 से विश्वेश्वर कोइराला के नेतृत्व में नेपाली कांग्रेस ने जनसत्ता के पक्ष में राणाशाही के विरोध में जन आंदोलन चलाया था। नेपाल कांग्रेस के सैकड़ों कार्यकर्ता कैद में थे। विश्वेश्वरप्रसाद कोइराला ने जेल में अनशन शुरू किया था, तब उनके उपोषण और आंदोलन को अपना समर्थन देने के उद्देश्य से समाजवादी पार्टी ने अपने कार्यकर्ताओं को आदेश दिया कि 25 मई 1949 को 'नेपाल-दिन' मनाया जाए। नेपाल दिन के उपलक्ष्य में पार्टी ने दिल्ली में जाहिर-सभा का आयोजन भी किया था। सभा की समाप्ति पर नेपाल कांग्रेस की मांगों का निवेदन लेकर, दफा 144 को तोड़ते हुए लोहिया के नेतृत्व में नेपाल के राजदूतावास पर एक मोर्चा चला गया था। जब मोर्चा रोका गया तब मोर्चे में शरीक कार्यकर्ता वहीं सड़क पर शांति से बैठ गए, बिना किसी कारण के शांति से बैठे कार्यकर्ताओं पर लाठी चलाई गई और बाद में अश्रुगैस तक छोड़ी गई। अंत

में लोहिया के साथ अन्य छियालीस व्यक्तियों को गिरफ्तार कर जेल के लिए रवाना कर दिया गया। स्वतंत्र भारत में लोहिया को पहली बार इस अवसर पर कैद किया गया था। अपनी गिरफ्तारी पर लोहिया की प्रतिक्रिया दो टूक थी, "संभव है कि स्टालिन ने भी अपने सहयोगियों पर इतनी जल्दी हाथ नहीं उठाया होगा !" लोहिया के साथ साथ उन के सभी कार्यकर्ताओं ने सशर्त जमानत पर रिहाई के प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। सब के मामले अदालत में दायर किए गए और सब को सजा दी गई—दो महीने बिना मशक्कत की कैद और सौ रुपया जुर्माना, जुर्माना न भरने की स्थिति में छह हफ्ते की अतिरिक्त कैद।

लोहिया जब जेल में थे तब ऐसे दो प्रसंग घटित हुए जिन से नेहरू-लोहिया संबंधों का संकेत अवश्य मिलता है। जब सुनवाई जारी थी तब नेहरू के दो निकटवर्ती स्नेही मल्लैया और मृदुला साराभाई लोहिया से मिलने के लिए जेल पहुंचे थे। एक दिन नेहरू के निजी सचिव मथाई मिलने आए थे, मल्लैया अपने साथ आम की टोकरी लाए थे। चलते समय मथाई बोले 'टोकरी हम तीनों—नेहरू, इंदिरा और मथाई—की तरफ से है।' दूसरे दिन समाचारपत्रों में खबर थी 'नेहरू ने लोहिया के लिए आम भेजे' नेहरू ने अगले दिन इसका इनकार किया कि 'आम मैंने नहीं भेजे थे, वे तो मथाई ले गए थे।' नेहरू ने तुरंत किसी के हाथों लोहिया के पास संदेश भेजा, 'मेरी तो यह तनिक भी इच्छा नहीं कि आपको एक दिन भी जेल में रखूं पर क्या करूं गृहमंत्री श्री पटेल हैं।'

कुछ दिनों बाद भुगती गई सजा को माफिक मान कर लोहिया और साथियों को रिहा कर दिया गया। सजा की अवधि अभी खत्म नहीं हुई थी।

नेपाल में क्रांति भावना पराकाष्ठा पर पहुंची थी और जन जन के मन में बहुत गहरा प्रभाव डाल चुकी थी। दिसंबर 1950 में प्रत्यक्ष क्रांति का आरंभ हुआ और नेपाल का बहुत बड़ा भू-प्रदेश नेपाली कांग्रेस के काबू में आ गया। नेपाली कांग्रेस को लोहिया ने मशविरा दिया कि अपने काबू के प्रदेशों में वयस्क मतदान के तत्व पर चुनाव कराते हुए पंचायती सरकार स्थापित कराई जाए। इसी बीच भारत सरकार के दबाव में नेपाल कांग्रेस ने राजा त्रिभुवन के साथ समझौता करने की नीति अपनाई और नेहरू ने समझौता करवा दिया। कोइराला को नई सरकार में गृहमंत्री पद दिया गया और इसी के साथ लोहिया से प्रेरित और सक्रिय रूप में समर्थित नेपाली कांग्रेस का जनतंत्रवादी संघर्ष अधूरी स्थिति में ही समाप्त हो गया। नेपाल में राणाशाही अवश्य समाप्त हुई परंतु ऐवज में राजशाही हमेशा के लिए सिर पर सवार हो गयी।

केंद्र सरकार के दखल देने से अपनी आखिरी स्थिति पर पहुंचने से पहले ही संघर्षरत हताश हो जाते हैं और उनका सारा दम उखड़ जाता है। हर आंदोलन का हश्र क्रांति, समझौता और मोहभंग में होना लगभग आम बात हो गई है। गोवा के बाद नेपाल के संदर्भ में लोहिया ने वही अनुभव फिर से पाया।

यह सही है कि लोहिया और उनके साथी नेता मजदूर, किसान और रियासती प्रजा के आंदोलनों और मोर्चों पर जिद्द के साथ संघर्षरत थे परंतु यह भी सही है कि बावजूद

इस सफलता के पार्टी में सब कुछ बेमेल नहीं था। कांग्रेस को छोड़े दो साल बीत गए थे। लेकिन पक्ष नेताओं के वैचारिक मतभेदों के समाप्त होने के कोई आसार नहीं थे। लोहिया ने कार्यकर्ताओं के सामने साफ साफ शब्दों में यह स्पष्ट किया कि "जब तक समाजवादी आंदोलन अपनी बुनियादी विचार प्रणाली को निर्धारित नहीं करता तब तक कार्यकर्ताओं में कठोर श्रद्धा और कर्तव्यनिष्ठा के दर्शन नहीं होंगे, कार्यकर्ता पार्टी को अपना नहीं पाएंगे।" समाजवादी पक्ष के लिए यह बहुत आवश्यक था कि अपनी ठोस, प्रभावशाली विचारप्रणाली और ऐसा ही कार्यक्रम देश के सम्मुख रखे ताकि पक्ष की कांग्रेस से अलग छवि जनमानस पर अंकित हो सके। अपनी बात को तात्विक आधार देते हुए लोहिया ने कहा था कि "जिस तरह आज देश की स्वाधीनता की भूख की तृप्ति हो गई है वैसे अभी समता और समृद्धि की भूख शेष है और इसके लिए हमें चाहिए कि हम जनता को जागृत और चैतन्यमय बनाकर इस तृप्ति की ओर प्रवृत्त करें।"

अपने उद्देश्यों की स्पष्ट प्रस्तुति मात्र से अपेक्षित उद्देश्यों की सिद्धि संभव नहीं थी, इसके लिए जरूरी था कि समाजवादी पार्टी के पास सुस्पष्ट और दृढ़ निश्चय का नेतृत्व और उचित पक्ष संगठन भी हो और ठीक इन्हीं की कमी समाजवादी पक्ष में थी। ऊपर से नीचे तक के अनेक नेताओं का मन अब भी कांग्रेस में अटका हुआ था। कांग्रेस के आकर्षण से वे अभी पूर्णतः मुक्त नहीं हो पाए थे। इन नेताओं को लगता था कि नेहरू समाजवादी हैं और वे प्रजातांत्रिक समाजवाद यहां जरूर स्थापित करेंगे। माना कि कुछ ठोस नहीं हो पाता है तब भी इन नेताओं को लगता था कि समाजवाद के लिए उपयुक्त, मशक्कत की हुई भूमि तो कम से कम नेहरू तैयार करेंगे ही, आज भी उनके पिता नेहरू थे। पक्ष के कार्यकर्ताओं पर यह बात छाई हुई थी कि अपने और कांग्रेस के सिद्धांत अलग अलग नहीं और अंतर सिर्फ कमोबेश गतिशीलता का है। एक ओर नेहरू-पटेल में से नेहरू को वामपंथी और पटेल को दक्षिणपंथी माना जाता था तो दूसरी तरफ नरेंद्रदेव, अरुणा आसफअली जैसे नेताओं के सिर पर इस भ्रम का बोझ अभी बरकरार था कि मार्क्सवाद अब भी कारगर सिद्ध हो सकता है और रूस समाजवाद का विश्व-नेता है ! साथ ही कुछ साथी ऐसे भी थे जिनका अभी विश्वास था कि समाजवादी क्रांति शस्त्रबल पर ही संभव है। समाजवाद के अध्ययन और पहचान के लिए पक्ष के कार्यकर्ता कम्युनिस्ट साहित्य पढ़ते थे और इसी पर निर्भर भी रहते थे। अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में अमेरिका के कायल रहने की और समाजवाद के लिए रूस के कायल रहने की दुविधा की मनस्थिति में अधिकतर कार्यकर्ता नेता अब भी थे।

लोहिया ने इस बात को पहले ही सोचा था इसलिए कांग्रेस से अलग होने के समय ही आपने आगाह कर दिया था, 'कांग्रेस और समाजवादियों के बीच का अंतर सिर्फ गतिशीलता का नहीं, दिशा का भी है। वैसे तो सभी पार्टियों के सिद्धांत व्यवहारतः एक जैसे ही होते हैं, परंतु यह भी तय है कि मार्गों में भिन्नता होती है और मार्ग के कारण ही इच्छा ठोस रूप में साकार होती है; दिशा की अनिश्चितता की स्थिति में सिर्फ इच्छा

निष्फल ही होती है।'

कुल मिलाकर पक्ष के नागरिक अधिवेशन (1948) में सर्वानुमत से पक्ष के सिद्धांतों और कार्यक्रमों का प्रस्ताव भले पारित हुआ हो परंतु पक्ष नेतृत्व में न केवल परस्पर विरोधी पड़ने वाले विचार थे अपितु नेताओं की मानसिकता भी दुविधापूर्ण थी।

लोहिया के समाजवाद विषयक विचार बहुत ही स्पष्ट थे। पक्ष के मंच से अपने विचारों को सम्यक् और प्रकट तौर पर प्रतिपादित करने का पहला प्रयास आपने पार्टी के पटना अधिवेशन (1949) में किया था। कार्यक्रम का 'आगे बढ़ो' प्रस्ताव प्रस्तुत करते समय लोहिया ने जनतंत्रात्मक समाजवाद, पूंजीवाद, कम्युनिज्म, खेती, औद्योगीकरण, विश्वरचना, जैसे कई विषयों को लेकर समाजवाद के विशिष्ट स्वरूप को स्पष्ट करने वाले कई मौलिक विचारों और उपायों को भी प्रतिपादित किया था।

इस सिलसिले में लोहिया की मान्यता थी कि 'अमेरिका और रूस में बड़े पैमाने पर और केंद्रित स्वरूप में औद्योगीकरण की प्रक्रिया जारी है, इनकी नकल उतारने में हमारा लाभ नहीं है। अपने देश में अमेरिका और यूरोप की तुलना में उत्पादक पूंजी की कमी और काम चाहने वाले हाथ कोटि कोटि हैं। उत्पादक-पूंजी के अभाव में बड़े बड़े कारखाने लगाकर जनता को रोजगार दिलाना, इस परिस्थिति में असंभव ही है। इसलिए आवश्यक है कि बिजली पर चलने वाली, और कम खर्च वाली छोटी छोटी मशीनें लगाकर जनता को रोजगार भी दिलाया जाए और देश के उत्पादन में वृद्धि भी की जाए।' कम्युनिज्म ने भी अपने देश में अमेरिका और यूरोप की पूंजीवादी व्यवस्था की तरह अधिक उत्पादक केंद्रित अर्थव्यवस्था और शासन व्यवस्था को ही अपनाया है। सत्ताधारी कांग्रेस पक्ष इन्हीं की नकल उतार रहा है, अपनी बात को स्पष्ट करते हुए लोहिया ने कहा कि "भारत की समस्याओं का समाधान न पूंजीवाद के पास है और न मार्क्सवाद के पास, इसी तरह न नेहरूवाद के पास है और न कांग्रेसवाद के ! दुनिया का कोई वर्तमान इज्म या वाद भारत की समस्याओं को हल करने में पूर्णतः असमर्थ है।"

कृषि उत्पादनों में वृद्धि के लिए लोहिया चाहते थे कि "भारत में करोड़ों एकड़ ऐसी जमीन अनउपजाऊ पड़ी है जो थोड़ी-सी मेहनत करने पर उपजाऊ हो सकती है इसलिए हमें चाहिए कि हम भूमि सेना, अन्न सेना को गठित करें और ऐसी जमीन को उपजाऊ बना दें। छोटे छोटे बांध, तालाब, आदि बनाकर यही सेना पानी की आपूर्ति का काम भी कर सकेगी। इससे जनता के लिए बहुत सारे रोजगार के अवसर मिल जाएंगे।"

लोहिया की मान्यता थी कि जब तक प्रशासन व्यवस्था और साधारण आदमी के बीच की खाई पाटी नहीं जाती तब तक न सचेतन जनतंत्र संभव है और न जनता का समाजवाद ! अपनी बात को स्पष्ट करते हुए लोहिया ने कहा था कि 'नौकरशाही और केंद्रित सत्ता पर निर्भर वर्तमान प्रशासन व्यवस्था को बदल दिया जाना चाहिए और ऐवज में ग्राम, जिला, प्रदेश और केंद्र के क्रमिक स्तर पर काम करने वाली चौखंभा और विकेंद्रित सत्ता और प्रशासन व्यवस्था को कायम किया जाना चाहिए'।

विचारों के सिर्फ स्पष्ट होने से वे प्रत्यक्ष या साकार नहीं होते, विचारों को साकार करने का मुख्य साधन था समाजवादी पक्ष, और लोहिया को लगता था कि अपने पक्ष में से कतिपय दोषों-त्रुटियों को हटाना बहुत लाजमी है, इसे प्रतिपादित करते हुए लोहिया ने कहा कि 'समाजवादी पक्ष आज अकर्मण्यता, नकारात्मकता, बाह्याडंबर, चुनावबाजी, गुटबाजी, सशस्त्र क्रांति की निरर्थक भाषा और सत्ता के लिए बिना मेहनत के मार्गों की तलाश करना, आदि दोषों से ग्रसित है'।

वर्तमान में भारत के लिए सरदर्द बनी कश्मीर की समस्या उस समय भारत-पाक संबंधों के संदर्भ में केंद्रवर्ती मुद्दा था। लोहिया के मत में 'कश्मीर समस्या को संयुक्त राष्ट्र संघ में ले जाकर भारत ने बहुत भारी गलती की है। क्योंकि संयुक्त राष्ट्र संघ अंतर्राष्ट्रीय जालसाजिशों और बड़ी शक्तियों के दांवपेचों का अड्डा बना हुआ है।' जयप्रकाश नारायण ने सुझाव दिया था कि भारत-पाक संबंधों में अगर अनुकूल सुधार करना है तो कश्मीर का भी विभाजन किया जाए। लोहिया ने इस सुझाव का डटकर विरोध किया और कश्मीर के भारत के अविभाज्य अंग होने की बात को दृढ़तापूर्वक कहते हुए अपनी राय भी स्पष्ट की थी, 'कश्मीर की समस्या द्विराष्ट्रवाद के विरोध में चल रहे बहुरंगी राष्ट्रवाद के संघर्ष से जुड़ी हुई है।' अपनी बात को विस्तार देते हुए लोहिया ने यह भी प्रतिपादित किया कि अगर आइंदा कभी भारत-पाक का महासंघ बनेगा तो कश्मीर की स्वाधीनता, स्वायत्तता को महासंघ के दायरे में ही कबूल करना शायद संभव है। लोहिया ने इसी समय एक राज भी उद्‌घाटित किया, जवाहरलालजी ने कश्मीर के नेता शेख अब्दुल्ला को बताया था कि भूटान और नेपाल की तरह कश्मीर को भी अलग दर्जा दिया जा सकता है।

विभाजन के बाद हुए हिंदू-मुसलमान दंगों के सिलसिले में 1949-50 के आसपास भारत-पाक संबंधों के बारे में लोहिया की मान्यताएं अधिक समग्र और निश्चित बन चुकी थीं। भारत-पाक संबंधों पर टिप्पणी करते हुए लोहिया ने कहा था कि 'भारत सरकार की पाक के संबंधों में नीति कभी बिना किसी कारण से पाकिस्तान को खुश करने की रही है तो कभी बिना किसी वजह उसे नाराज करने की।' लोहिया चाहते थे कि इस तरह की चंचलता के बदले भारत को अपनी नीति दृढ़ आधार भूमि पर निश्चित कर लेनी चाहिए। भारत और पाकिस्तान स्वतंत्र और सार्वभौम राष्ट्र भले हों पर हैं वे एक देश ही। राज्यव्यवस्था का विभाजन भले हुआ हो, जनता का विभाजन असंभव है। इसलिए लोहिया को बार बार लगता था कि भारत-पाक का कृत्रिम विभाजन समाप्त किया जाना चाहिए। इस दिशा में आपने दो उपाय सुझाए—परस्पर विचार-विनिमय करते हुए दोनों राष्ट्र अपना एक महासंघ बनाएं तथा भारत में समाजवादी क्रांति की जाए क्योंकि भारत में जब समाजवाद स्थापित हो जाएगा तब पाकिस्तान के शासक अपनी जनता को बहुत समय तक भारत से अलग नहीं रख पाएंगे। लोहिया का अपने सुझाव पर दृढ़ विश्वास था। लोहिया किसी भी प्रकार से युद्ध किए जाने के विरोध में थे, और भारत-पाक युद्ध तो आपको कतई रास न आता। फिर भी 'बावजूद इन सारे प्रयत्नों के पाकिस्तान ने अपना बैर बरकरार

रखा और अगर भारत पर आक्रमण किया तो प्रतिआक्रमण से ही इसका प्रत्युत्तर दिया जाना चाहिए।' यह भी लोहिया की दृढ़ धारणा थी। लोहिया को लगता था कि 'भारत की नीति पाक विरोध में भले हो परंतु उसे मुसलमानों के हित में होना चाहिए।'

इन्हीं दिनों और बाद में विशेष प्रसंगों पर भी लोहिया ने भारत में उद्‌भूत हिंदू-मुस्लिम समस्या का मौलिक या मूलग्राही विवेचन किया है। वे कहते हैं कि "व्यापारी और सांस्कृतिक स्तर पर किए जाने वाले यातायात-करार, महासंघ की योजना, आदि राजनैतिक स्तर पर किए गए प्रयत्न तब तक सफल नहीं हो सकते जब तक सात सौ वर्षों से चली आ रही हिंदू-मुस्लिम की सहजीवन-प्रणाली की परिणति उभय धर्मानुयायियों की मानसिक और सांस्कृतिक एकरूपता में नहीं होती है।" इस एकरूपता के लिए 'पहली शर्त-प्रेमात्मक एकात्मता की है।' प्रेमात्मक एकात्मता के लिए आवश्यक है कि दोनों धर्मानुयायी सबसे पहले यह तय कर लें कि इतिहास और धर्म के उचित अभिप्राय और अन्वय को समझाते हुए अमन-चैन से रहें अथवा दोनों का सिर्फ अपने अपने पक्ष में अन्वय करते हुए हमेशा लड़ते-झगड़ते रहें। इस संदर्भ में लोहिया का दृढ़ विश्वास था कि 'उदारमतवाद ही देश में एकात्मता स्थापित कर सकता है। कट्टरपंथी हिंदुत्व का स्वरूप ही कुछ ऐसा है कि इससे हिंदू समाज में एकता की भावना का निर्माण ही नहीं हो पाता।' लोहिया को लगातार लगता था कि एकता निर्मिति के लिए एकता की इच्छा ही निर्णायक होगी। 'अंततः हिंदू और मुसलमानों की इच्छा शक्ति ही इन्हें एकात्म बना सकती है, अन्य कोई शक्ति इसे सिद्ध नहीं कर सकती।'

भारत-पाक मित्रता अथवा भारत-पाक महासंघ को लेकर दिए जाने वाले या हो सकने वाले प्रयत्नों को लेकर लोहिया सरकारी स्तर पर किए जाने वाले प्रयत्नों के समकक्ष और कई बार इनकी अपेक्षा अधिक महत्व दोनों देशों की जनता में इस दिशा में होने वाले अभिसरण को देते हैं। लोहिया की श्रद्धा थी कि अगर दोनों देश अपने अपने नागरिकों पर लगाई गई पाबंदियों को हटाएंगे और दोनों देशों की जनता विविध स्तरों पर परस्पर संपर्क में आ जाए तो आज नहीं तो कल, दोनों में दोस्ती की भावना पनपेगी, बढ़ेगी और दोनों राष्ट्र एक देश में रूपांतरित हो जाएंगे।

1949 में लोहिया के नेतृत्व में 'हिंद किसान पंचायत' की नींव रखी गई और इसी वर्ष समाजवादी पक्ष ने अपने अखिल भारतीय कार्यक्रम में भारतीय किसान शक्ति को आला दर्जे का स्थान दिया था। वैसे जब समाजवादी जन कांग्रेस में थे तभी से कुछ प्रांतों में किसान संगठन बांधने का काम वे कर रहे थे। समाजवादी कार्यकर्ताओं ने 'हिंद किसान पंचायत' के जरिए देश के अनेक भागों में किसान आंदोलन को दमखम के साथ चलाया था। नवंबर 1949 में लखनऊ में एक लाख किसानों के विराट मोर्चे के आयोजन के रूप में इन कार्यक्रमों का आरंभ हुआ था। लोहिया ने उत्तर प्रदेश, बिहार, विंध्य प्रदेश, राजस्थान, आदि कई प्रांतों के दौरे करते हुए किसान पंचायत के कार्य को बहुत बल दिया था। बंटाई पर खेती जोतने वाले किसानों की बेदखली, अकाल, अनाज की घटती दरें, आदि कतिपय

प्रश्नों पर प्रदेशों की राजधानियों में सफल मोर्चों का आयोजन हुआ और कुछ राज्यों में इन्हीं प्रश्नों पर आंदोलन भी छिड़ गए थे।

फरवरी 1950, में हिंद किसान पंचायत का पहला अखिल भारतीय अधिवेशन लोहिया की अध्यक्षता में रीवा (मध्य प्रदेश) में आयोजित किया गया था। इस विशाल सम्मेलन से यह अंदाज सहज ही होता था कि विगत डेढ़-दो वर्षों की अल्पावधि में पंचायत ने किस तरह सफलता पाई है और अपनी शक्ति किस तरह अर्जित की है! सरकारों और विरोधकों के कारण उत्पन्न अनेकानेक बाधाओं-संकटों को मात देते हुए कई किसान तीस तीस, चालीस चालीस मील का फासला पैदल ही तय कर इस अधिवेधन में उपस्थित हुए थे। आगे चलकर तीस वर्षों के बाद कांग्रेस ने 'गरीबी हटाओ' का जो नारा दिया उसे लोहिया ने अपने अध्यक्षीय भाषण में इसी समय पहली बार दिया था। इसके साथ साथ सगुण-साकार स्वरूप में अवतरित हो सकने वाला समताधिष्ठित कार्यक्रम भी देश के सम्मुख पहली बार लोहिया ने ही रखा था। लोहिया ने पटना अधिवेशन में सुझाए उपायों का जिक्र भी इस में किया था—छोटी छोटी मशीनों को लगाना, चौखंभा राज, भूमिसेना, अन्न सेना का उल्लेख भी इस अधिवेशन में किया गया था। लोहिया ने अपने वक्तव्य में किसानों की 10 मांगों की एक सनद भी प्रस्तुत की थी। इनमें निम्नलिखित तीन मुख्य बातों का समावेश किया गया था—जमींदारी प्रथा का उन्मूलन हो, न्यूनतम 12 और अधिकतम 30 एकड़ के अनुपात में भूमि का पुनर्वितरण कराया जाए, किसी भी व्यक्ति का उत्पादंन और खर्च का अनुपात 1:10 से अधिक न हो, खेती से उत्पन्न माल और यंत्रोत्पादित माल की कीमतों में संतुलन बना रहे। 'गरीबी हटाओ' नारे को ठोस रूप देने का काम लोहिया ने इस अधिवेशन में किया।

रीवा (मध्य प्रदेश) के अधिवेशन में ही लोहिया ने अपना प्रसिद्ध नारा 'एक घंटा देश के लिए' देश के सम्मुख रखा था। विराट किसान-शक्ति का ग्राम सुधार ग्राम नव-रचना के लिए उपयोग कर लेने के अपने विचार को करते हुए लोहिया ने कहा था कि "यद्यपि अपने देश में संपत्ति में वृद्धि करने के उपाय किए जा रहे हैं तथापि स्वयं जनता में इन उपायों को लेकर उदासीनता भी है और उसमें आत्मविश्वास भी नहीं है। सरकारी सहायता लिए बिना देहातों के पुनरुज्जीवन के लिए अगर किसान-शक्ति को प्रेरित किया जाएगा तो देहाती जनता में आत्मविश्वास जगेगा। स्वेच्छा से श्रमदान की लहर अगर गांव गांव में दौड़ जाए तो देहातों का पुनः निर्माण ही नहीं होगा बल्कि समाजवाद की लड़ाई भी हम जीत सकेंगे। गांधीजी के रचनात्मक कार्य का प्रतीक-सूर्य चरखा रहा है, अपना सूर्य फावड़ा रहेगा।"

लोहिया के मन में सिर्फ वह किसान-आंदोलन नहीं था जो समाजवादी पक्ष को किसानों की शक्ति दिलाता बल्कि लोहिया किसान शक्ति में वह स्वप्न देख रहे थे जो केवल भारत की नवरचना नहीं करेगी बल्कि नवविश्वरचना की जन्मदात्री भी बनेगी। परंतु विराट स्वप्नदर्शी लोहिया इसकी पूर्ति को लेकर साशंक थे क्योंकि उन्हें मालूम था कि 'किसानों

का समाज अन्य समाजों की तुलना में अधिक लकीरबद्ध होकर चलने वाला समाज है। कभी-कभार यह साम्राज्यवाद को धक्के अवश्य देता है परंतु यह निश्चित रूप में नहीं कहा जा सकता कि संस्कृति रचना के कार्य में नवसमाज और नवसंस्कृति के सर्जक के नाते अन्य समाजों के साथ जुड़ा रहकर लगातार सहयोग करेगा।'

लोहिया के आह्वान पर जून 1951 में भारत में रचनात्मक सप्ताह मनाया गया था। लोहिया ने पंजाब, उत्तरप्रदेश, मध्य भारत के इस समय दौरे किए थे। बुलंदशहर में ऐसी नहर बनाने का कार्यक्रम शुरू किया गया तो तीन सौ एकड़ जमीन को पानी दिलाता। पथरेडी नाम के देहात के किसानों ने पनियारी नदी पर दो टीलों के बीच में बांध लगाया और उसे 'लोहिया सागर' कहा। रचनात्मक कार्यक्रम सप्ताह तब संपन्न हुआ जब दिल्ली में 'जनवाणी दिवस' के उपलक्ष्य में विशाल किसान मोर्चे का आयोजन किया था। मोर्चे में शरीक किसानों ने राजघाट पर रचनात्मक कार्य से जुड़े रहने की ओर अन्याय का अखंड विरोध करने की शपथ ग्रहण की। साथ ही अपनी प्रमुख छह मांगों की 'जनता-सनद' राष्ट्रपति के सम्मुख पेश भी की।

मैसूर रियासत के कागोडू देहात के किसान बेदखली के विरोध में अपना आंदोलन चला रहे थे, इनका साथ देने के लिए लोहिया कागोडू रवाना हो गए, वहां इन्हें गिरफ्तार किया गया, इस गिरफ्तारी के निषेध में समाजवादी पक्ष ने 'कागोडू दिवस' मनाया। इस दिन भारत भर में अनेक जगहों पर प्रदर्शन किए गए यहां तक की लंदन में भी प्रदर्शन किए गए। लोहिया ने जमानत पर रिहाई को एकदम मना कर दिया था और अपनी गैरकानूनी गिरफ्तारी के विरोध में उच्च न्यायालय में रिट दाखिल किया था। जब सरकार ने पाया कि मामले में फंसने की संभावनाएं हैं, तब सात दिन में ही लोहिया को रिहा किया गया। स्वाधीन भारत में हुई लोहिया की यह दूसरी गिरफ्तारी थी।

10

विश्व भ्रमण

लोहिया उन गिने-चुने समाजवादी नेताओं में हैं जिन्हें संसार भर के अनेक देशों की यात्रा करने का अवसर प्राप्त हुआ। आपने सिर्फ दो वर्षों की अवधि में अर्थात 1949 में पहला और 1951 में दूसरा दौरा किया।

1949 के जून में नेपाल दिवस के सिलसिले में लोहिया दिल्ली के जेल में थे। इसी समय उन्हें वह पत्र मिला जिसमें उन्हें सितंबर के पहले हफ्ते में स्टाकहोम में होनेवाले विश्व सरकार आंदोलन के विश्व सम्मेलन में उपस्थिति के लिए आमंत्रित किया गया था। द्वितीय महायुद्ध के बाद संकुचित राष्ट्रवाद की सीमाओं को लांघकर अनिष्ट सत्ता-प्रतियोगिता से रहित नव विश्वरचना का स्वप्न संसार के कुछ वैचारिक जन देखने लगे थे। इसी से पाश्चात्य देशों में विश्व संघ संस्था और इसके तहत चलने वाले 'विश्व सरकार' का आंदोलन उदित होकर चल रहा था। विश्व सरकार आंदोलन के तगड़े समर्थक के नाते इस अधिवेशन के लिए लोहिया को स्टाकहोम भेजने का निर्णय भारतीय शाखा ने किया था।

स्टाकहोम सम्मेलन के व्यापक मंच से लोहिया ने अपने नव विश्वरचना, तीसरी शक्ति और अंतर्राष्ट्रीय शांति तथा सुरक्षा विषयक विचारों को विश्व के सम्मुख पेश किया था। विकसित देशों के सत्ता के चरम केंद्रीकरण के विरुद्ध लोहिया ने अपनी चौखंभी योजना के साथ विश्व का पांचवां खंभा जोड़कर उसे इसी मंच से विश्व के सामने रखा था।

स्टाकहोम सम्मेलन के उपरांत लोहिया विश्व सरकार आंदोलन की डेन्मार्क शाखा के आमंत्रण पर कोपनहेगन की यात्रा पर गए थे। पश्चिम जर्मनी के दौरे में हम्बुर्ग और हैनोवर की यात्रा करते हुए आप पश्चिम जर्मनी की राजधानी बॉन भी पहुंच गए। यहां जर्मन सोशल डेमोक्रैटिक पार्टी के ज्येष्ठ नेता डा0 शूमाखर के साथ आपने भेंट-वार्ता की। चर्चा के सिलसिले में डा0 शूमाखर ने अपना मंतव्य व्यक्त किया, वे बोले, 'मुझे नहीं लगता कि नए संसार का निर्माण यूरोपीय समाजवादी अब कर पाएंगे, यह काम अगर कुछ हो

सकता है तो एशियाई समाजवादी ही कर सकेंगे, और तभी इस आंदोलन का कुछ उपयोग होगा। यूरोपीय समाजवाद अब अतीत बन गया है और एशियाई समाजवाद अभी नया है और इसीलिए भले अभी कच्चा हो पर अगर कुछ कर दिखाने की चमक है तो इसी में है। नव विश्वरचना के जोखिम को यही उठा सकता है।

लोहिया ने यूरोपीय समाजवाद की जो समीक्षा और टीका-टिप्पणी की थी, डा0 शूमाखर ने उसका समर्थन ही किया था। उनकी वही निराशा थी जो लोहिया की थी। लोहिया की टिप्पणी का आशय था कि प्रथम और द्वितीय महायुद्धों के समय और बाद के अपने आचरण से यूरोपीय समाजवाद ने समाजवाद के विश्वव्यापक विचार से अपना नाता पूरा तोड़ लिया है। युद्ध के समय संकुचित राष्ट्रवादी निष्ठा के शिकार होकर यूरोप के समाजवादियों ने अपनी साम्राज्यवादी और पूंजीवादी सरकारों का समर्थन किया था। आजकल ये ही समाजवादी अपने देश के श्रमजीवियों के जीवनमान को कल्याणकारी सरकार के जरिए लगातार ऊंचा उठाने के प्रयत्नों तक सीमित रह गए हैं। यूरोपीय समाजवाद के लिए अंतर्राष्ट्रीय समाजवाद की कल्पना अब निरी साज-सज्जा तक शेष रह गई है। लोहिया ने अपनी बात को साफ साफ प्रतिपादित किया था।

बॉन की यात्रा के बाद लोहिया बर्लिन पहुंचे। बर्लिन के हम्बोल्ट विश्वविद्यालय की ओर से डाक्टरेट पाकर भारत लौटे लोहिया फिर अठारह वर्षों बाद बर्लिन पहुंचे थे। अपने सिर्फ तीन मित्रों से ही इस समय वे मुलाकात कर सके थे। युद्ध में अनगिनत जर्मन मारे गये थे। बर्लिन की समाजवादी नगर परिषद के अतिथि थे, लोहिया। सोशल डेमोक्रैटिक पार्टी के सदस्यों के सम्मुख लोहिया ने अपना भाषण दिया, लोहिया ने समाजवादी मित्रों का ध्यान इस बात की ओर आकृष्ट किया कि अंतर्राष्ट्रीय समाजवाद के अपने स्वप्न को सफल साकार बनाने में यूरोप के समाजवादी किस तरह असफल रहे हैं। साथ ही एशियाई समाजवाद पर टिप्पणी करते हुए लोहिया ने यह भी स्वीकार किया कि इस समाजवाद में आदर्श और उत्साह तो बहुत है परंतु इसमें कोई ठोसपन नहीं है और न इसकी अपनी कोई पहचान तक है, बिना चेहरे का समाजवाद है यह।

जर्मनी की यात्रा के बाद लोहिया फ्रांस पहुंचे, यहां पेरिस आकाशवाणी से उनका भाषण प्रसारित किया गया था। संभवतः लोहिया ही वे पहले व्यक्ति थे जिन्होंने पूंजीवाद और कम्युनिज्म की जन्मभूमि यूरोप को पहली बार और दो टूक शब्दों में यह सुनाया होगा कि 'ये दोनों प्रणालियां संसार को आज परेशान कर रही समस्याओं को सुलझाने में असमर्थ हैं और यूरोपीय जनों की दृष्टि में इन दोनों से अलग कोई तीसरा मार्ग शायद अब तक नहीं आया है। इसलिए कि अब भी पुरानी विचार परंपरा की जबरदस्त पकड़ में यूरोप की वैचारिकता संकीर्ण बनी हुई है।'

फ्रांस की यात्रा के बाद, जिसे लोहिया संसार के दो तिहाई हिस्से में फैले गरीब देश कहते हैं, उन—पश्चिम अफ्रीका, दक्षिण और पश्चिम एशिया—की यात्रा के साथ साथ लोहिया ने इंग्लैंड की यात्रा भी की। आप इजराइल भी गए। मोरोक्को में स्वाधीनता आंदोलन

के नेता शाहजादा अब्दुल करीम और अरब लीग के प्रधान सचिव अजमशाह के साथ भी लोहिया की बातचीत हुई थी।

लगभग दो महीनों के दौरे के बाद जब लोहिया लौट कर आए तब बंबई में पत्रकारों और संवाददाताओं के साथ बातचीत करते हुए उन्होंने कहा कि 'तीसरी शक्ति को कार्यान्वित किए बिना तीसरे युद्ध से बच पाना संभव नहीं होगा।' इस सिलसिले में भारत की निष्क्रियता पर आपने अपनी तीव्र प्रतिक्रिया व्यक्त की थी। इससे पहले जब लोहिया यूरोप के दौरे पर थे तब आपने संयमपूर्वक स्वदेशी सरकार पर टिप्पणियां नहीं की थीं।

1951 में लोहिया पुनः विदेश यात्रा पर गए थे। जर्मनी में फ्रैंकफुर्ट में होने वाले समाजवादियों के विश्व सम्मेलन के आमंत्रण पर लोहिया वहां पहुंचे थे। आप भारतीय समाजवादी पक्ष के प्रतिनिधि के नाते गए थे।

यूरोपीय समाजवाद के कटु परंतु अनपेक्षित नहीं ऐसे पंगुत्व का अनुभव लोहिया ने सम्मेलन में किया। संसार की दो महासत्ताएं—अमेरिका और रूस—अपने अपने प्रभाव में होने वाले राष्ट्रों की सुरक्षा के लिए नाटो, सीटो, वार्सा, आदि सामुदायिक सुरक्षा करार कर रही थीं। यूरोपीय राष्ट्रों के समाजवादी जन अमेरिका प्रेरित सामुदायिक करारों के समर्थक बन चुके थे। सम्मेलन के पहले प्रस्ताव में ही प्रच्छन्नता के साथ इसी भूमिका का निर्वाह किया गया। लोहिया ने इस प्रस्ताव का विरोध किया। अपने वक्तव्य में लोहिया ने साफ साफ यह सवाल किया कि, 'क्या उन गिने-चुने हाथों का हम समर्थन करेंगे जिनके वश में फौलाद और तेल के कारखाने हैं? सामुदायिक सुरक्षा करारों के जरिए आखिर हम किस प्रकार संसार को गढ़ना चाहते हैं? इसमें दो राय नहीं कि हर आक्रमण का मुकाबला किया जाना ही चाहिए। परंतु इस बात का हमें यकीन नहीं कि वर्तमान सुरक्षा योजनाओं के जरिए समूचे संसार का संरक्षण संभव होगा।' अपनी बात को आगे बढ़ाते हुए लोहिया ने कहा कि 'जिसे समाजवाद का अपना वैशिष्ट्य कहा जा सकता है ऐसा कोई वैशिष्ट्य अब नहीं रहा है। पश्चिम यूरोपीय राष्ट्रों को अमेरिका के साथ संबंध रखना अनिवार्य है और इसीलिए वहां का समाजवादी पक्ष अमेरिका के सामुदायिक सुरक्षा योजना का समर्थन करते हैं। भारत सहित कई राष्ट्रों को एटलांटिक गुट के साथ कोई लेना-देना नहीं है।

इसी अधिवेशन में लोहिया ने कम्युनिज्म की मितव्ययी और मार्मिक परिभाषा भी प्रस्तुत की और कम्युनिज्म तथा पूंजीवाद की समानता को दर्शाया; आपने अपना सूत्र बताया—कम्युनिज्म = समाजवाद − जनतंत्र + केंद्रीकरण + गृहयुद्ध + रूस।

इस सम्मेलन में कुल मिलाकर लोहिया की भूमिका दरिद्र और पिछड़े देशों—अफ्रीकी और एशियाई देशों—के सशक्त प्रतिनिधि की रही, समाजवाद के प्रवक्ता की अपनी भूमिका लोहिया ने बखूबी निभाई थी। 'संसार का दो तिहाई हिस्सा जब गरीबी में पिसा जा रहा है तब राष्ट्र राष्ट्र के बीच होनेवाली अमीरी और गरीबी की बढ़ती जा रही खाई को पाटने की समस्या आज केवल एक राष्ट्र की ही नहीं बल्कि वैश्विक समस्या बनी हुई है। गरीब राष्ट्रों को दारिद्र्य से मुक्ति पाकर अपना जीवनमान सुधारना भी है और अपनी सुरक्षा

का काम भी करना है। विपरीत इसके समृद्ध राष्ट्रों को सिर्फ अपनी समृद्धि और सुरक्षा की चिंता पड़ी है। इसलिए समृद्ध राष्ट्रों द्वारा प्रस्तावित सामुदायिक सुरक्षा करारों के प्रेरक उद्देश्यों को हमें भलीभांति समझ लेना चाहिए।' इस प्रकार लोहिया ने अपना मंतव्य स्पष्ट किया था।

लोहिया के वक्तव्य में निहित नवीन और ताजा, उम्दा विचारों से सारा अधिवेशन प्रभावित हुआ था। अंतर्राष्ट्रीय समाजवादी संगठन के प्रधान सचिव एक अंग्रेज सज्जन थे, वे बोले, 'मैं आपके विचारों से पचहत्तर फीसदी सहमत हूं।'

यह सही है कि लोहिया के विचार अधिवेशन-प्रतिनिधियों को यद्यपि आकर्षक और विचारणीय लगे थे तथापि यह भी उतना ही सही है कि उन्होंने प्रस्ताव अपने मूल रूप में ही पारित किया। लोहिया की मान्यताओं के अनुकूल कोई संशोधन प्रस्ताव में नहीं हुए।

रूस की जकड़ से मुक्त हुए मार्शल टीटो के नेतृत्व वाले युगोस्लाविया को लेकर जनतंत्रवादी और समाजवादी जनों को बड़ी उत्सुकता और कुतूहल था। फ्रैंकफुर्ट अधिवेशन के बाद लोहिया युगोस्लाविया गए। सत्ता और संपत्ति के विकेंद्रीकरण की दिशा में चल रहे युगोस्लाविया के प्रयत्नों की लोहिया ने तारीफ की और यह सिफारिश भी की कि अगर छोटे यंत्र के सिद्धांत को अपनाया जाएगा तो युगोस्लाविया बहुत फायदे में रहेगा।

युगोस्लाविया के दौरे की समाप्ति पर लोहिया अमेरिका के लिए चल पड़े। 16 जुलाई 1951 को लोहिया ने न्यूयार्क के आइडल वाइल्ड हवाई अड्डे पर जैसे ही कदम रखा था वैसे ही वहां के संवाददाताओं ने उन्हें घेरकर पहला सवाल किया कि 'अमेरिका की यात्रा का आपका प्रमुख उद्देश्य क्या है?'

'अमेरिका के बारे में मेरा अपना आकर्षण और अमेरिकी संस्कृति को लेकर मेरी अपनी शंकाओं में से क्या अधिक सही है इसकी जांच पड़ताल करने के इरादे से मैं यहां आया हूं।' लोहिया ने भी तपाक से कह दिया था।

'सबसे प्राचीन परंतु सबसे बुद्धिमान न होने वाले देश से मैं सबसे युवा और सबसे रंगदार देश में आया हूं।' थोड़ी-सी हंसी के साथ लोहिया ने यह भी कहा कि 'चूंकि मेरी जाति व्यापार धंधे के लिए प्रसिद्ध है मैं स्वभावतः राकफेलर फोर्ड के उद्योगों में रुचि रखता हूं लेकिन इससे भी अधिक खुशी मुझे लिंकन और जेफर्सन के देश में आने पर हुई है।'

लोहिया के प्रतिभा संपन्न और मर्मभेदक व्यक्तित्व को विश्व-विख्यात वैज्ञानिक आइन्स्टिन, प्रसिद्ध लेखक एप्टन सिंकलेअर, पर्ल बक तथा ग्रेटा गार्बो, फ्लेअर मैक्लिप जैसी विख्यात अभिनेत्रियों का भी आकर्षण था।

अमेरिका जाने से पूर्व कुछ दिन लोहिया के नेतृत्व में जनवाणी दिवस के उपलक्ष्य में भारत में विशाल जनप्रदर्शन हो चुका था। कागोडू में किसान आंदोलन के सिलसिले में लोहिया को गिरफ्तार भी किया जा चुका था। दोनों समाचार अमेरिकी समाचार पत्रों में छपे थे। इसलिए सजग अमेरिकी जनता में भी लोहिया को लेकर एक उत्सुकता थी।

संवाददाताओं का प्रश्न था, 'आपको क्या लगता है, आगामी आमचुनावों में भारतीय

जनता का क्या फैसला होगा?'

'मुझे तो लगता है कि दुष्ट सरकार की जड़ को तुरंत उखाड़ कर फेंक देना चाहिए।'

अमेरिकी इंडियन लीग के अध्यक्ष और नेहरू के समर्थक जे0 जे0 सिह संवाददाता परिषद में उपस्थित थे; लोहिया के उत्तर से वे चकित थे। बाद में उन्होंने कहा कि 'राममनोहर क्या ये ऐसी बातें हैं कि जिन्हें यहां और इतना साफ साफ कहा जाए?'

'बिलकुल! जब दो साल पहले मैं यूरोप की यात्रा पर था मैंने संयम के साथ भारत सरकार के बारे में चूं तक नहीं कहा था। इन दो वर्षों में अपने देश की बड़ी दुर्गति हुई है। अगर मैं कुछ बातों को अभी न कहूं तो विश्व नागरिकत्व की बड़ी हानि होगी।'

अमेरिका की सोशलिस्ट पार्टी के नेता राबर्ट मेयर और अन्य साथियों ने न्यूयार्क हवाई अड्डे पर लोहिया का स्वागत किया। अड्डे के बाहर मोटरों का बड़ा तांता लगा था, इसे देखकर लोहिया ने मुस्कुराकर मेयर से कहा, 'मुझे शंका है कि इतनी सारी मोटरें समूचे भारत भर में शायद ही होंगी, तब यह कहिए कि ऐसी स्थिति में भारत-अमेरिका में मित्रता कैसे संभव होगी?'

रात में हवाई जहाज से यात्रा करते हुए लोहिया ने अमेरिका में बिजली की चकाचौंध करा देनेवाली चमक-दमक देखी थी। इसे याद करते हुए लोहिया बोले, 'मुझे नहीं लगता कि अमेरिका शहर जितनी मात्रा में बिजली का इस्तेमाल कर लेते हैं उतना समूचे भारत में भी होता होगा!'

टेनेसी राज्य के नीग्रो को लेकर नैशविले के विश्वविद्यालय में वर्णभेद विरोधी संस्थान का वार्षिक अधिवेशन आयोजित था और इसी अधिवेशन में लोहिया ने अमेरिका में अपना पहला जाहिर वक्तव्य दिया। आरंभ में यह प्रतिपादित करते हुए कि पाश्चात्य गौरवर्णियों की संस्कृति संसार की प्रतिनिधि संस्कृति नहीं है, लोहिया ने आगे कहा कि अगर विगत चार सौ वर्षों में नीग्रो जनता के हाथ में राजनैतिक अधिसत्ता होती, अफ्रीका स्वाधीन होता और यूरोप पर अफ्रीका का शासन होता तो संसार में आज प्रचलित सौंदर्य विषयक और दार्शनिक मान्यताएं कुछ अलग होतीं।

वर्ण विद्वेष के लिए कुख्यात अमेरिका में भी किस तरह इंसानियत और सज्जनता विद्यमान है इसका अपने अनुभव के हवाले लोहिया ने संक्षिप्त प्रतिपादन किया, यह भला अनुभव भी एक गौरांगना ने करा दिया था, इसका भी आपने उल्लेख किया। "अठारह साल पहले, अपने एक भारतीय मित्र के साथ मैं इस युवती से मिलने पेरिस के एक होटल में पहुंचा था, चूंकि हम काले थे, चौकीदार ने हमें मना किया, वह युवती वहीं खड़ी थी, चौकीदार की बात सुनकर उसकी आंखें डबडबा आईं, वे आंखें कह रही थीं कि इंसानियत पर हुआ यह आघात असहनीय और अन्यायपूर्ण था! ..... वास्तव में मानव मानव में कैसा भेद? त्रिपोली में मानव के होंठ मोटे होते हैं तो पेरिस में पतले! बर्लिन में मानव की चमड़ी गोरी होती है तो नैशविले में काली! परंतु क्या सब जगहों पर अंतःकरण एकसा नहीं होता!"

दक्षिण टेनेसी में पर्वतावली में निर्मित हाइलैंडर फोफ स्कूल में जब लोहिया पहुंचे तब उनको देखने के लिए मजदूरों, काश्तकारों, छोटे बच्चों और बच्चियों की बड़ी भीड़ जमा हुई थी। आधुनिक सभ्यता और सुख-सुविधाओं की डींग हांकने वाले अमेरिका के उस देहात में किसान अपने हाथों से कुएं में से पानी निकाल रहे थे, स्कूल में आठवीं कक्षाओं के लिए सिर्फ दो शिक्षक थे और पानी के अभाव में लोग हफ्ते भर में सिर्फ दो बार ही नहा सकते थे। लोहिया को अमेरिका की कथित समृद्धि पर आश्चर्य था !

गांव वालों की सभा में जब लोहिया ने स्वेच्छा श्रमदान की अपनी कल्पना का बयान किया तब वहां से बारह युवक-युवतियों ने भारत में स्वयं सेवक के नाते चलने की इच्छा व्यक्त की। लोहिया बहुत खुश थे इस पर। लोहिया ने इस समय एक अनोखा दृश्य अपनी आंखों के सामने झलकता देखा कि भारतीय और अमेरिकी श्रम-सैनिक सम्मिलित होकर भारतीय देहात की पुनर्रचना के काम में जुटे हुए हैं !

अल्बामा राज्य के मेरियन जंक्शन में भाषण करते हुए लोहिया ने स्वयं की अभिप्रेत क्रांति की कल्पना को स्पष्ट किया, 'हम उस क्रांति के आकांक्षी हैं जिसमें करुणा और क्रोध का सम्मिलन हुआ हो। स्पर्धा और घृणा से प्राप्त क्रांति से हमें कोई उम्मीद नहीं है। मेरे अपने देश के व्यक्ति ने इसे सिद्ध कर दिखाया है कि ऐसी क्रांति निरी भट्ट भडंत' नहीं है। आधुनिक संसार में क्या गांधीजी मात्र निरर्थक थे? क्या थोरो की महिमा इसी में है कि फुरसत का समय इन्हें पढ़कर अच्छा गुजर जाता है? आज तक गांधी और थोरो जैसे महानुभाव सामान्य जनजीवन के प्रवाह में शरीक नहीं हो सके हैं। इतिहास इसका साक्षी है कि हैमिल्टनों ने जेफर्सनों को हमेशा परास्त किया है। अब वह समय आया है कि संसार के रंगमंच पर जेफर्सनों की विजय की संभावनाएं हैं।'

लोहिया का भाषण जारी था और सारी सभा मंत्रमुग्ध थी, चारों तरफ शांति फैली हुई थी और स्वयं दिशाएं लोहिया को सुनने को मानो ललक रही थीं। भाषण की समाप्ति पर प्रश्नोत्तर का कार्यक्रम भी हुआ। एक श्रोता ने पूछा, 'क्या आप प्रेसिडेंट ट्रूमन को समाजवादी मानते हैं?' 'ट्रूमन मेरे प्यारे नेताओं में से एक हैं। परंतु वे समाजवादी कतई नहीं हैं।' लोहिया ने उत्तर में कहा। इस पर प्रश्नकर्ता ने प्रतिप्रश्न किया क्या आप ट्रूमन को भारत में ले जाएंगे? जरूर ले जाइए, हमें कोई एतराज नहीं होगा।' लोहिया ने हंसकर कहा, 'ट्रूमन को तो मैं नहीं ले जाऊंगा लेकिन अगर आप जवाहरलालजी को चाहते हैं तो उन्हें यहां जरूर भिजवाऊंगा।' लोहिया की बात पर एक श्रोता ने टिप्पणी की। 'अपने देश की अपनी ही सरकार पर आप इस तरह टिप्पणी कैसे और क्यों करते हैं?' लोहिया का तुरंत उत्तर था, 'मेरी सरकार? वर्तमान भारतीय सरकार से मेरा कोई संबंध नहीं है, देश अवश्य मेरा अपना है और इसीलिए वर्तमान सरकार को पदच्युत करने के लिए मैं एड़ी-चोटी का पसीना एक कर रहा हूं।' इसी दरम्यान किसी ने लोहिया की जाति भी पूछ ली।

मेरियन जंक्शन के कार्यक्रम की समाप्ति पर यहां के, स्थानीय निवासी स्पीअर्स रंडेल,

जो बुजुर्ग और समझदार व्यक्ति थे, बोले, 'आज तक यहां जितने भी नेता आए उन सब में सबसे तेजस्वी वक्ता तो यही रहे हैं।'

नौक्स वैली में टेनेसी वैली प्रकल्प के कार्यालयीय अधिकारियों से भेंट के इरादे से लोहिया को कार्यालय में ले जाया गया था। चर्चा के सिलसिले में एक अधिकारी अमेरिकी स्वाधीनता के घोषणापत्र का अभिप्राय लोहिया को समझाने लगा। लोहिया ने उसकी तमाम बातों को धैर्य से सुना। जब वे कार्यालय से निकल पड़े तब साथ के युवा मित्र से बोले, 'अच्छा हुआ ! अमेरिकी नौकरशाहों से मिलना संभव हुआ !'

लोहिया नोरिस बांध देखने पहुंचे थे। यहां के विश्रामगृह में आपके निवास की व्यवस्था की गई थी। विश्रामगृह में काले वर्ण वाले और गोरे वर्ण वाले अतिथियों के लिए अलग-अलग व्यवस्था की गई थी। लोहिया ने यहां रहने के लिए मना कर दिया।

जब लोहिया वाशिंगटन पहुंचे तब आपकी अगवानी के लिए अमेरिकी संसद के कुछ सदस्य, सरकारी अधिकारी, अरब समाजवादी, विद्यार्थी और भारतीय राजदूतावास के कुछ अधिकारी हवाई अड्डे पर उपस्थित थे। दूतावास के किसी अधिकारी ने लोहिया तक यह संदेश पहुंचाया कि भारतीय राजदूत आपसे भेंट करना चाहते हैं। इस पर लोहिया ने कहा, 'उनसे मेरा नमस्कार कहें और यह भी कहें कि उन्हें और उनके मालिकों को अभी शिष्टाचारों को सीखने की आवश्यकता है।' लोहिया के समूचे दौरे की जानकारी भारतीय दूतावास को पहले ही दी जा चुकी थी। परंतु लोहिया जैसे विरोधी दल के वरिष्ठ नेता के कार्यक्रमों में भारतीय दूतावास से कोई सहयोग प्राप्त नहीं हुआ था।

वाशिंगटन में मजदूर नेताओं के साथ विचार-विमर्श के साथ साथ प्रकट सभाएं भी संपन्न हुईं। अमेरिकी विदेश मंत्रालय के अधिकारियों के साथ भी लोहिया ने बातचीत की। हार्वर्ड विश्वविद्यालय में भी लोहिया का भाषण हुआ। लिंकन और जेफर्सन के समाधि-स्थलों को भेंट देने का महत्वपूर्ण कार्यक्रम भी किया गया।

वाशिंगटन के दौरे के बाद लोहिया पुनः एक बार न्यूयार्क आए। उस समय आपने गांधीजी की जीवनी के प्रख्यात लेखक लुई फिशर, प्रसिद्ध उपन्यासकार पर्ल बक, रिचर्ड वाल्श, प्रसिद्ध समाजवादी नेता सिडने हार्डस वर्ग के साथ मुलाकात की। अमेरिका के दिवंगत भूतपूर्व राष्ट्राध्यक्ष रूजवेल्ट की पत्नी श्रीमती एलिनार रूजवेल्ट से बड़ी मिन्नत के साथ आपने भेंट की।

लोहिया की पुरानी और दीर्घ प्रतीक्षित इच्छा थी कि प्रसिद्ध वैज्ञानिक अल्बर्ट आइन्स्टिन से मुलाकात करने की। विश्व सरकार संस्थान के नेता स्ट्रींग फेलो बार के प्रयत्नों से मुलाकात पहले ही निश्चित कर ली गई थी। आइन्स्टिन से मिलने जब लोहिया टैक्सी में जा रहे थे तब उन्होंने ड्राइवर से कुतूहलवश पूछा, 'क्या आप नेहरूजी को जानते हैं?' ड्राइवर ने तपाक से उत्तर दिया, 'नहीं तो ! क्या किसी राजदूत का नाम है नेहरू?' ड्राइवर गांधीजी को जानता था और यह भी जानता था कि लंगोटी लगाकर, उपोषण करते हुए अंग्रेजों के साथ गांधीजी लड़े थे और उनकी हत्या हुई थी। लोहिया ने अपने साथियों

से कहा, 'देखा आप लोगों ने ! साधारण जन राजनीतिज्ञों को याद नहीं रखते, उन्हें स्मरण आते हैं गांधीजी !'

आइन्स्टिन और लोहिया की चर्चा बड़ी लंबी चली और खूब रोचक भी रही। आरंभ में थोड़ी देर के लिए दोनों ने जर्मन भाषा में बातचीत की और बाद में बैठक में उपस्थित जनों की सुविधा के लिए दोनों ने शेष वार्तालाप अंग्रेजी में किया। जब जब वर्तमान विकृत मानवता का संदर्भ उठता था दोनों सहसा गंभीर होते थे। बीच बीच में थोड़ा सा हंसी मजाक होता तब तनाव ढीला भी पड़ता था। आइन्स्टिन ने बड़ी उत्सुकता के साथ भारतीय राजनीति और समाजवादियों के भावी कार्यक्रमों को समझ लिया। जमींदारी प्रथा को समाप्त करने और जमीन के न्यायोचित पुनर्वितरण के उपक्रम आइन्स्टिन को बहुत ही स्वागतार्ह लगे। जमींदारों को नुकसान भरपाई न देकर पुनर्वसन के लिए आर्थिक सहायता देने की कल्पना को सुनकर आइन्स्टिन ने पूछा, 'अच्छा ! यह तो बहुत ही अच्छी बात है, फिर नेहरू ने इसे क्यों नहीं लागू किया?' लोहिया ने कहा, 'यह तो मुझे मालूम नहीं ! कुछ लोग अच्छा बोलते हैं, लिखते भी बहुत अच्छा हैं परंतु उनके काम बिलकुल गलत और विपरीत भी होते हैं। जब नेहरू पर एक बहुत अच्छा सवार बैठा था तब तो वे उमदा घोड़े की भांति बहुत अच्छे और तेज दौड़ रहे थे परंतु जैसे ही सवार उतर गया ......' इस पर आइन्स्टिन मुक्तभाव से खिलखिलाकर हंस दिए।

लोहिया की चौखंभा शासन और छोटे यंत्रों की कल्पना तो आइन्स्टिन का बहुत ही भाई। बातों बातों में लोहिया ने कहा कि 'अमेरिकी लोगों की अपेक्षा यूरोपीय जन अधिक सुसंस्कृत हैं ऐसा तो मुझे कभी नहीं लगा !' आइन्स्टिन जर्मन अर्थात यूरोपीय थे, शायद इसीलिए लोहिया के मंतव्य से लगा कि व्यथित हो गए। उन्होंने पूछा, 'आप ऐसा किस आधार पर कहते हैं ?' लोहिया ने कहा, 'यूरोपीय संस्कृति की स्वाभाविक परिणति अमेरिका है। परंतु आज यूरोपीय जन अमेरिका के कट्टर विरोधी, विद्वेषक बन गए हैं।' 'अच्छा अच्छा !' आइन्स्टिन ने समझदारी के भाव से कहा, 'तो यह है आपका मतलब ! अब समझा ! आपने कुछ अनोखी और स्वतंत्र प्रजा पाई है !' लोहिया ने थोड़ा-सा रुक कर पूछा, 'एक प्रश्न करूं ? मैं यहां आपसे कुछ सीखने के इरादे से आया हूं। जब मैं बर्लिन में था तब मैं यही कहता था कि हमारे युग में वे ही विचार हमारे सामने उभरकर आए—महात्मा गांधी और अणुशक्ति ! गांधीजी तो अब नहीं रहे और आपका अणु अनुसंधान तो आज मौत का पर्याय बना हुआ है। इस गलाघोटूं मगरमच्छ की जकड़ की लाचारी से आखिर इंसान की मुक्ति होगी तो कैसे, किस उपाय से होगी? इस नए दौर में हम चाहते हैं ऐसी नई निष्ठा जो हमारी बुद्धि को मुक्त कर सके, क्या आप हमें कोई उपाय बताएंगे ?'

बिदाई के समय आइन्स्टिन ने कहा, 'कितना अच्छा लगता है, इंसान से भेंट करने पर ! वरन मनुष्य कितना अकेला रह जाता है !'

न्यूयार्क में उदारमतवादी कतिपय विचारकों से भी लोहिया की चर्चा हुई। 'संडे रिव्यू'

के संपादक कजिन्स ने पूछा, 'हमने सुना था कि द्वितीय महायुद्ध में आप जापानियों के पक्षधर थे ?' इस पर लोहिया थोड़े से क्षुब्ध हुए, इसलिए कि वे यह नहीं समझ पाए कि अपने बारे में इस तरह की गलत-सलत बातों और अफवाहों को कौन फैलाता होगा ?'

लोहिया ने न्यूयार्क में विश्व सरकार संस्थान की सचिव और प्रमुख दार्शनिक श्रीमती बुकानीन से भी भेंट की। श्रीमती बुकानीन ने एक मजेदार हकीकत सुनाई, 'कारखाने में बनी डबल रोटी से तंग आई एक महिला ने अपने हाथों आटा गूंथकर डबल रोटी बनाई और उसे बेचने भी लगी। देखते ही देखते उसकी बनाई डबल रोटी बहुत जनप्रिय हो गयी और विकेंद्रित उत्पादन का नया उपक्रम न्यू इंग्लैंड में चल पड़ा।' लोहिया की खुली प्रतिक्रिया थी, 'चलो ! यह तो अच्छा रहा कि कम से कम एक मामले में तो केंद्रित उत्पादन का खोखलापन सिद्ध हुआ !'

न्यू हैमशायर में युनिटेरियन जनता के विश्व सरकार अधिवेशन में भी लोहिया का भाषण हुआ। भाषण के उपरांत रात में बातों बातों में कुछ मित्रों ने लोहिया से सवाल किया, 'क्या नेहरू के प्रति आप का गुस्सा उनके प्रति होनेवाले आपके स्नेह को ही नहीं दर्शाता ?' लोहिया ने अर्ध सहमति में गर्दन हिलाते हुए कहा, 'मैं अपने जीवन में दो व्यक्तियों से बहुत प्रभावित हुआ हूं, आप लोगों को विश्वास नहीं होगा शायद, लेकिन अगर पंडितजी आज हमारा पूरा कार्यक्रम स्वीकार कर उस पर अमल करने की हामी भर देंगे तो मैं सारी पुरानी बातों और गुस्से को छोड़कर उनका सबसे पहला समर्थक बनने को तैयार हूं।'

सैन फ्रैन्सिस्को के आकाशवाणी केंद्र ने 'नगर सभा' कार्यक्रम के अंतर्गत लोहिया का भाषण आयोजित किया था। नगर सभा के इस कार्यक्रम में सात हजार श्रोता उपस्थित थे और आकाशवाणी केंद्र से भाषण, सीधे प्रसारित किया गया था। लगभग पचास लाख अमेरिकी जनता ने लोहिया का भाषण सुना होगा। लोहिया ने अपने वक्तव्य में मानव मात्र के उन सारे प्रयत्नों पर टिप्पणी की जो उच्च से उच्चतर और उच्चतर से उच्चतम जीवनमान पाने के इरादे से यह कर रहा है, उन्होंने कहा, 'आज ये सारे जन फर्नीचर और कालीनों के गुलाम बन गए हैं, बेचारी गृहिणियां घर की देखभाल करने और उसकी सफाई में जोती गई हैं इन्हें देखकर पता नहीं होता कि फर्नीचर के लिए गृहिणियां हैं या गृहिणियों के लिए फर्नीचर !' तालियों की गूंज से श्रोताओं ने दाद दी।

रोटी पहले या स्वाधीनता पहले ? इस प्रश्न की निरर्थकता का संकेत करते हुए लोहिया ने उन पाश्चात्य लोकतंत्रवादी राष्ट्रों की नीति पर टिप्पणी की जो यह बताती हैं कि एशिया के निवासियों के लिए रोटी का महत्व अधिक है, लोहिया की मान्यता है कि रोटी और स्वाधीनता परस्पर अभिन्न हैं, रोटी के बिना स्वाधीनता और स्वाधीनता के बिना रोटी दोनों ही परस्पर असंगत हैं और इसीलिए निरर्थक भी हैं। लोहिया ने आगे यह भी कहा कि 'कम से कम एशिया और अफ्रीका की जनता के लिए न पूंजीवाद रोटी और स्वाधीनता दे पाएगा और न कम्युनिज्म ! हमारी नजरों में हेन्रीफोर्ड जितने अप्रस्तुत हैं उतने ही अप्रासंगिक जोसफ स्टालीन हैं।' जो आर्थिक सहायता अमेरिका एशियायी देशों,

को दे रहा था उसे लक्ष्य करते हुए लोहिया ने कहा, 'अपने स्वार्थ-संबंधों की सुरक्षा के लिए अमेरिका एशिया में अपना धन उलीचता जा रहा है। अगर अमेरिका इसी तरह एक तरफा रिश्ते का हिमायती रहना चाहे तो बेहतर होगा कि अपना धन व्यर्थ न गंवाए।'

न्यूयार्क में विश्व नागरिक संस्थान के गैरी डेविस ने लोहिया को विश्व नागरिकत्व का अधिकारपत्र प्रदान किया।

समाजवादी नेता नार्मन टामस ने न्यूयार्क में लोहिया के कई कार्यक्रमों का आयोजन किया था। टामस और विंकोबार की ओर से स्वागत में किए गए वक्तव्य के उत्तर में लोहिया ने कहा कि 'एशिया के पूंजीवादियों की अपेक्षा आप लोग मेरे लिए अधिक अपने लगते हैं !'

न्यूयार्क टाइम्स के संपादक मैथ्यूज और किसी जमाने के ट्राटस्कीवादी क्रांतिकारी मैक्स जैफर्सन के साथ हुई बातचीत में लोहिया से यह पूछा गया कि 'आप लाल टोपी क्यों नहीं पहन लेते ?' लोहिया का तुरंत उत्तर था, 'लाल टोपी से मुझे घृणा है, हमारी दुर्बलता का ठोस प्रमाण लाल टोपी है, इस टोपी के कारण भी नए तरीके का भ्रष्टाचार पनप सकता है। मैं चाहता हूं हमारा प्रतीक लाल टोपी नहीं बल्कि फावड़ा बने !'

अमेरिका के प्रभावशाली मजदूर नेता, रुथर-बंधुओं के साथ की गई चर्चा से लोहिया को विश्वास हुआ कि अमेरिकी समाजवादियों की यह धारणा है कि समाजवाद की प्रगति जितनी गरीब राष्ट्रों में हो सकती है उतनी अमीर राष्ट्रों में नहीं और अमेरिका की समृद्धि के कारण ही अमेरिका में समाजवाद कुंठित हो गया है। इस कुंठा के प्रत्युत्तर में लोहिया का निवेदन था कि, 'इस तरह निराश होने से काम नहीं बनेगा, अगर आपकी धारणा सही होती, तो सोचिए थोड़ा-सा कि मैं समाजवादी क्यों बना ?'

शिकागो के दौरे में लोहिया ने विद्यार्थियों की दो सभाओं को संबोधित किया। मैडिसन में डोमिके पति-पत्नी के साथ बतलाते हुए लोहिया ने सहज भाव से पूछा 'क्या आप यह कहेंगे कि अमेरिकी जनता को पच्चीस साल पहले तो यह लगता था कि ज्यादा बच्चे नागवार हैं लेकिन आज ऐसा नहीं लगता, आखिर इसका क्या कारण हो सकता है ?' उत्तर में कहा गया कि 'यथार्थ जीवन को स्वीकार करने का ही यह एक तरीका है !'

विस्कान्सिन के विज्वर रैंक की खेतीबाड़ी पर भी लोहिया पहुंचे थे, पच्चीस सौ एकड़ की वह बाड़ी थी और रैंक ने दस हजार डालर्स की लागत से खेती की थी, अपने कर्तृत्व पर गंभीरतापूर्वक रैंक ने निवेदन किया कि, 'कभी कभार लगता है कि पचास एकड़ की ही खेती होती तो बहुत अच्छा हो जाता !' विशाल जमीन के मालिक के कथन पर लोहिया बहुत खुश थे क्योंकि उन्हें जिस तरह उद्योगों के क्षेत्र में केंद्रित और प्रचंड उत्पादन का प्रयोग पसंद नहीं था उसी तरह खेती के काम में भी ! नार्थ डकोटा के कतिपय खेतीबाड़ियों और उनके जमींदार मालिकों को देखने पर लोहिया ने स्पष्ट शब्दों में खतरे का संकेत दिया, 'प्रचंड उत्पादन प्रणाली के कारण निर्माण होनेवाले दोषों-त्रुटियों की ओर ध्यान दिया जाना चाहिए, उन्हें अलक्षित न करें !'

लोहिया कलमारी में प्रख्यात भारतीय क्रांतिकारी तारकनाथ दास से भेंट करने पहुंचे थे। विगत कई दशकों से दासजी अमेरिका में निर्वासित जीवन बिता रहे थे। भारत-पाक विभाजन पर दासजी को गहरा दुःख था और उन्होंने तय किया था कि स्वतंत्र लेकिन विभाजित भारत में लौटकर नहीं जाएंगे।

वायोमिंग के दौरे पर विश्व नागरिक संस्थान की समर्थक श्रीमती फेनी शाफर ने लोहिया से कहा कि, 'अमेरिकी मकानों में तरण-तालाबों का होना निहायत जरूरी है !' लोहिया ने छूटते ही कहा कि 'अगर यह होगा तो तालाबों के मालिक और बगैर तालाबों वालों में वर्गयुद्ध छिड़ जाएगा !'

असलीयार की यात्रा में आई0 एल0 ओ0 की ओर से मजदूरों की सभा में लोहिया का भाषण आयोजित किया गया था। सभा के पूर्व वहां के संचालक महोदय ने संकेत दिया कि समाजवाद के सिलसिले में लोहिया कुछ न कहेंगे तो अच्छा रहेगा। लोहिया ने साफ साफ मना ही नहीं किया बल्कि अपने वक्तव्य में आपने आह्वान किया कि 'गौर वर्णियों को चाहिए कि वे वंशभेद के विरुद्ध सत्याग्रह करें।' इसी दरम्यान सिसरो नामक गांव में एक घटना हुई थी उसका उल्लेख करते हुए लोहिया ने कहा कि, 'नार्वाक अमरीकी आत्मा का मूर्त रूप है और विश्वनागरिक के नाते मुझे उस पर गर्व है !' हुआ यह था कि सिसरो गांव में गौरवर्णियों ने एक नीग्रो परिवार पर हमला कर लूटपाट की थी तब पड़ोसी गांव नार्वाक के निवासी गौरवर्णियों ने सिसरो के नीग्रो परिवार को अपने गांव में आकर बसने का आमंत्रण दिया था।

अमेरिका के दौरे का आखिरी कार्यक्रम स्टैनफोर्ड विश्वविद्यालय के प्राध्यापकों और विद्यार्थियों को संबोधित करने का था। सभी लोग लोहिया के वक्तव्य से बहुत प्रभावित थे। एक युवक ने अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की, 'विगत कई वर्षों से मैं अमेरिकी राजनीतिज्ञों को आस बांधे देख रहा हूं ! काश ! एक भी अमेरिकी राजनैतिक नेता आपकी तरह बोले! मुझे ऐसे अमेरिकी नेता पर बड़ा गर्व होगा ! लेकिन क्या करें !' सभा के बाद हुए प्रश्नोत्तर कार्यक्रम में किसी ने यह जिज्ञासा प्रकट की, 'इन परिस्थितियों में आप को क्या लगता है कि अमेरिका क्या करे ?' लोहिया ने कहा कि 'अमेरिका को निर्भय होना चाहिए ! अगर रूस के पास बंधी मुट्ठी है तो अमेरिका को यह नहीं भूलना चाहिए कि उसके पास लंबी और दृढ़ भुजाएं हैं।'

बर्कले के समाजवादी मित्रों के साथ बातचीत करते हुए लोहिया ने अमेरिकी समाजवादियों के भावी कार्यक्रमों का संकेत किया, 'अगर मैं अमरीकी समाजवादी होता तो आरोग्य की समस्या का मैं सामना करता, वर्णभेद का कड़ा परंतु शांतिपूर्वक प्रतीकार करता और विदेशी राजनीति के प्रश्न को वरीयता के क्रम से प्राथमिकता देता ! युद्ध विनाश और नई जागतिक-अर्थव्यवस्था के साथ विदेश-राजनीति का तालमेल बिठाकर विश्व सरकार की अपनी मांग को उसमें समाविष्ट कर देता !'

फल और सागसब्जी की बड़ी बड़ी खेतियों, सेंट्रल वैली प्रोजेक्ट—जो अमेरिका का

सबसे बड़ा बांध-प्रकल्प था— को देखकर लोहिया हालीवुड पहुंचे। परंतु विश्वविख्यात अभिनेत्री ग्रेटागार्बो के दर्शन वे नहीं कर पाए क्योंकि तब ग्रेटागार्बो हालीवुड में नहीं थीं।

अमेरीका में अपनी आखिरी रात लोहिया ने अपने मित्रों के साथ इटालियन और चीनी क्लब में बातचीत में बिताई, यहां का बर्लेक्स नृत्य लोहिया को बहुत भाया था।

कुल मिलाकर 44 दिनों के अपने प्रदीर्घ अमेरिका-दौरे में लोहिया ने बीस प्रकट सभाओं में वक्तव्य दिए, सभावादी सदस्यों के साथ कई बैठके कीं, पत्रकारों के साथ छोटी-बड़ी संवाद-सभाएं कीं, कई लोगों-नेताओं से व्यक्तिगत वार्ताएं कीं, अमेरिकी आकाशवाणी से वक्तव्य प्रसारित किए, कई स्थानों की यात्राएं की। यह पहला प्रदीर्घ दौरा 20 अगस्त को पूरा हुआ। पूरे दौरे में आपने गांधी टोपी, नेहरू शर्ट, जाकिट और धोती पहनी। अपनी राष्ट्रीय पोशाक में लोहिया ने कुछ भी परिवर्तन नहीं किया था।

कई लोगों ने यह रंज व्यक्त किया कि अमेरिका की राजनीति में लोहिया जैसा समझदार नेता क्यों नहीं है ? अमेरिका के दौरे के बारे में अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए लोहिया ने कहा था कि 'जिस तरह अमेरिकी जनता के प्रति मेरे आकर्षण में वृद्धि हुई है उसी तरह आधुनिक विश्व संस्कृति को लेकर मेरी आशंका भी बद्धमूल हो गई है।'

बिदाई के अवसर पर अमेरिकी मित्रों ने सहज भाव से पूछा, 'लौटकर फिर कब आएंगे ?' लोहिया ने भी उतने ही सहजभाव से और तुरंत उत्तर दिया कि 'इस महान् देश में जब आप लोग उतना ही महान कार्य करेंगे तब अवश्य आऊंगा !'

अमेरिका के दौरे के बाद लोहिया ने क्रमशः जापान, हांगकांग, इंडोनेशिया, थाई देश, मलाया और श्रीलंका का भी दौरा किया।

जापान में सोशल डेमोक्रैटिक पार्टी के नेता हिरुपाडा के साथ लोहिया की बात चीत हुई। अपने संयुक्त निवेदन में दोनों ने लोहिया की अपनी विशिष्ट धारणा—तीसरी शक्ति और अविकसित राष्ट्रों के दो तिहाई संसार के विकास की विशिष्ट दिशा का उल्लेख किया था। निवेदन में इसके साथ यह मांग भी प्रस्तुत की गई थी कि द्वितीय महायुद्ध में पराजित जापान को वही दर्जा दिया जाना चाहिए जो संसार के स्वाधीन और स्वतंत्र राष्ट्रों का है। निवेदन में यह आशा भी व्यक्त की गई थी कि प्रगतिशील और समाजवादी जापान एशिया के अन्य राष्ट्रों को अपना अपना तंत्रविज्ञान विकसित करने के लिए आवश्यक न केवल अपना तंत्रज्ञान देगा बल्कि अन्य अपेक्षित सहायता भी करेगा और आवश्यक यंत्र सामग्री की आपूर्ति भी करेगा। अंत में दोनों नेताओं ने यह आह्वान किया था कि जापान की सोशल डेमोक्रैटिक पार्टी और भारतीय सोशलिस्ट पार्टी के संयुक्त तत्वावधान में एशियाई समाजवादी परिषद का आयोजन किया जाए।

जब लोहिया भारत में लौट आए थे तब जापान के प्रमुख समाजवादी नेता याशिका होशिनो का एक पत्र आपको मिला। अपने पत्र में होशिनो ने लिखा था कि 'मैं आपका ऋणी हूं। आपने हमें विकेंद्रीकरण का सबक सिखाया है। स्वाधीनता के सही मायने को हमारे सामने उद्घाटित किया है। मुझे लगता है कि विकासोन्मुख गांधीवाद के सही सही

उत्तराधिकारी आप ही हैं। अगर जापान विकेंद्रीकरण को स्वीकार नहीं करेगा तो अपने सहज, स्वाभाविक और असली व्यक्तित्व और पहचान को खो देगा। दूसरे शब्दों में यूरोप की नक़ल जापान में मिलेगी। अभी पता नहीं आपके विचारों को जापानी युवक कहां तक समझ और पचा पाया है !'

भारत लौटने से पूर्व हांगकांग में अपने विश्व भ्रमण का सारांश संवाददाताओं को बताते हुए लोहिया ने कहा था कि 'मैंने अहसास किया इस एक ही संसार में दो दो संसार बसे हुए हैं, एक संसार रोम से लेकर होनोलूलू तक का अपेक्षाकृत अधिक सुखमय और अच्छे खासे मकानों का है तो दूसरा संसार टोकियो से लेकर काहिरा तक का, जो भूख से पीड़ित, अधिकांश अस्वच्छ और जैसे-तैसे बने मकानों का है। इस संसार की गरीबी को हटाने के फिलहाल तीन उपाय हैं, जनसंख्या-नियंत्रण, उत्पादन के साधनों पर सामाजिक स्वामित्व, कम लागतवाली लेकिन कार्यक्षम ऐसे छोटे छोटे यंत्र जो अधिकांश जनता को रोजगार दिला सकें।

"अलग अलग रंग-रूप और आचार-व्यवहार जैसे छोटे छोटे कारणों से समूची मानव जाति अपने मूल और प्रमुख उद्देश्य से कोसों दूर चली गई है और रात तो गहरी अँधियारी है। अपने अन्य कार्यक्रमों के साथ साथ हमें ऐसा कार्यक्रम भी चाहिए कि जो विविध राष्ट्रों की जनता में अधिकाधिक सामाजिक अभिसरण करा सके और सांस्कृतिक समीपता को प्रस्थापित कर सके। हमारे लिए ऐसा जबरदस्त कार्यक्रम अब आवश्यक है।"

11

एशियाई समाजवाद : एक भ्रम

इन दिनों लोहिया के दिमाग में उन्हीं के शब्दों में 'टोकियो से काहिरा तक फैले दूसरे संसार की गरीबी की समस्या' व्याप्त थी। यूरोप के साम्राज्यवादी शिकंजे से अभी अभी मुक्त हुए राष्ट्रों की समस्याओं का स्वरूप लगभग एक-सा था। मुक्त हुए देशों में से अधिकांश एशियाई राष्ट्रों में कमोबेश शक्तिशाली समाजवादी समूहों का अस्तित्व तो था लेकिन आपसी संपर्कों की कमी थी और परस्पर जोड़ने वाले समान सूत्र का भी अभाव था।

पंडित जवाहरलाल नेहरू ने 1949 में इंडोनेशिया की स्वाधीनता का समर्थन करने के इरादे से दिल्ली में एक एशियाई सम्मेलन का आयोजन किया था। इसके लिए दिल्ली में पहुंचे इंडोनेशिया के समाजवादी नेताओं के साथ लोहिया ने बातचीत की और एशिया के समाजवादी-नेताओं के संगठन की आवश्यकता का प्रतिपादन किया। फिर पत्राचार और मेल-मिलाप के जरिए एशिया के समाजवादियों के साथ संपर्क किया गया और आखिर 1952 में रंगून में ब्रह्मदेश, भारत, पाकिस्तान, इंडोनेशिया, लेबनान तथा अंतर्राष्ट्रीय समाजवादी युवक संगठन के प्रतिनिधियों की प्रारंभिक बैठक का आयोजन संभव हो सका। जापान से दक्षिण पंथ के समाजवादी दलों के प्रतिनिधि निरीक्षक के नाते इस बैठक में उपस्थित थे। सब प्रतिनिधियों ने सर्वानुमति से फैसला किया कि 'एशियाई सोशलिस्ट सम्मेलन आयोजित किया जाए और सम्मेलन की पूर्व तैयारी के लिए एक समिति की नियुक्ति भी की गई।

इस समिति की बैठक यथाशीघ्र आयोजित की गई। लोहिया ने इस बैठक में एशिया के स्वाधीन राष्ट्रों की समस्याओं, उन्हें हल करने के उपायों, इस बारे में पूंजीवादी तथा कम्युनिस्ट विचार प्रणालियों की निरर्थकताओं और सार्थक समाजवादी दिशाओं और कार्यक्रमों का मूलभूत विवेचन और सविस्तार प्रतिपादन किया।

अपने विवेचन में लोहिया ने एशिया की राजनीति में निहित चार त्रुटियों का संकेत किया— 1. धर्म, जाति, वंश और भाषा का राजनीति में साधन-रूप में प्रयोग, 2. समग्र दृष्टि और विवेकशील आचार-विचार का अभाव, 3. कथनी प्रगतिशीलता की और करनी

प्रतिगामी-प्रतिक्रियावाद की और 4. यूरोपियों की, नकल उतारनेवाली महंगी पसंदगियों और आदतों में फंसे सफेदपोश मध्यवर्ग की राजनीति और नौकरशाही पर मजबूत पकड़।

राजनीति के प्रति सामान्य जनता की उदासीनता और उपेक्षा के कारणों का विवेचन करते हुए लोहिया ने कहा कि 'जनता का राजनीति से विश्वास इसलिए उठ गया है कि एशिया की राजनीति पर धर्म और वंश के विचारों का गहरा प्रभाव है तथा जिन नेताओं के प्रति जनता ने अपनी समस्त श्रद्धा समर्पित की थी उन्होंने ही अपने आचरण से जनता का विश्वासघात किया है।'

लोहिया की निश्चित धारणा थी कि एशियाई समाजवाद कोई संकुचित विचार नहीं है इसका अपना उद्देश्य भी व्यापक और वैश्विक होना चाहिए। अपनी बात को स्पष्ट करते हुए आपने कहा था कि 'एशियाई समाजवाद को यद्यपि स्थानीय परिस्थितियों के अनुकूल परंतु साथ ही ऐसी विश्वव्यापक विचारों की प्रणाली विकसित करनी चाहिए कि जिसमें राष्ट्र राष्ट्र के और राष्ट्र के अंतर्गत समता, समूचे विश्व का नागरिकत्व, विश्व संसद और विश्व सरकार की संकल्पना साकार होगी। यही प्रणाली संसार से भूख, गुलामी और युद्ध का अंत कर सकेगी। इसलिए जरूरी है कि एशिया और अफ्रीका के राष्ट्रों की मिलीजुली तीसरी शक्ति का उदय हो।'

प्रारंभिक बैठक के उपरांत प्रसारित संयुक्त निवेदन पर लोहिया के उक्त विचारों का गहरा प्रभाव था।

जनवरी 1953 में रंगून में ही एशियाई समाजवादी सम्मेलन का प्रथम आयोजन संपन्न हुआ। परंतु सम्मेलन के जनक लोहिया इसमें उपस्थित नहीं हो पाए थे। कई नेताओं ने इस पर आश्चर्य व्यक्त किया; वाकया यों था कि दक्षिण और उत्तर कोरिया में जारी युद्ध में समाजवादियों को इसलिए तटस्थ रहना चाहिए कि प्रस्तुत युद्ध अमेरिका और रूस के बीच चल रहे सत्ता-संघर्ष की प्रतिक्रियात्मक पहल है ऐसी लोहिया की शुरू से धारणा थी और जयप्रकाश नारायण ने इसी को ललकारा था; अमेरिका के प्रभाव में काम करनेवाले संयुक्त राष्ट्र संघ का प्रस्ताव था कि उत्तर कोरिया के विरोध में सैनिकी कार्यवाही की जाय, और नेहरू सरकार ने इसका समर्थन किया था और जयप्रकाश नारायण ने इसी में अपनी 'हां' मिला दी थी। संभव है कि भारतीय समाजवादियों के आंतरिक मतभेदों का खुला प्रदर्शन रंगून अधिवेशन में न हो इसलिए लोहिया अनुपस्थित रहे होंगे।

रंगून पहुंचे, भारतीय समाजवादी दल का नेतृत्व जयप्रकाश नारायण ने किया था। अधिवेशन में लोहिया द्वारा उठाए गए तीसरी शक्ति के मुद्दे पर गंभीरता के साथ विचार नहीं किया गया। कारण साफ था, एशिया में नेहरू के अनुकूल विचार करनेवाले प्रतिनिधियों का बहुमत था और अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में अमेरिका के कायल इजराइल, ब्रह्मदेश, इंडोनेशिया आदि के प्रतिनिधियों का बहुमत था।

लोहिया को घोर निराशा हुई। लेकिन सम्मेलन से संबंध विच्छेद कर लेना उन्होंने उचित नहीं समझा। सम्मेलन ब्यूरो की कालाव में आयोजित बैठक में आप उपस्थित थे।

लोहिया की ओर से प्रस्तावित अमेरिकी-अटलांटिक गुट के हित संबंधों के विपरीत पड़ने वाले और इसीलिए खतरनाक, हर प्रस्ताव और सुझाव का ब्यूरो के सदस्यों ने जमकर विरोध किया। लोहिया के उन सुझावों का भी विरोध किया गया जिनमें संयुक्त राष्ट्र संघ में चल रही एकाधिकारशाही को मात दी जा सके, जिसके तहत अमेरिका और रूस के सत्ता संघर्ष में सामुदायिक संरक्षण करार के बहाने कमजोर राष्ट्रों के अपने अपने अनुकूल गुट बनाने के प्रयत्नों को मात दी जा सके, आदि का समावेश था। इससे लोहिया को परिस्थितियों को समझने में विलंब नहीं लगा, उन्होंने पाया कि भारत, पाकिस्तान, ब्रह्मदेश, इंडोनेशिया आदि प्रमुख राष्ट्रों की समाजवादी पार्टियां बुरी तरह अमेरिका के अधीन हो गई हैं और अंतर्राष्ट्रीय समाजवाद का जिस तरह दिवाला पिट गया है उसी तरह एशियाई समाजवाद का भी दिवाला पिट चुका है। एशियाई समाजवादियों का अस्तित्व नकल उतारने वाले वानर जितना भर है जो यूरोपीय समाजवाद की आज नकल उतार रहा है। लोहिया को दृढ़ विश्वास हुआ कि एशिया के समाजवादियों से कुछ नवीन करने-कराने की उम्मीद पालना रेत में पानी देने की भांति निरर्थक है।

दोनों सत्ता गुटों से अपने को मुक्त कर तीसरी स्वतंत्र शक्ति संगठित करने के लिए आवश्यक स्वतंत्र और वैचारिक अधिष्ठान को विकसित करने की समाजवादियों की अनिच्छा के कारण एशियाई समाजवादी आंदोलन धीरे धीरे मृतप्राय होता गया। लोहिया को अभिप्रेत एशियाई समाजवादी संगठन की कल्पना हमेशा के लिए अमूर्त रह गई। आगे चलकर उसके साकार होने की सारी उम्मीदें तबाह हो गईं।

आगे चलकर 1962 में लोहिया ने स्वीकार किया कि इस तरह के संगठन की कल्पना करना निरर्थकता के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। यह दुराशा मात्र है कि समान परिस्थितियों और समान वर्ण के गोरे देश या गौरेतर देश समान उद्दिष्टों की परिपूर्ति के लिए एकत्रित होंगे।

12

समाजवाद के नए दर्शन

लोहिया ने जिस तरह यह अनुभव किया कि अपनी कल्पना की एशियाई समाजवादी संगठन की निर्मिति असंभव है उसी तरह इसका भान भी उन्हें हुआ कि भारतीय समाजवादी पार्टी में उस वैचारिक स्पष्टता व एकता, निष्ठा और सामर्थ्य की कमी है जो एशियाई समाजवादी संगठन का नेतृत्व कर सके। लोहिया को बड़ी तीव्रता के साथ यह अहसास हुआ कि अपनी पार्टी की राजनीति सही दिशा के अभाव में भटक गई है।

राज्यों की विधान सभाओं और केंद्रीय लोकसभा के लिए आम चुनाव 1952 में पहली बार किए गए। समाजवादी नेताओं का विश्वास था कि कम से कम दो राज्यों में अपनी सरकार बनाने लायक और संसद में प्रमुख विरोधी दल के रूप में उभरने लायक स्थिति वे प्राप्त करेंगे। परंतु चुनाव परिणामों को जब घोषित किया गया तब बात स्पष्ट हो गई कि समाजवादियों का यह स्वप्न साकार नहीं हो पाया। इसका विपरीत परिणाम जितना कार्यकर्ताओं पर नहीं हुआ उतना समाजवादी नेताओं पर हुआ, वे मोहभंग के कारण निराश हो गए। इस हादसे से ये नेता फिर कभी उबर नहीं पाए। ज्येष्ठ नेताओं में लोहिया और नरेंद्रदेव अपवाद सिद्ध हुए, इन्होंने कभी जिद्द नहीं छोड़ी। अपनी पार्टी की हार पर टिप्पणी करते हुए लोहिया बोले, 'वास्तव में जो पक्ष जीवंत और जीवट है वह पांच वर्षों की अवधि की समाप्ति की प्रतीक्षा नहीं करता, अगर समाजवादी पार्टी अपना संघर्ष का कार्यक्रम जारी रखेगी तो अवधि-समाप्ति से पहले ही वह सरकार को पराजित कर सकती है।'

चुनावों से पहले, पार्टी के दो वरिष्ठ नेता और अगस्त क्रांति के अध्वर्यु अच्युत पटवर्धन और अरुणा आसफअली ने पार्टी छोड़ दी थी, अन्य लोकप्रिय नेता युसुफ मेहरअली कालवश हुए थे, इन हादसों से पार्टी थोड़ी-बहुत संभल पाई थी कि चुनाव-पराभव का कमरतोड़ हादसा झेलना पड़ा।

इस पृष्ठभूमि पर पार्टी का पचमढ़ी (मध्य प्रदेश) में अखिल भारतीय अधिवेशन, मई 1952 में आयोजित किया गया था। अध्यक्ष पद के लिए लोहिया का चुनाव किया गया था। कांग्रेस से अलग होकर स्वतंत्र कार्यक्रम जारी करते हुए चार साल बीत चुके

थे। बावजूद इन सबके समाजवादी पार्टी जनमानस पर कांग्रेस से अलग पार्टी के रूप में अपना प्रभाव नहीं छोड़ पाई थी। सुस्पष्ट राजनैतिक-दर्शन प्रणाली, साफ साफ उद्देश्य और नीति, ठोस कार्यक्रम और कार्यक्षम संगठन, का अभाव समाजवादी पार्टी में था। चुनाव में घोर पराजय का कारण यही था।

लोहिया, पार्टी में सुस्पष्ट, मौलिक और दृढ़ विचारों वाले जबरदस्त नेता की प्रतिमूर्ति थे, इसलिए लोहिया के अध्यक्षीय वक्तव्य को लेकर पार्टी कार्यकर्ताओं में बहुत उत्सुकता थी।

लोहिया ने अपने प्रदीर्घ वक्तव्य में 'समाजवाद के नवदर्शन' का विस्तृत विवेचन किया और इसी नाम से यह प्रसिद्ध भी है। लोहिया ने अपने भाषण में समाजवाद के विश्व व्यापक उद्देश्यों का भान रखते हुए भारत के संदर्भ में समाजवाद की पुनर्व्याख्या प्रस्तुत की थी। 1936 से 1952 तक किए गए अखंड चिंतन की सुबद्ध, सुसूत्र और साकार प्रतीति लोहिया के प्रस्तुत वक्तव्य से हुई थी। इसीलिए समाजवादी साहित्य में प्रस्तुत भाषण मील के पत्थर का महत्व रखता है।

अपने भाषण के आरंभ में लोहिया ने कहा कि 'वर्तमान युग में समाजवाद ही आशादीप का काम कर सकता है।' अपनी अडिग श्रद्धा व्यक्त करते हुए उन्होंने कहा कि 'पूंजीवाद और कम्युनिज्म में विभाजित वर्तमान संसार में समाजवाद को अपनी तात्विक और वैचारिक प्रणाली का निर्माण करना चाहिए, यह काम अभी नहीं हुआ है।'

'कम्युनिजम से आर्थिक और पूंजीवाद से उदारमतवाद को लेकर आज तक तो समाजवाद का गुजारा जैसे तैसे हो गया लेकिन अब समाजवाद को अपने मौलिक चिंतन और तात्विक प्रणाली की आवश्यकता है।'

पूंजीवादी और कम्युनिज्म पर 'मूले कुठाराघात' करते हुए लोहिया ने कहा कि, 'पूंजीवाद और कम्युनिज्म एक सिक्के के दो पहलू हैं। एक ही संस्कृति के दो रूप हैं ये दोनों वाद ! दोनों का उत्पादन तंत्र एक है और दोनों प्रणालियों की महत्वपूर्ण समानता है कि दोनों ही लगातार उच्चतम जीवनमान के आकांक्षी हैं।'

' यह सही है कि पूंजीवादी अर्थ व्यवस्था और कम्युनिस्ट-तानाशाही का समाजवादी सतत विरोध करते आए हैं, तथापि यह भी उतना ही सही है कि दोनों विचार प्रणालियों में निहित केंद्रित औद्योगीकरण का आकर्षण भी समाजवादियों को बराबर रहा है।'

'एशिया के राष्ट्रों में विपुल जनसंख्या है और उत्पादन के साधन अल्प और अविकसित हैं इसलिए पूंजीवादी और कम्युनिस्ट प्रणाली में अभिप्रेत केंद्रित उत्पादन की व्यवस्था एशिया के देशों की दृष्टि से निरुपयोगी है।' अपने सिद्धांत का प्रतिपादन करते हुए लोहिया ने भावी प्रणाली का संकेत करते हुए कहा कि 'एशियाई देशों को चाहिए कि वे अब उत्पादन के उस तंत्र को विकसित करें जो नवीन स्वामित्व के अधिकारों के सुसंगत हो;' अर्थात तंत्र और स्वामित्व, दोनों की नवीन प्रणाली की तलाश करने का परामर्श आपने दिया है। अपनी बात को स्पष्ट करते हुए लोहिया ने कहा कि 'बिजली और डीजल पर चलने वाले उत्पादनक्षम और कार्यक्षम छोटे छोटे यंत्र जब उत्पादन तंत्र का आधार बनेंगे

तब वे न केवल अविकसित देशों की समस्याओं के समाधान बनेंगे बल्कि इनके कारण समाज की सृजनशीलता और उपक्रमशीलता में भी वृद्धि होगी।'

साध्य और साधनों के अटूट संबंधों की व्याख्या करते हुए लोहिया ने कहा कि 'यह मानना न केवल अनुचित बल्कि गलत भी है कि कल के जनतंत्र के लिए आज तानाशाही को झेला जाए, कल के विश्वैक्य के लिए आज राष्ट्रीय स्वातंत्र्य पर होने वाले आक्रमण को सहा जाए, तथा अंतिम सत्य की स्थापना के लिए आज असत्य का प्रयोग उचित और आवश्यक समझा जाए।' लोहिया ने प्रत्यक्षानुभूति के उस सिद्धांत का प्रतिपादन किया जिसमें कल जिसे साध्य करना है उससे आज साक्षात्कार करने की बात स्वीकार की गई है।

समाजवाद के लिए हिंसात्मक मार्गों का सरासर धिक्कार करते हुए लोहिया ने सत्याग्रह और सविनय अवज्ञा के तत्वों का जोरदार समर्थन किया। उन्होंने कहा कि 'मत या गोली ?' यह सवाल इसलिए बेमानी है कि हमें पूछना चाहिए कि 'गोली या सत्याग्रह?' सिर्फ जेल भर देने से समाजवाद नहीं सिद्ध होता, मतपेटी मात्र से भी समाजवाद नहीं आएगा और न केवल फावड़ा अंकित करने से भी। तीनों को एक साथ चलना होगा। इसे बताते हुए लोहिया ने जेल, मतपेटी और फावड़े का त्रिसूत्री कार्यक्रम समाजवादियों के सम्मुख पेश किया।

'समाजवाद की खरतर और कष्टमय प्रदीर्घ यात्रा से ही मानव मात्र की दुर्गति और पराधीनता से मुक्ति होगी' इस विश्वासपूर्ण कथन के साथ लोहिया ने समाजवादियों का आह्वान किया कि 'समाजवादियों को न पूंजीवाद की पूंछ बनकर मार्गक्रमण करना है और न कम्युनिज्म के सहयात्री बनकर, अपना मार्ग अपने फावड़े से बनाना है !'

छुटपुट प्रतिक्रियाएं प्रतिकूल थीं परंतु सम्मेलन में उपस्थित अधिकांश कार्यकर्ता-प्रतिनिधि लोहिया के सम्यक विचार दर्शन की सुसूत्रता से प्रभावित थे। 'एक महान विचार यज्ञ' और 'नवविचारों की अभिजात सृष्टि' जैसे अर्थपूर्ण शब्दों में जयप्रकाश नारायण ने प्रशंसा की, लेकिन अशोक मेहता की प्रतिक्रिया जरा-सी चौकस और सतर्क-सी थी, उन्होंने कहा, 'लोहिया का भाषण समाजवाद के मार्ग पर निर्णायक मोड़ उपस्थित करने वाला है। पोथीनिष्ठ मार्क्सवादी विचारों को लोहिया ने ललकारा था वह अन्य मार्क्सवादी समाजवादियों की भांति नरेंद्रदेव को भी नहीं भाया। उन्होंने कहा कि 'हमें मार्क्सवादी कहलाने में जरा भी हिचक नहीं होनी चाहिए क्योंकि हमारे चलाए ही मार्क्सवादी सही रास्ते पर चल रहे हैं'।

इन छुटपुट प्रतिकूल प्रतिक्रियाओं को अगर एक ओर कर दें तो यह तय है कि पचमढ़ी के अधिवेशन में समाजवाद के विश्वव्यापक उद्देश्यों का भान रखते हुए भारतीय संदर्भों में की गई समाजवाद की पुनः रचना का जिस तरह अपना ऐतिहासिक महत्व है उसी तरह विश्व व्यापक संदर्भों में पूंजीवादी और मार्क्सवादी सिद्धांतों की निरुपयोगिता, निरर्थकता का प्रतिपादन सतर्क ढंग से करने के कारण भी हैं। इन्हीं कारणों से समाजवादी साहित्य की शाश्वत निधि के रूप में लोहिया के पचमढ़ी में किए गए भाषण का महत्व है।

13

सिद्धांतहीनता बनाम लोहिया

पचमढ़ी के सम्मेलन के बाद चार महीनों की अवधि में ही समाजवादी पार्टी का स्वतंत्र अस्तित्व समाप्तप्राय हुआ। चुनावों से पहले कांग्रेस से अलग होकर आचार्य कृपलानी, प्रफुल्लचंद्र घोष, टी0 प्रकाशम आदि कांग्रेस नेताओं ने 'कृषक मजदूर प्रजा पार्टी' के नाम से नवीन पक्ष की स्थापना की थी। समाजवादी पार्टी की तरह आम चुनावों में इस पार्टी की मिट्टी भी पलीदी गई थी। प्रस्तुत पक्ष और समाजवादी पार्टी ने एकत्रित होकर सितंबर 1952 में 'प्रजा समाजवादी पार्टी' की नींव रखी। इस विलीनीकरण की प्रक्रिया में लोहिया की भूमिका बहुत ही अहम रही है। विलीनीकरण के पीछे लोहिया का प्रमुख उद्देश्य था कि कांग्रेस और कम्युनिस्टों के अतिरिक्त देश के समस्त समविचार रखने वाले पक्षों की तीसरी शक्ति भारत में संगठित की जा सके। परंतु इस सिलसिले में इसे नजरअंदाज नहीं किया जा सकता कि राष्ट्रीय आंदोलन की परंपरा और कुछ अंशों में गांधी विचार के प्रभाव के अतिरिक्त समाजवादी पार्टी और कृषक मजदूर प्रजा पार्टी में कोई अन्य समान वैचारिक धरातल नहीं था। कृपलानी का पक्ष तो कभी समाजवादी विचारों का कायल नहीं था। कुल मिलाकर विलीनीकरण के परिणामस्वरूप आने वाले दो वर्षों में ही समाजवादी नेतृत्व के मूल में निहित वैचारिक संघर्ष तीव्रतर होता गया।

नवीन प्रजा समाजवादी पार्टी के अध्यक्ष आचार्य कृपलानी थे, फिर भी पक्ष नेतृत्व और पक्ष संगठन में प्रबलता समाजवादियों की ही थी। वैचारिक संघर्ष खासकर समाजवादी पार्टी के वरिष्ठ नेताओं में ही था। जयप्रकाश नारायण, आचार्य नरेंद्रदेव, अशोक मेहता (1950 के बाद) एक तरफ थे तो अकेले लोहिया दूसरी तरफ थे। आचार्य कृपलानी यद्यपि पूरे पूरे तटस्थ नहीं थे तथापि किसी भी तरफ हस्तक्षेप कभी नहीं किया।

यद्यपि, पचमढ़ी में किए गए भाषण पर लोहिया की तारीफ करते हुए न जयप्रकाश नारायण अघाते थे और न अशोक मेहता तथापि कांग्रेस और कम्युनिस्टों के निरपेक्ष समाजवाद की प्रबल तीसरी शक्ति के निर्माण की बात दोनों के गले कभी नहीं उतर पाई थी, और जल्द ही इसका अनुभव भी हो सका।

एक ओर लोहिया प्रजा समाजवादी पार्टी को विविध कार्यक्रमों के जरिए लड़ाकू और सही अर्थों में पर्यायी पक्ष बनाने के लिए एड़ी चोटी का पसीना बहा रहे थे तो दूसरी ओर कुछ नेता ऐसे काम कर रहे थे कि यह आशंका हो कि कहीं वे कांग्रेस से सांठगांठ करने की फिक्र में तो नहीं हैं ? इसलिए लोहिया ने डंके की चोट की, 'कांग्रेस भ्रष्टाचार अकाल का प्रतीक पक्ष है इस तरह की टिप्पणी करने वाले अपने आपको कांग्रेस के अध्यक्ष नेहरू के प्रति आकर्षण से बचा नहीं पाते हैं।' 'देश के सामने खड़ी समस्याओं का समाधान करने के लिए नेहरू की बाजुओं को सशक्त बनाने' का मशविरा देनेवालों को लोहिया ने सलाह दी कि 'अन्य किसी के हाथ मजबूत करने के बजाय प्रजा समाजवादी पार्टी के नेताओं को चाहिए कि वे अपनी भुजाओं को बलवान करने की चिंता करें।'

1952 के आरंभ में एक ऐसी घटना घटित हुई कि जिससे नेहरू और कांग्रेस सरकार को लेकर, इनकी नीति को लेकर, समाजवादी नेताओं के बीच की वैचारिक मतभिन्नता की दरार फैलती दिखाई दी। फरवरी 1952 में पंडितजी ने जयप्रकाश नारायण के नाम एक पत्र लिखकर यह निवेदन किया था कि कांग्रेसी और समाजवादी नेताओं को चाहिए कि विभिन्न स्तरों पर दोनों पक्षों के नेता परस्पर सहयोग करें। साथ ही जयप्रकाश को साक्षात्कार के लिए आमंत्रित भी किया। पहली मुलाकात में प्राथमिक बातें हुईं। जयप्रकाश से सुझाव पाकर पंडितजी ने आचार्य कृपलानी और आचार्य नरेंद्रदेव से भी मुलाकातें कर लीं। इसके बाद जयप्रकाश नारायण ने सहकार्य की दिशाओं को निश्चित करने वाला चौदह सूत्रों का एक मसौदा प्रजा समाजवादी पार्टी की ओर से पंडितजी के पास भेज दिया। फिर एक बार पंडितजी और जयप्रकाश की मुलाकात हुई। लगभग तीन हफ्तों तक यह सारा काम चलता रहा और एक दिन स्वयं पंडितजी ने चौदह सूत्री मसौदे पर टिप्पणी की कि प्रस्तुत कार्यक्रम अच्छे अच्छे नामों की गोलमटोल फेहरिस्त के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है और उसे लौटा कर सहकार्य के नाटक का अंत कर दिया।

कांग्रेस के साथ सहयोग का स्वाभाविक परिणाम कांग्रेस प्रजा समाजवादी पार्टी के संयुक्त मंत्रिमंडल में होना तय था इसलिए लोहिया ने इन सारे प्रयत्नों का कसकर विरोध किया था। लोहिया ने कहा कि 'जब भारतीय जनता चुनाव के जरिए पंडितजी के स्थान पर जयप्रकाश को बिठाएगी तभी मुझे सही सही खुशी होगी'। चौदह सूत्री कार्यक्रम पर टिप्पणी करते हुए लोहिया ने कहा कि 'अर्थशून्यता और अस्पष्टता भारतीय चिंतन परंपरा का विशेष दोष है, हर मांग का, हर संभव और अलग अलग अर्थ किया जा सकता है इसलिए निश्चित कार्यक्रम, इसे कार्यान्वित करने की उतनी ही निश्चित प्रणाली और इसके लिए अनुकूल वातावरण से मांगों का घनिष्ट संबंध होता है।'

इस समूची कालावधि में जयप्रकाश नारायण की राजनैतिक भूमिका अनिश्चय की और इसीलिए बड़ी अजीबोगरीब थी। जिस समय आपने प्रजा समाजवादी पार्टी की ओर से जवाहरलालजी के साथ बातचीत चलाई थी उससे पहले कुछ ही दिनों की बात है कि आपने पक्षीय और सत्ताधिष्ठित राजनीति में अपना विश्वास न होने की बात चलाई थी,

इस समय आपकी मान्यताएं कुछ इस प्रकार थीं—पक्ष पद्धति के कारण राजनैतिक शक्ति का अपव्यय ही होता है इसलिए इस पद्धति को खंडित किया जाना चाहिए; चूंकि पक्षीय हित और राष्ट्रीय हित परस्पर विरोधी होते हैं, पक्षहित की अपेक्षा राष्ट्रीय हित को वरीयता देने वाले सज्जनों को सम्मिलित होना चाहिए। जयप्रकाश ने अपनी मान्यताओं को जाहिरा तौर पर व्यक्त भी किया था। इस समय आपने न प्रजा समाजवादी पार्टी का त्याग किया था और न सक्रिय राजनीति से सन्यास लिया था। लगता है कि इसी समय से आपके विचार सर्वोदय की पक्षविहीन और सर्वानुमतिवाली कार्य पद्धति की ओर झुकने लगे थे। कुल मिलाकर यद्यपि जयप्रकाश प्रजा समाजवादी पार्टी में थे तथापि पक्ष पद्धति में अब उनका विश्वास नहीं था।

लोहिया की भूमिका इससे ठीक विपरीत थी। समाज-परिवर्तन की दृष्टि से राजनैतिक पक्षों की मर्यादाओं से लोहिया बखूबी परिचित थे परंतु उनका यह भी दृढ़ विश्वास था कि संसदीय जनतंत्र- प्रणाली में राजनैतिक पक्ष अनिवार्य होते हैं। अपनी धारणा को स्पष्ट करते हुए लोहिया ने कहा था कि 'मैंने भी राजनैतिक पक्षों की नकारात्मक भूमिका, दिखावटी बाह्याडंबरों की कायलता, चुनावबाजी, हिंसाचार, आदि त्रुटियों पर अच्छी खासी आपत्तियां की हैं फिर भी मैं यही मानता हूं कि जब हमारे पास यही एक उपाय है तब अगर हम पक्ष पद्धति को हटा दें तो बचा खुचा मार्ग भी हमारे लिए बंद हो जाएगा। पक्ष पद्धति को हटाने और इस पद्धति में निहित दोषों को हटाने में बहुत बड़ा अंतर है, ये दो अलग अलग विचार हैं।'

इसी दरम्यान प्रजा समाजवादी पार्टी के अन्य वरिष्ठ नेता अशोक मेहता ने सत्ताधारी पक्ष और विरोधी पक्ष के मध्य होनेवाले संबंधों को लेकर अनोखा विचार प्रस्तुत कर पक्ष की वैचारिक धांधलियों में वृद्धि ही कर दी। अशोक मेहता के विचार 'पिछड़ी अर्थव्यवस्था वाले देशों की राजनैतिक अपरिहार्यता' के शीर्षक से प्रसिद्ध हैं। आपके विचार के मुताबिक अविकसित देशों के विरोधी पक्षों के कर्तव्य की इति सिर्फ विरोध के लिए विरोध करने में नहीं है, बल्कि उन्हें ऐसे क्षेत्र भी ढूंढ़ने चाहिए जिनमें सत्तासीन पक्ष के साथ सहयोग का हाथ बढ़ाते हुए एकमत से काम किया जा सके।

जयप्रकाश नारायण और अशोक मेहता के उक्त विचारों के कारण समाजवादी पार्टी के अस्तित्व और सत्तारूढ़ कांग्रेस पार्टी के समग्र और संघर्षशील विरोध करने की भूमिका की नींव के उखड़ जाने का खतरा निर्माण हो रहा था। परंतु लोहिया अपनी बात पर अविचल थे, अशोक मेहता के विचारों पर टिप्पणी करते हुए आपने कहा कि 'राष्ट्रीय पुनर्रचना के हेतु सिर्फ सत्तारूढ़ कांग्रेस से ही क्यों सहयोग किया जाए ? जनसंघ और कम्युनिस्टों के साथ भी किया जाना चाहिए ! सहयोग की सदिच्छा के दूसरे पक्ष या आयाम पर अवसरवादिता भी हो सकती है। अगर सत्तारूढ़ पक्ष की नीति, कार्यक्रम और कार्यप्रणाली जनप्रिय हों तो बिना मांगे भी जनता का सहयोग सत्तारूढ़ पार्टी को ही मिलेगा। सत्तारूढ़ पार्टी की ओर से फिलहाल किए जा रहे विरोधी पक्षों के आह्वान निरर्थक ही नहीं बल्कि

सदिच्छा से प्रेरित भी नहीं हैं, इसलिए कांग्रेस, विरोधी पक्षों को अपने पाप का भागीदर बनाना चाहती है।'

जून 1953 में बैतुल (मध्य प्रदेश) में प्रजा समाजवादी पक्ष का एक विशेष सम्मेलन इसलिए आमंत्रित किया गया कि समाजवादी नेताओं के वैचारिक और नीति-विषयक सभी मतभेदों पर जमकर विचार किया जा सके। सम्मेलन में जयप्रकाश नारायण, अशोक मेहता और लोहिया अपनी अपनी मान्यताओं पर दृढ़ थे। इस आपत्ति से बच निकलने के लिए लोहिया ने एक उपाय सुझाया, फिलहाल विरोधी परंतु भविष्य में सत्तारूढ़ हो सकने वाले प्रजा समाजवादी पक्ष की अपनी नीति और कार्यक्रम की निश्चिति के लिए नीति-आयोग (पालिसी कमीशन) का गठन किया जाए। इसे स्वीकार किया गया और पार्टी का टूटना इस समय तो टल गया। इस समय लोहिया ने टिप्पणी की कि, 'मुझे विश्वास है कि अपनी पार्टी कभी भी नहीं टूटेगी परंतु साथ साथ हमें यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि जितना महत्व पार्टी के एकात्म होने का है उतना ही पार्टी की सुस्पष्ट नीतियों-कार्यक्रमों का भी है।'

दिसंबर 1953 में इलाहाबाद में प्रजा समाजवादी पार्टी का पहला अधिवेशन बाकायदा आमंत्रित किया गया था। इसमें बैतुल अधिवेशन में नियुक्त नीति आयोग की रिपोर्ट पेश की गई। अधिवेशन ने छह सूत्री चुनाव नीति का समर्थन किया। मत विभाजन न हो इसलिए यह भी स्वीकार किया गया कि कुछ शर्तों पर विरोधी पार्टियों के साथ समझौता किया जा सकता है। इस सबके पीछे यही उद्देश्य था कि आपसी मतभेदों को समाप्त कर पार्टी को सुदृढ़ बनाते हुए आगे बढ़ा जाए। यह आवश्यक था कि अशोक मेहता और लोहिया जैसे वरिष्ठ और मजबूत नेता कंधे से कंधा मिलाकर काम करें। इसलिए लोहिया को पार्टी का महामंत्री बनने के लिए आमंत्रित किया गया; लोहिया ने इस पद को स्वीकार किया फिर भी अपने मुश्किल कार्य का पूरा पूरा भान उन्हें था। चुनाव नीति में रखे गए पर्याय का परिणाम अवसरवादी और सत्तारूढ़ कांग्रेस से सहयोग की अनिवार्य प्रवृत्ति को बढ़ावा देने में हो सकता था; इस प्रवृत्ति का सामना करते हुए पार्टी की एकात्मता को बचाए रखने और पार्टी को संघर्ष के रास्ते से विचलित न होने देने के बड़े मुश्किल काम अब लोहिया को निभाने थे।

14

एक महान विजय

महामंत्री पद का भार ग्रहण करते ही लोहिया ने पक्ष कार्यकर्ताओं का आह्वान किया कि 'अकाल और भ्रष्टाचार की सरकार के विरोध में सत्याग्रह के घटनाचक्र को गतिशील बनाएं।' पक्ष कार्यकर्ताओं के नाम लिखे प्रकट पत्र में लोहिया ने लिखा था कि 'हमारे चारों तरफ ऐसे अन्याय लगातार हो रहे हैं कि हमें उनका विरोध करना ही होगा।'

राजस्थान, विंध्य प्रदेश, आंध्र और बिहार में जारी प्रतिकार आंदोलन की लोहिया ने तारीफ की। उत्तर प्रदेश की पक्ष कार्यकारी समिति ने लोहिया की उपस्थिति में नहर-पानी पर कर वृद्धि के विरोध में सत्याग्रह आंदोलन चलाने का ऐलान किया। सरकार ने सात गुना कर वृद्धि की थी। लोहिया ने समूचे उत्तर प्रदेश का तूफानी दौरा करते हुए किसानों का आह्वान किया कि इस असह्य और इसीलिए अन्यायी कर वृद्धि के विरोध में सत्याग्रह किया जाए। सत्याग्रह आंदोलन शुरू हुआ। इस समय उत्तर प्रदेश में 1932 के दकियानूसी, ब्रिटिशों के शासन बने, स्पेशल पावर एक्ट का अमल जारी था। आंदोलन को दबाने के इरादे से सरकार ने आम गिरफ्तारी का बिना हिचक प्रयोग किया, लाठी चार्ज और आंसू गैस के दौर चल पड़े। उत्तर प्रदेश के बारह जिलों में आंदोलन फैल गया था और पंद्रह सौ सत्याग्रही कार्यकर्ताओं को कैद किया गया था।

सत्याग्रह के प्रचार के लिए उत्तर प्रदेश में लोहिया दौरे पर थे, कायमगंज में ऐसे ही एक अवसर पर लोहिया को गिरफ्तार कर लिया गया और उनका मामला अदालत में पेश भी किया गया। लोहिया ने अपनी गिरफ्तारी के गैरकानूनी और इसीलिए गैरलागू होने का दावा किया और अपना मामला उच्च न्यायलय में पेश किए जाने की मांग की। गिरफ्तारी के बाईस दिनों के बाद इलाहाबाद उच्च न्यायालय में लोहिया का मामला पेश किया गया। इन दिनों इस जेल से उस जेल में ले जाने-आने में लोहिया को परेशान किया गया।

1932 के जिस स्पेशल पावर्स एक्ट के तहत लोहिया को गिरफ्तार किया गया था

उस कानून की विशेषता थी कि इसके मुताबिक उस व्यक्ति को भी गिरफ्तार कर अपराधी माना जा सकता था जिसने वाकई कोई अपराध भले न किया हो लेकिन अन्यों को अपराध करने के लिए प्रेरक कृति की हो। इसलिए यद्यपि स्वयं सत्याग्रह न करने के कारण अपराधी न होते हुए भी सत्याग्रह का प्रचार करने के लिए भी लोहिया को अपराधी सिद्ध किया जा सकता था।

इलाहाबाद उच्च न्यायालय के खंडपीठ में लोहिया का मामला पेश किया गया था, सुनवाई में जिस दिन लोहिया अपनी कैफियत देने वाले थे उस दिन अदालत में वकीलों, श्रोता-दर्शकों और पत्रकारों ने बहुत बड़ी भीड़ की थी। अपने भाषण के आरंभ में ही लोहिया ने न्यायालय से कहा कि "मैं यहां आरोपी के नाते उपस्थित नहीं हूं वास्तविक स्थिति उलटी है, सरकार आरोपी है और मैं फरियाद करनेवाला हूं। 1932 का स्पेशल पावर्स ऐक्ट भारतीय संविधान के विरोध में है अथवा नहीं इसका निर्णय मैं इस न्यायालय से चाहता हूं। मेरी मान्यता है कि प्रस्तुत कानून ब्रिटिश शस्त्रागार का वह शस्त्र है कि आज जिस पर भारी जंग चढ़ा हुआ है। स्वतंत्र भारत में यह अशोभनीय है। मैंने वास्तव में किसी कानून को भंग नहीं किया है, मैंने अगर कुछ किया है तो सिर्फ अवांछित कानून तोड़ने का प्रचार किया है।"

लोहिया का प्रयास न्यायव्यवस्था से यह स्वीकार करवाना था कि संसदीय जनतंत्र में व्यक्ति और समुदाय को यह अधिकार है कि वे सत्याग्रह करते हुए सविनय कानून भंग कर सकते हैं। अपने इसी प्रयास को स्पष्ट करते हुए लोहिया ने कहा कि "जनतंत्र में सिविल नाफरमानी को अनुचित मानने का यही मतलब होगा कि भारत ने अर्थात गांधीजी ने मानव जाति के लिए जो देन दी है उसका धिक्कार किया जाए, भक्त प्रह्लाद, चार्वाक, सुकरात और थोरो से लेकर गांधीजी तक के महान सत्याग्रहियों की परंपरा को नकारना है। अगर सामुदायिक सविनय कानून भंग को अपराध माना जाएगा तो सरकार मानो सशस्त्र विद्रोह को आमंत्रित करना चाहती है। मैं जेल से घृणा करता हूं, परंतु जब तक संसार में अत्याचारी हैं तब तक मुझ जैसे जेल से घृणा करने वाले लोग जेल में जाते ही रहेंगे।"

जब सुनवाई जारी थी तब इसी दरम्यान लोहिया ने राष्ट्रपति राजेंद्र प्रसाद को एक पत्र लिखा, जिसमें उन्होंने लिखा था कि 'नेहरू का यह कथन निरा अज्ञानमूलक है कि स्वाधीन राष्ट्र में कानून भंग करना बड़ी मूर्खता है। नेहरू की इस मान्यता का अभिप्राय गांधीजी द्वारा भारत को दी गई निधि को ठुकराने और हिंसा को आमंत्रित करने मात्र से है।'

स्पेशल पावर्स एक्ट संविधान विरोधी है अथवा नहीं इस मुद्दे पर खंडपीठ के न्यायाधीशों में मतभिन्नता हुई। मुख्य न्यायमूर्ति के साथ अन्य एक न्यायमूर्ति का प्रतिपादन था कि प्रस्तुत कानून संविधान विरोधी है। आखिर बहुमत के आधार पर अपना फैसला जाहिर करते हुए मुख्य न्यायमूर्ति ने कहा कि '1932 के स्पेशल पावर्स एक्ट की

संबंधित धारा तीन, भारतीय संविधान के विरोध में है। यह सही है कि जनतंत्र के सफल निर्वाह के लिए कानून का पालन अनिवार्य है परंतु यह भी संभव है कि कुछ निष्ठावान चिंतक अन्यायकारक कानून को सविनय तोड़ने की सलाह जनता को दें और ऐसे कानून को सविनय तोड़ने में अपने परम ईमानदार कर्तव्य की सार्थकता समझें। सुकरात ने विचार और भाषण की स्वाधीनता के लिए आत्मबलिदान किया था। अन्यायकारक कानून को तोड़ने की सलाह देते हुए थोरो ने कहा था कि अन्याय का जन्म प्रायः कानून विषय अस्थानी आदर से ही होता है। गांधीजी ने भी कहा था कि एक न एक दिन सत्याग्रही यह अहसास करेगा कि कानून का पालन करने में ही कानून व्यवस्था की अप्रतिष्ठा निहित है।'

प्रधान न्यायमूर्ति अपने फैसले में यह भी कहते हैं कि 'प्रत्यक्षतः कानून भंग करने और कानून भंग के लिए प्रोत्साहित करने का मतलब अपने विचार और भाषण की स्वाधीनता के लिए की गई प्रत्यक्ष कृति है। मेरी राय है कि भारतीय संविधान अपने हर नागरिक के सत्याग्रह प्रचार के अधिकार का रक्षण करता है।'

न्यायालय के बाहर आते ही कार्यकर्ताओं और जनता की हजारों की भीड़ ने अपने विजयी नेता लोहिया का उत्स्फूर्त स्वागत किया, लगभग दो महीनों की कैद के बाद लोहिया मुक्त हुए थे। उच्च न्यायालय के इस निर्णय के कारण उत्तर प्रदेश की जेलों में कैद पंद्रह सौ सत्याग्रही कार्यकर्ता भी मुक्त कर दिए गए।

जेल के बाहर आने पर अपनी विजय पर प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए लोहिया ने कहा कि 'दो महीनों के गैरकानूनी कारावास के संताप से मैं दग्ध हूं, झुलस गया हूं, क्रोध और करुणा के बीच का मेरा मानसिक संतुलन ढल गया है।'

स्वाधीन भारत की सड़ी-गली न्याय व्यवस्था के कारण तो लोहिया का मन विक्षुब्ध था ही। उसके साथ लोहिया के विक्षोभ को बढ़ाने वाला एक दुर्भाग्यपूर्ण प्रसंग इसी दरम्यान प्रजा समाजवादी पार्टी में घटित हुआ।

15

मनुष्य के प्राणों की प्रतिष्ठा के लिए

लोहिया ने प्रजा समाजवादी पार्टी पक्ष के इलाहाबाद अधिवेशन में महामंत्री पद के सूत्र ग्रहण किए थे, इसके कुछ ही दिनों बाद 1954 में त्रावणकोर-कोचीन में विधान सभा के मध्यावधि चुनाव कराए गए। चुनाव की नई नीति के मुताबिक पार्टी की राष्ट्रीय समिति ने प्रांतीय पक्षशाखा को कम्युनिस्टों के साथ स्थानों का बंटवारा करने की छूट इसलिए दी थी कि कांग्रेस के विरोध में पड़ने वाले मतों में आपसी फूट न पड़े। लोहिया ने भी इसे अनुमति दे दी। चुनावों के बाद यह पाया गया कि न कांग्रेस को और न कम्युनिस्टों को इतने स्थान मिले थे कि इनमें से कोई भी एक पक्ष अपने बल पर सरकार बना सके। इस समय कांग्रेस ने फैसला किया कि प्रजा समाजवादी पार्टी —जिसे सिर्फ 19 स्थान प्राप्त थे —की सरकार बने और कांग्रेस उसे अपना समर्थन देगी। इस समय भारत में पहली बार प्रजा समाजवादी पार्टी की सरकार पट्टमथाणु पिल्ले के नेतृत्व में त्रावणकोर-कोचीन राज्य में बन सकी। पार्टी की राष्ट्रीय समिति ने इस मेल-जोल के लिए भी अपनी अनुमति दे दी थी। लोहिया ने भी इसे अनुकूलता दिखाई थी। त्रावणकोर-कोचीन विधानसभा चुनावों और प्रजा समाजवादी पार्टी की मिलीजुली बनी सरकार के लिए अनुकूलता दिखाने पर लोहिया अपनी प्रारंभिक और मौलिक भूमिका से —कांग्रेस और कम्युनिस्टों से अलग रहते हुए प्रजा समाजवादी पार्टी अपना कार्यक्रम खुद-ब-खुद चलाए—डिग गए थे। वैसे, इस स्खलन के भी दो कारण थे— एक तो लोहिया किसी भी हालत में और खासकर चुनाव और सरकार के मुद्दे पर पक्ष विभाजन नहीं चाहते थे और दूसरा कारण था कि किसी एक राज्य में, अल्पमतवाली भी क्यों न हो अगर प्रजा समाजवादी पार्टी की सरकार बनेगी तो इस बहाने समाजवादी प्रशासन के आदर्श को गढ़ने का अवसर प्राप्त होगा। प्रजा समाजवादी सरकार अपनी अवधि के दरम्यान अगर क्रांतिकारी कार्यक्रम पर अमल करेगी तो विधान सभा के बाहर व्यापक जनमत पार्टी के अनुकूल होगा; फिर केंद्र सरकार के नाते कांग्रेस अथवा विधान सभा में भी अगर कांग्रेस रुकावटें डालेगी, जिसके परिणाम स्वरूप अगर संवैधानिक समस्या उभरेगी और सरकार बरखास्त करने की नौबत आएगी

तो इसका लाभ पार्टी को ही मिलेगा। पार्टी दुगुने जोर से कार्यरत होकर जनता से बहुमत प्राप्त कर सकेगी। कुल मिलाकर लोहिया का हिसाब यही था।

काश ! ऐसा होता ! क्योंकि लोहिया की मूल धारणा ही विफल सिद्ध हुई कि थाणु सरकार समाजवादी प्रशासन का आदर्श निर्माण करेगी, पट्टभथाणु पिल्ले की सरकार कांग्रेस की कृपा से सत्ता से चिपके रहने में ही अपनी सार्थकता समझने लगी थी। सरकार ने जुल्मी प्रतिबंधात्मक स्थानबद्धता कानून का समर्थन किया, कर्मचारियों और मजदूरों के हित के विरोध में पड़नेवाला कानून बनाया। संक्षेप में, किसी नौकरशाह की भांति पिल्ले सरकार का कामकाज चल रहा था।

जब लोहिया जेल में थे तब एक बार पिल्ले सरकार ने बिना किसी प्रक्षोभक कारण के निःशस्त्र मजदूरों पर गोली चलाई थी इसमें आठ प्रदर्शक आहत हुए और सात की मौत हुई थी। समाचार सुनते ही लोहिया बहुत गुस्सा हुए इसलिए कि गोलीबारी की समस्या व्यापक मानवीय करुणा के साथ साथ जनतंत्रात्मक प्रणाली की समस्या भी थी। जनतंत्रात्मक व्यवस्था में शांति के साथ प्रदर्शन करने वालों और पुलिस में संघर्ष छिड़ने की नौबत आएगी तब पुलिस के आचरण को लेकर लोहिया के अपने विचार बहुत पहले से सोचे हुए और बड़े आग्रही थे। जब लोहिया कांग्रेस में थे और किसी प्रसंग पर उत्तर प्रदेश और मध्य भारत की कांग्रेस-सरकारों ने निःशस्त्र और शांतिपूर्ण प्रदर्शनों पर गोली चलाई थी, तब भी लोहिया ने विरोध किया था। अब तो बहुत ही बांका प्रसंग था, गांधीजी के भारत में गांधीजी की विरासत की दावेदार प्रजा समाजवादी पार्टी की सरकार ने शांतिपूर्ण प्रदर्शन करने वालों पर गोली चलाई थी और जनता को मौत के घाट उतार दिया था।

जब लोहिया कारावास में थे, तभी, 16 अगस्त 1954 को आपने पट्टभथाणु पिल्ले के नाम तार भेजकर त्रावणकोर-कोचीन की सरकार के मुख्यमंत्री पद से इस्तीफा देने की मांग की थी। तार में लिखा गया था कि 'भले प्रदर्शन गलत रास्ते पर चले गए हों और इनके कारण परिस्थिति खस्ता बन गई हो, फिर उस गोलीबारी का कभी भी समर्थन नहीं किया जा सकता जो जनता के लिए जानलेवा सिद्ध हुई हो। गोलीबारी का समर्थन तभी न्यायपूर्ण होगा जब प्रदर्शन सशस्त्र विरोध और प्रत्यक्ष कत्ल के काम पर उतर आते। गोलीबारी से संबंधित सभी अधिकारियों को तुरंत निलंबित किया जाए। गोलीबारी की जांच के लिए सिविल जांच आयोग नियुक्त किया जाए और तत्वनिष्ठा के निर्वाह के लिए इस्तीफा पेश किया जाए। यही मेरा सुझाव है।' लोहिया ने तार की एक प्रति पक्ष अध्यक्ष आचार्य कृपलानी के नाम भी भेज दी।

मुख्यमंत्री पिल्ले ने लोहिया के सुझाव को सरासर अस्वीकार किया। न उन्होंने और न पार्टी के अध्यक्ष कृपलानी ने तार की ओर ध्यान तक दिया। इस पर लोहिया ने न केवल पार्टी-महामंत्री पद का बल्कि कार्यकारी समिति के सदस्यत्व का अपना इस्तीफा पार्टी-अध्यक्ष कृपलानी के नाम भेज दिया। अपने इस्तीफा-पत्र में लोहिया ने लिखा था कि 'वे सब तत्वच्युत, पाखंडी, और सत्तालोलुप हो सकते हैं जो यह कहते हैं कि मुझे परिस्थिति

का ज्ञान और भान नहीं है। यह भी कहा जाता है कि दंगा-फसाद करनेवाले या तो कम्युनिस्ट थे या कम्युनिस्ट प्रेरित। यह सवाल ही नहीं है कि प्रदर्शक कम्युनिस्ट थे अथवा कांग्रेसी; असली सवाल तो यही है कि क्या प्रदर्शनों के कारण सशस्त्र विरोध और प्रत्यक्ष कत्ल जैसे संगीन मामलों का खतरा था अथवा नहीं। अगर इस समय मैं जेल में न होता तो मैंने इस समस्या को तुरंत कार्यकारिणी के सामने रखा होता।'

लोहिया के त्यागपत्र की खबर समाचार पत्रों में प्रकाशित हुई, इस पर टिप्पणी करते हुए अशोक मेहता ने कहा था कि 'त्रावणकोर-कोचीन की सरकार से त्यागपत्र की मांग प्रजा समाजवादी पार्टी कार्यकारी समिति ही कर सकती है, इसलिए लोहिया का सुझाव गैरलागू है।' लोहिया के त्यागपत्र का पक्ष अध्यक्ष कृपलानी ने उत्तर तक नहीं दिया। तब लोहिया ने लिखा कि 'मुख्यमंत्री के त्यागपत्र की मांग करने का मुझे पूरा पूरा अधिकार है। किसी सरकार की ओर से की गई गोलीबारी की अन्यायकारक, अनुचित, बेबंद, अविचारी, आदि कहकर भर्त्सना की जाए और यही काम जब अपनी पार्टी की सरकार करे तब परिस्थिति, कानून, आदि के अप्रस्तुत और अप्रासंगिक ढकोसले और बहाने खड़े करना सरासर गलत है।'

कारावास से निकल आने पर लोहिया को कृपलानी के दो पत्र मिले, एक में कृपलानी ने स्वीकार किया था कि 'गोली चालन को लेकर आपकी भूमिका न्यायपूर्ण और इसीलिए योग्य है।' साथ ही यह सुझाव भी दिया कि 'इसे राष्ट्रीय समिति की बैठक में अवश्य पेश करें।' वास्तव में न केवल कृपलानी को बल्कि जयप्रकाश को भी लोहिया की मान्यताएं स्वीकार थीं, परंतु उनकी स्थिति विचित्र थी जिसमें तत्व की स्वीकृति और कृति की अस्वीकृति की विडंबना निहित थी।

जेल से मुक्त होते ही लोहिया ने जाहिरातौर पर अपनी भूमिका जनता के सामने पेश की। लोहिया के इन व्याख्यानों से उनकी भूमिका की सैद्धांतिक झलक तो निश्चय ही मिलती है। उन्होंने कहा था कि 'भारत में मनुष्य की जान की कोई कद्र नहीं है ! पता नहीं भारतीय जनता मानवों की है या पशुओं की ! भारतीय जाति व्यवस्था में ही इस विकृत मानसिकता की जड़ छिपी हुई है। अछूतों की गिनती मानवों में नहीं की जाती, न्यायमान्य हत्या हमारे यहां फांसी की सजा है इसके पीछे 'जान के लिए जान' का तत्व है। यह संभव है कि जनता की जीविका के लिए खाद्यान्न और पानी की समस्या को हल करने में हमें बीस साल लगेंगे लेकिन इनसानियत की कद्र तो तुरंत की जा सकती है।'

त्रावणकोर-कोचीन की पेचीदगी पर विचार करने के लिए प्रजा समाजवादी पार्टी की राष्ट्रीय समिति की बैठक सितंबर 1954 में दिल्ली में आयोजित की गई थी। अशोक मेहता, ह० वि० कामथ, सुचेता कृपलानी, आदि सदस्यों का लोहिया की भूमिका से विरोध था, इसलिए उन्होंने लोहिया की मांग पर विचार करने के बदले यही सवाल उठाया कि जब लोहिया को मुख्यमंत्री से त्यागपत्र मांगने का अधिकार नहीं है तब उन्होंने जेल से तार भेज कर उसकी मांग क्यों की ? इससे पहले पक्ष अध्यक्ष से संपर्क क्यों नहीं किया?

इस तरह कार्य प्रणाली विषयक कानूनी मुद्दों को उठाकर विवाद चलाया गया। साथ ही यह सलाह दी गई कि 'अब तो ऐसे पक्ष विभाजन के काम बंद किए जाएं !' इस हालत में बैठक में उपस्थित रहना तक लोहिया के लिए असंभव था, इसलिए आप वहां से निकल पड़े। जयप्रकाश को लोहिया की भूमिका लगभग स्वीकार थी। जयप्रकाश ने प्रतिपादन किया कि न केवल थाणु सरकार को बल्कि पार्टी की राष्ट्रीय समिति को भी अपना त्यागपत्र देना चाहिए। आखिर जयप्रकाश से कहा गया कि वे इस मामले पर एक प्रस्ताव तैयार करें; जयप्रकाश के मसौदे पर लोहिया के विचारों की पूरी पूरी छाया थी। परंतु थाणु सरकार के त्वरित त्यागपत्र की बात इसमें भी नहीं थी। उस प्रस्ताव में निहित लोहिया प्रणीत सुझावों को अपनी ओर से संशोधन पेश करते हुए हटाने का काम विरोधियों ने किया और अन्य एक संशोधन—गोलीचालन की न्यायालयीन जांच करवाई जाए—जोड़कर जयप्रकाश के प्रस्ताव को पारित किया। 'गांधीजी के सिद्धांतों का एक कदम आगे बढ़कर पालन लोहिया कर रहे हैं', इस तरह तारीफ करने वाले कृपलानी ने लोहिया का समर्थन कतई नहीं किया।

परंतु यह पूरा मसला इसी से निपटने वाला नहीं था, जयप्रकाश ने सुझाव दिया कि इसी मसले पर विचार करने के लिए पार्टी का खास अधिवेशन आयोजित किया जाए। बतौर इस सुझाव के नवंबर 1954 में नागपुर में अधिवेशन हुआ। अधिवेशन का वातावरण कुल मिलाकर गंभीर और तनावपूर्ण था। राष्ट्रीय समिति का प्रस्ताव मंजूरी के लिए जैसा था वैसा पेश किया गया। लोहिया ने विचारप्रवर्तक और तर्कसंगत व्याख्या करते हुए प्रतिनिधियों का आह्वान किया कि इस प्रस्ताव को सरासर अस्वीकार करें। पट्टभथाणु पिल्ले ने नौकरशाह की शैली में गोलीबारी कांड का समर्थन किया। इस अवसर पर जयप्रकाश ने विचित्र भूमिका से कहा कि 'अगर पिल्ले का हृदय परिवर्तन होगा तो वे स्वयं अपना त्यागपत्र पेश करेंगे।' पक्ष अध्यक्ष कृपलानी ने सलाह दी कि 'राष्ट्रीय समिति के प्रस्ताव को नामंजूर कर पार्टी-विभाजन को आमंत्रित न किया जाए।' जयप्रकाश और कृपलानी के भावनात्मक आह्वान और पार्टी-विभाजन के भय से कतरा कर 303 विरुद्ध 217 मतों के आधार पर अधिवेशन में राष्ट्रीय समिति का प्रस्ताव पारित किया गया। विरोध में पड़े 217 मत लोहिया की पक्ष अंतर्गत शक्ति और उनकी सिद्धांत की शक्ति का संकेत देते हैं।

जिस पट्टभथाणु पिल्ले सरकार ने सारा महाभारत कराया उसे दिया गया अपना समर्थन कांग्रेस ने आगे चलकर एक साल के भीतर ही हटा दिया और पार्टी की पहली पहली सरकार धराशायी हो गई। इससे पक्ष नेतृत्व में चली आ रही वैचारिक भिन्नता की दरार, खाई में बदल गई। पार्टी विभाजन के बीज भी इसी अवसर पर पड़ गए। पूरे कांड की अच्छी बात यही रही कि इसके निमित्त लोहिया ने जनतंत्र प्रणाली में पुलिस और जनता के परस्पर संबंधों पर बहुआयामी राष्ट्रीय चर्चा देश भर में चलाई।

16

वाणी स्वाधीनता और कर्म नियंत्रण

गोलीबारी कांड के बाद तीन महीनों में ही लोहिया को पक्ष के अंतर्गत एक अन्य संघर्ष का सामना करना पड़ा, इस समय आपने प्रजा समाजवादी पार्टी की सही सही प्रतिमा की रक्षा के जोरदार प्रयत्न आखिरी बार किए।

1955 के जनवरी में मद्रास के पास आवडी में कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन हुआ था, इस अवसर पर कांग्रेस ने यह प्रस्ताव पारित किया कि कांग्रेस का लक्ष्य समाजवादी समाज रचना का है। यह बात दूसरी है कि इस समय की परिस्थिति कुछ ऐसी विचित्र थी कि नेहरू के अतिरिक्त अन्य किसी को समाजवाद मंजूर था या नहीं इस पर संदेह किया जाए। इसलिए यद्यपि समाजवादी समाज रचना का प्रस्ताव कांग्रेस ने पारित किया था तथापि यह मानना एक दुराशा ही थी कि समाजवाद के कार्यक्रम पर कांग्रेस अमल करेगी।

लेकिन आवडी कांग्रेस अधिवेशन में पारित प्रस्ताव का एक परिणाम निश्चित रूप में यह हुआ कि सत्तासीन कांग्रेस के साथ पार्टी के संबंध किस स्तर के हों। इस पर समय पर चल रही बहस फिर से ताजा हो गई और धीरे धीरे पराकाष्ठा पर पहुंच गई। पार्टी शरीर पहले ही पक्षाघात से पीड़ित था। आवडी कांग्रेस के अधिवेशन ने प्रजा समाजवादी पार्टी को वह सदमा पहुंचाया कि बचा खुचा नेहरू और कांग्रेस के अनुकूल पड़ने वाला अंग भी जर्जर हो गया। अशोक मेहता की मान्यता—अविकसित देशों में विरोधी पक्षों को चाहिए कि वे सत्ताधारी पक्ष के साथ सहयोग किए जाने योग्य क्षेत्रों को तलाशें—को आवडी कांग्रेस अधिवेशन ने तूल दे दी। अशोक मेहता ने प्रकट कर दिया कि "कांग्रेस द्वारा स्वीकृत नवीन सामाजिक उद्दिष्टों का मैं हृदय से स्वागत करता हूं और चाहता हूं कि प्रजा समाजवादी पार्टी अब स्वतंत्र पक्ष के रूप में बने रहने की आकांक्षा छोड़ दे इसलिए कि अब कांग्रेस प्रजा समाजवादी पार्टी के समीप आ रही है और मेरा विश्वास है कि यह एक शुभ चिह्न है।"

वास्तविकता यह थी कि इससे एक वर्ष पहले ही बैतुल में आयोजित अधिवेशन

में और इसके बाद इलाहाबाद में संपन्न अधिवेशन में यह तय किया गया था कि कांग्रेस के साथ सहयोग किए बिना, समाजवाद के लिए प्रजा समाजवादी पार्टी स्वतंत्र रूप में काम करेगी। लेकिन अशोक मेहता ने तह-ए-दिल से इसे कबूल नहीं किया था। आवडी अधिवेशन के कारण उनकी कुछ कुछ दबी-सी भावना फिर से, पलट कर सामने उभर आई। अशोक मेहता को यह दृढ़ विश्वास हो चुका था कि आवडी प्रस्ताव के कारण परिस्थितियों में बहुत बड़ा परिवर्तन आया है और कांग्रेस भी समाजवाद की ओर चल पड़ी है। परंतु लोहिया को अपनी धारणा में परिवर्तन करने की आवश्यकता नहीं लगी। लोहिया का मंतव्य था कि कांग्रेस द्वारा किया गया समाजवाद का बयान, स्थूल परंतु निर्गुण-निराकार तत्व का घोष करने की विडंबना जैसा भ्रामक है। उन्होंने कहा कि 'वर्तमान राजनीति की घोर विडंबना यही है कि इसमें तत्व को सगुण साकार बनाया नहीं जा रहा है। जनतंत्र, न्याय और समता के तत्वों को कोई भी अस्वीकार नहीं करता परंतु जब इन निराकार तत्वों में आशय को साकार करने की नौबत आती है तब कथनी-करनी की बिडंबना झेलनी पड़ती है, अर्थात प्लेटफार्म पर चढ़कर संपत्ति साधनों के विकेंद्रीकरण, चरखा आदि का डिम डिम बजाया जाएगा परंतु व्यवहार में प्रचंड और विशाल कपड़ा मिलें लगाई जाएंगी। जिह्वा से अहिंसा का जाप जितना निरंतर उतना ही हाथों से बंदूक चलाना, जीभ सत्ता के विकेंद्रीकरण की स्तुति करेगी परंतु सचिवालयों में बड़े पैमाने पर सत्ता का केंद्रीकरण किया जा रहा है। भारतीय समाजवादियों को चाहिए कि वे इस असंगति और विडंबना का अंत कर दें।'

अशोक मेहता ने यह दावा किया कि "कांग्रेसी समाज़वाद का स्वागत प्रजा समाजवादी पार्टी के नेताओं ने किया है और इसलिए मैं आह्वान करता हूं कि कांग्रेस को अपने उद्देश्यों में सफलता दिलाने के लिए प्रजा समाजवादी पार्टी नेहरू के हाथ मजबूत करे।" परंतु लोहिया ने साफ शब्दों में प्रतिवाद करते हुए कहा कि, 'जिस किसी का कांग्रेसी समाजवाद में विश्वास हो गया है वह उस समाजवाद की प्राप्ति के लिए नेहरू के दरबार में भरती हो जाए और उनके हाथ मजबूत करे। परंतु मुझे यही लगता है कि अन्य किसी के हाथ मजबूत करने की अपेक्षा पार्टी को चाहिए कि वह खुद अपने हाथ मजबूत करे।"

'अशोक मेहता की कांग्रेस-अनुकूलता का परिणाम कुछ ही दिनों में स्पष्ट हो गया। इन्हीं दिनों आंध्र प्रदेश विधान सभा चुनाव प्रचार का दौर जारी था। कांग्रेस कार्यकर्ताओं ने मेहता के लेख को छपवा कर बंटवा दिया था। नेहरू ने भी प्रचार सभा में कहा कि अब कांग्रेस और प्रजा समाजवादी पार्टी में कोई भेद, कोई अलगाव नहीं है।'

बंबई अशोक मेहता का अपना गढ़ था, अशोक मेहता की विचारधारा का बंबई के उनके समर्थकों ने धुआंधार प्रचार शुरू किया था। परंतु मधु लिमये इसके विरोध में चट्टान की भांति खड़े रहे। इस पर लिमये पर अनुशासन भंग करने का आरोप लगाते हुए उनका पक्ष सदस्यत्व स्थगित करवाया गया। लिमये ने पार्टी की राष्ट्रीय समिति से फरियाद की। परंतु समिति ने बंबई प्रांतीय समिति के निर्णय पर अपनी मुहर लगा दी।

प्रजा समाजवादी पार्टी ने बाकायदा इसे कभी भी स्वीकार नहीं किया था कि पार्टी ने कांग्रेस के साथ सहयोग करने का फैसला किया है, बावजूद इस तथ्य के अशोक मेहता जाहिरा तौर पर उसी का प्रचार कर रहे थे ही और इनके विरोध में अनुशासन भंग की कार्यवाही नहीं की जा रही थी। देशभर के पक्ष कार्यकर्ताओं के सामने यह अबूझ समस्या थी कि अशोक मेहता पर पार्टी अनुशासन के विरोध में जाने के बावजूद कोई कार्यवाही क्यों नहीं? और लिमये ने सिर्फ मेहता का विरोध किया इसलिए उन पर अनुशासनिक कार्यवाही!

मधु लिमये पर की गई अनुशासनिक कार्यवाही के परिणामस्वरूप पार्टी संगठन में विभाजन की प्रक्रिया शुरू हो गई। 'मुंबई प्रदेश पंक्ष समिति के निर्णय पर मेरे साथ अन्य कई सदस्य चिंताग्रस्त हुए हैं।' लोहिया ने अपने इस बयान के साथ संघर्ष की मुद्रा का संकेत कर दिया था और इससे पक्ष विभाजन की प्रक्रिया ने भी जोर पकड़ लिया। लोहिया ने अपना मंतव्य प्रकट करते हुए कहा था कि 'जब कभी अनिवार्य और आवश्यक होगा तभी अनुशासनिक कार्यवाही की जानी चाहिए, मात्र मत व्यक्त करने पर अनुशासनिक कार्यवाही का विधान न हो।' इस बहाने लोहिया ने पक्षांतर्गत अनुशासन विषय पर अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा कि "पक्ष की ओर से निर्धारित नीति के विरुद्ध कृति करने पर बंधन अवश्य होना चाहिए परंतु उसी नीति के विरोध में मत व्यक्त करने का स्वातंत्र्य जरूर होना चाहिए। राजनैतिक पार्टी के सिद्धांतों और नीति जैसे समाजस्पर्शी प्रश्नों की चर्चा जनतंत्र प्रणाली में सार्वत्रिक रूप में होनी चाहिए। जनता और राजनैतिक पक्ष के आपसी संबंध बहुत ही घनिष्ट होते हैं। अगर जनतंत्र को मजबूत बनाना है तो पक्षीय प्रश्नों पर न केवल पक्ष सदस्यों को जानकारी प्राप्त होनी चाहिए बल्कि साधारण जनता को भी जानकारी दी जानी चाहिए।"

मधु लिमये का साथ लोहिया दृढ़ता के साथ देते रहे। लिमये के विरोध में अपनी मुहर लगाने वाली राष्ट्रीय समिति के विरुद्ध विद्रोह का नारा बुलंद करते हुए लोहिया ने पक्ष सदस्यों को सलाह दी कि "जहां जहां पक्ष संगठन और पक्ष शाखाएं हैं वहां वहां संघर्षशील समाजवादियों को चाहिए कि वे मधु लिमये को भाषण देने के लिए आमंत्रित करें।" लोहिया के इस सुझाव पर सभी पक्ष शाखा कार्यालयों में खलबली मची। कतिपय प्रांतीय शाखाओं ने यह प्रस्ताव पारित किया कि राष्ट्रीय समिति मधु लिमये के मसले पर पुनर्विचार करे। उत्तर प्रदेश शाखा ने अपना मनोदय व्यक्त किया कि गाजीपुर में होने वाले प्रादेशिक सम्मेलन के लिए लिमये को आमंत्रित किया जाएगा। पार्टी के महामंत्री ने इस पर गंभीर आपत्ति करते हुए उत्तर प्रदेश पक्ष अध्यक्ष से उत्तर मंगवाया था। महामंत्री ने लिखा था कि 'जिस पर अनुशासनिक कार्यवाही की जा चुकी है ऐसे पक्ष सदस्य को आमंत्रित करना भी अपराध है और इसीलिए आप पर भी अनुशासनिक कार्यवाही क्यों न की जाए ? इसका उत्तर लिखिए।' मई 1955 में पार्टी की राष्ट्रीय समिति की बैठक आयोजित की गई और इसमें यह फैसला किया गया कि उत्तर प्रदेश की समूची कार्यकारी समिति को ही बरखास्त कर दिया जाए और गाजीपुर के अधिवेशन को अनधिकृत करार कर दिया जाए। इस

निर्णय ने आग में तेल डालने का काम किया। उत्तर प्रदेश के बाद दिल्ली की पक्ष शाखा को भी बरखास्त दिया गया। इस पर टिप्पणी करते हुए 'टाइम्स आफ इंडिया' ने लिखा था कि 'प्रजा समाजवादी पार्टी के नेताओं को यह ध्यान रखना चाहिए कि पक्ष को एकात्म बनाए रखने के लिए जिस सीमेंट की आवश्यकता होती है उसके ऐवज में अनुशासनिक कार्यवाही का प्रयोग नहीं किया जा सकता।'

राष्ट्रीय समिति के उपरोक्त निर्णयों के बाद लोहिया ने स्पष्ट शब्दों में इशारा दे दिया कि 'पक्ष की तानाशाही प्रवृत्ति में अगर परिवर्तन नहीं होगा तो भारतीय जनता को समाजवाद का नया हथियार तैयार करना चाहिए। पथ सदस्यों द्वारा चुनाव प्रक्रिया से गठित उत्तर प्रदेश की समूची कार्यकारी समिति को बरखास्त करने की कार्यवाही पार्टी संविधान के विरोध में की गई हरकत है। बहुमत के निरंकुश बल पर पार्टी संगठन में अगर इसी तरह की प्रवृत्तियां बल पकड़ती जाएंगी तो वर्तमान जनतंत्र की अटल परिणति तानाशाही से भी अधिक खतरनाक और जुल्मी प्रशासन में होगी। कुल मिलाकर यही सिद्ध होता है कि पक्षांतर्गत वर्तमान समस्या अनुशासन विषयक न होकर नीति निर्धारण की ही है।' पार्टी के महामंत्री के वक्तव्य—'राष्ट्रीय समिति के किसी भी निर्णय के विरोध में पक्ष का कोई सदस्य ही नहीं, पक्षशाखा तक कार्यवाही नहीं कर सकती' —पर टिप्पणी करते हुए लोहिया ने कहा कि 'इसका मतलब प्रशासनिक व्यवस्था के बल पर अल्पमत वाले गुट को परेशान कर आत्मसमर्पण के लिए विवश करने के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं हो सकता। पक्ष की व्यवस्था अगर इस तरह—कलेक्टर और पटवारी के संबंधों जैसी—अधिकारी और मातहत जैसी होगी तो राष्ट्रीय समिति और प्रादेशिक समितियों के बीच का वर्तमान जनतंत्रात्मक रिश्ता टूट जाएगा और पक्ष पर तानाशाही का निरंकुश प्रशासन लादा जाएगा।'

'पक्षांतर्गत अनुशासन से यह अभिप्राय कतई नहीं है कि बुजुर्ग नेताओं के विरुद्ध चूं तक न किया जाए।' अपने इसी विचार को विस्तार देते हुए लोहिया ने कहा कि 'हमें सिद्धांतों को सर्वोच्च स्थान देना चाहिए, फिर संगठन को और आखिर में व्यक्ति को।' पक्षांतर्गत अनुशासन की अपनी मान्यता को स्पष्ट करने के लिए लोहिया ने बुद्ध के एक कथन को उलट कर प्रस्तुत किया, 'धर्मम् शरणम् गच्छामि, संघम् शरणम् गच्छामि, बुद्धम् शरणम् गच्छामि।'

राष्ट्रीय समिति ने जिसे अनधिकृत घोषित कर दिया था उस प्रांतीय-गाजीपुर-अधिवेशन को संपन्न करने के अपने फैसले पर दृढ़ रहकर उत्तर प्रदेश पक्ष-शाखा ने राष्ट्रीय समिति को प्रकट आह्वान ही दिया था। उड़ीसा की प्रांतीय समाजवादी युवक सभा ने मधु लिमये की अध्यक्षता में पुरी में अपना सम्मेलन आयोजित कर उत्तर प्रदेश पक्ष समिति का अनुकरण किया। वैसे नियमतः उड़ीसा की समाजवादी युवक सभा अपने आप में स्वायत्त

संगठन था, अर्थात प्रजा समाजवादी पक्ष की प्रांतीय शाखा नहीं थी। युवक सभा ने अपने सम्मेलन में अशोक मेहता को भी आमंत्रित किया था। उन्होंने सभा को लिखा कि 'मधु लिमये पर अनुशासनिक कार्यवाही करने का अभिप्राय एक ही है कि उन्हें किसी भी तरीके से कोई भी मंच उपलब्ध न हो और न कराया जा सके; इसलिए जहां लिमये उपस्थित होंगे वहां पक्ष नेता नहीं होंगे। बस !' परंतु लोहिया इस सम्मेलन के लिए पहुंचे थे।

इस प्रकार पक्ष का एक गुट कांग्रेस से सहयोग के लिए आमादा था; इसी समय मणिपुर के समाजवादी कार्यकर्ता केंद्रीय कांग्रेस सरकार के विरोध में मैदान-ए-जंग में उतर आए थे। जब तक मणिपुर रिसायत भारत में विलीन नहीं हुई थी तब तक वहां प्रतिनिधि सरकार थी, परंतु विलीनीकरण के पश्चात इसे बरखास्त कर वहां एक सलाहकार समिति नियुक्त की गई। नवंबर 1954 से मणिपुर में प्रजा समाजवादी पार्टी के नेतृत्व में आंदोलन जारी था कि यहां चुनाव कराते हुए जन प्रतिनिधियों की सरकार गठित की जाए। केंद्र सरकार की कोशिश थी कि हर हालत में इस आंदोलन को सफल न होने दिया जाए। अपनी समूची शक्ति इसके दमन में लगाने पर केंद्र सरकार उतारू थी। दो हजार से अधिक आंदोलकों को गिरफ्तार किया जा चुका था। मणिपुर के कार्यकर्ताओं की इच्छा थी कि पार्टी का कोई ज्येष्ठ सदस्य इस आंदोलन का नेतृत्व करे। अपने और अपने अनुयायियों के पक्षांतर्गत अस्तित्व के खतरे के बावजूद, अप्रैल 1955 में लोहिया मणिपुर आंदोलन में कूद पड़े। मणिपुर की राजधानी इम्फाल में आपने एक सभा का आयोजन किया था, सभा में बड़ी भारी भीड़ थी, दफा 144 पहले से जारी था, लोहिया को सभा स्थान पर पहुंचते ही गिरफ्तार किया गया।

अपनी गैरकानूनी गिरफ्तारी के लिए लोहिया ने हेबिआकार्पस एक्ट के तहत न्यायालय में आवेदन दे दिया। आवेदन मंजूर कर दिया गया और न्यायालय ने लोहिया को रिहा कर दिया परंतु जेल के बाहर कदम रखते ही आपको स्थानबद्ध कर लिया गया। लोहिया ने अपनी गिरफ्तारी के विरुद्ध उच्च न्यायालय में आवेदन किया परंतु आवेदन की सुनवाई से पहले ही आपको रिहा कर दिया गया। इससे पहले लोहिया दो बार अपनी गैरकानूनी गिरफ्तारी के विरोध में न्यायालयीन विजय पा चुके थे। इस समय की तीसरी विजय थी।

एक ओर लोहिया मणिपुर में आंदोलन तीव्र गति से चला रहे थे और दूसरी ओर प्रजा समाजवादी पार्टी में लोहिया के विरोध में कुप्रचार का मानो अभियान चलाया जा रहा था। राष्ट्रीय समिति ने लोहिया पर निंदाव्यंजक प्रस्ताव ही पारित कर लिया था। इसी दरम्यान राष्ट्रीय समिति की ओर से अनधिकृत कर दिया गया गाजीपुर-उत्तर प्रदेश पक्ष शाखा का अधिवेशन भी संपन्न हुआ। लोहिया अधिवेशन में उपस्थिति थे। अपने भाषण में नवीन समाजवादी पक्ष की आवश्यकता का प्रतिपादन करते हुए आपने कहा कि "प्रजा

समाजवादी पार्टी के पैर अब लगातार लड़खड़ा रहे हैं, कभी कांग्रेसियों और कभी कम्युनिस्टों का सहारा लिए बिना पार्टी खड़ी भी नहीं हो पा रही है। कांग्रेस में विलीनीकरण, कांग्रेस से सहयोग और कांग्रेस के साथ संयुक्त सरकार, ये तीनों विचार एकदम गलत हैं, एक से एक खतरनाक हैं। इन्हीं विचारों ने पार्टी को पंगु बना दिया है। इसलिए अब यह बहुत आवश्यक हो गया है कि अन्याय का विरोध करते हुए समाजवाद को स्थापित कर सकने वाली नवीन समाजवादी पार्टी को गढ़ा जाए।"

यहां तक आते आते पक्षांतर्गत संघर्ष अपनी पराकाष्ठा पर पहुंच चुका था, पार्टी के केंद्रीय कार्यालय ने पार्टी के किसी भी मंच से कार्यकर्ताओं और जनता को संबोधित करने के लिए लोहिया को अपात्र करार दिया। अशोक मेहता की हिदायत पर बंबई और बिहार की पक्ष शाखाओं ने अपनी अपनी उपशाखाओं के नाम आदेश जारी किए कि किसी भी हालत में, किस भी कार्यक्रम के लिए लोहिया को आमंत्रित न किया जाए।

भारत में समाजवाद की साफ और स्पष्ट प्रतिमा गढ़ने तथा प्रजा समाजवादी पार्टी को समाजवाद का प्रभावशाली साधन बनाने के प्रयत्नों में लोहिया वाकई अकेले रह गए। आचार्य नरेंद्रदेव, आचार्य कृपलानी और जयप्रकाश नारायण जैसे प्रभावशाली और वरिष्ठ नेताओं का साथ वे कभी नहीं पा सके। जयप्रकाश अब तक पक्षांतर्गत कलह में नहीं थे परंतु अबकी बार आपने लोहिया को फूटवादी करार करते हुए कहा कि 'अगर मैं कांग्रेस का अध्यक्ष होता तो इस फूट डालने के उपलक्ष्य में लोहिया को स्वर्ण पदक देकर सम्मानित करता!' आचार्य नरेंद्रदेव ने भी तटस्थता का त्याग करते हुए आंध्र प्रदेश प्रजा समाजवादी पार्टी को कांग्रेस के साथ चुनाव-संधि करने की अनुमति दे दी और अशोक मेहता की भूमिका का सक्रिय समर्थन किया। न नरेंद्रदेव, न कृपलानी और न ही जयप्रकाश ने यह प्रयास किया कि लोहिया द्वारा उपस्थित किए गए नीति विषयक प्रश्नों का शाश्वत समाधान ढूंढ़ लें।

लोहिया की ओर से पक्ष में जो संघर्ष चलाया जा रहा था उसका वास्तविक स्वरूप कुछ यों था —क्या यह वाकई जरूरी था कि कांग्रेस के आवडी अधिवेशन में पारित समाजवादी समाज रचना के प्रस्ताव के कारण प्रजा समाजवादी पार्टी अपनी कांग्रेस विषयक नीति में परिवर्तन कर ले? इस प्रश्न का समाधान तुरंत ढूंढ़ने के बजाय पार्टी की राष्ट्रीय समिति ने अपने जयपुर अधिवेशन जून 1955 में लोहिया की पक्ष सदस्यता स्थगित रखने का फैसला किया था। इससे पहले एक साल से जयप्रकाश भूदान आंदोलन में शरीक हो गए थे और प्रजा समाजवादी पार्टी से अब वे नामंशेष संबंधित रह गए थे। ऐसी परिस्थिति में सब कुछ विलक्षण घटित हुआ—नामशेष सदस्य जयप्रकाश इसलिए समाजवाद के प्रकाश में आए थे कि लोहिया को पक्ष से निकाल देने की बात वे चलाएं और राष्ट्रीय समिति ने भी जयप्रकाश के इस अधिकार को सिर आंखों पर स्वीकार किया था सब कुछ आश्चर्य-मय था!

अनेक बड़े समाचार पत्र भी इस घटना को नजरअंदाज नहीं कर सके। बंबई के 'फ्री प्रेस जर्नल' ने लिखा कि लोहिया को पार्टी से निकाल देने मात्र से प्रजा समाजवादी पार्टी अपने संकट से मुक्त नहीं हो सकती। राष्ट्रीय समिति के निर्णय से यही सिद्ध होता है कि पार्टी कार्यकारी समिति पक्षांतर्गत जनतंत्र को तब तक ही मानती है जब तक विरोध मूक रहता है। लगता है कि पार्टी ने जनतंत्र पर 'केवल निर्यात के लिए' का लेबल चिपका दिया है। 'पटना के इंडियन नेशन' ने इस पर टिप्पणी करते हुए लिखा कि 'प्रजा समाजवादी पार्टी कांग्रेस पर सिर्फ भौंकना जानती है; काटना नहीं चाहती और डॉ0 लोहिया कांग्रेस को काटना भी चाहते हैं, सिर्फ भौंकना इन्हें मंजूर नहीं है। हमारी दृष्टि में लोहिया को निकाल देने के निर्णय से पार्टी कमजोर हुई है।' कलकत्ता के 'हिंदुस्तान स्टैंडर्ड' के स्तंभलेखक 'रिपब्लिकन' ने नई पार्टी का स्वागत करते हुए लिखा कि, 'प्रजा समाजवादी पार्टी का नेहरू पर अवलंबित रहना और परिणामतः जनतंत्र की परिणति तानाशाही में होना किसी भी हालत में योग्य नहीं है।' बंबई के 'टाइम्स आफ इंडिया' ने लिखा कि 'प्रजा समाजवादी पार्टी इतनी ताकतवर कभी नहीं थी कि अपने पैरों पर खड़ी रह सके, और इसमें कभी यह आत्मविश्वास तक न था ! प्रजा समाजवादी पार्टी के संबंध में लोहिया का यह कथन एकदम चस्पां है कि यह पार्टी कभी 'दाएं' झुककर चलती है तो कभी 'बाएं'!'

अनेक पार्टी शाखाओं ने लोहिया के निष्कासन का विरोध किया। कई शाखाओं ने इस समस्या के समाधान के लिए पार्टी के राष्ट्रीय सम्मेलन को तुरंत आमंत्रित किए जाने की मांग की। परंतु इसके कोई आसार नजर नहीं आ रहे थे। लोहिया और लोहियानुयायियों के सामने अब विकल्प थे कि या तो राष्ट्रीय समिति के शरणागत बन जाएं या राजनीति से संन्यास लें या दोनों से हटकर तीसरा विकल्प था कि नए दल की स्थापना करें; या अन्य किसी पार्टी में मिलें। लोहिया ने नई पार्टी की स्थापना को उचित मानकर, इसी दिशा में काम शुरू कर दिया।

नवीन पक्ष की स्थापना के संदर्भ में अपने एक भाषण में लोहिया ने कहा कि 'प्रजा समाजवादी पार्टी के नेतृत्व में दुविधा थी कि प्रजा समाजवादी पार्टी को कांग्रेस का पर्याय समझें या कांग्रेस की मरम्मत करने वाली पार्टी मात्र समझें और इसी वैचारिक दुविधा की परिणति वर्तमान पक्ष विभाजन के संकट तक हमें ठेलने में हुई है।' नवीन पक्ष की वैचारिक धारणाओं को स्पष्ट करते हुए लोहिया ने कहा था कि 'मुझे विश्वास है कि नई पार्टी जाति-पांति, पैसा, मौकेबाजी, आदि को नहीं अपनाएगी और हम वह पार्टी बनाने में सफल होंगे जिस पर पूरा देश गौरव अनुभव करेगा। कथनी और करनी पर समान बल देने की बात को सूत्रबद्ध करते हुए लोहिया ने कहा कि 'बिना विचार के कृति कर्मकांड है तो बिना कृति के विचार पाखंड !'

दिल्ली, मैसूर, मद्रास, मध्य भारत, विंध्य प्रदेश, मणिपुर, बिहार, बंबई, हैदराबाद, आंध्र प्रदेश की विभिन्न स्तर की पक्ष शाखाओं ने और अनगिनत कार्यकताओं ने नई पार्टी का स्वागत किया, कुछ प्रदेशों-प्रांतों में नई पार्टी की नींव तक रखी गई। लड़ाकू समाजवादी नवोदित पार्टी के लिए हजारों की तादात में कटिबद्ध तो हो गए थे परंतु कई कार्यकर्ताओं के पैर तब डगमगाए जब प्रजा समाजवादी पार्टी को त्यागने का प्रसंग साक्षात हुआ, और हर एक ने अपना अपना अलग कारण भी बताया।

17

नई चुनौती

नए पक्ष की स्थापना और अकेले इसका नेतृत्व करने की चुनौती निश्चय ही लोहिया के जीवन में युगांतरकारी मोड़ था। लोहिया ने अपनी शक्ति और कौशल के साथ इस चुनौती को सफलता के साथ निभाया। प्रजा समाजवादी पार्टी में से एक भी वरिष्ठ नेता इस बांके अवसर पर लोहिया के साथ नहीं था। परंतु द्वितीय श्रेणी के, कई प्रांतीय-नेता और युवा, बुद्धिमान और जिद्दी हजारों कार्यकर्ता आपके साथ थे। खासकर हिंदी भाषीय प्रदेशों—उत्तर प्रदेश, बिहार, राजस्थान, मध्य प्रदेश—से सर्वसाधारण जनों का लेकिन तगड़े कार्यकर्ताओं का एक बहुत बड़ा दल लोहिया के साथ था। बावजूद इन सबके नई पार्टी चलाना निश्चय ही बहुत बड़े साहस की बात थी। समाज के प्रस्थापित वाचा-वीरों में लोहिया के विरोधियों की संख्या अधिक थी, मित्र बहुत कम थे। स्वयं लोहिया और उनके 'लड़ाकू' समाजवादी अनुयायी वैसे साधनहीन ही थे। परंतु दो बातों का बहुत बड़ा बल आपके साथ था। अभंग वैचारिक निष्ठा और जुझारू, क्रांतिदर्शी, दुर्दम्य इच्छाशक्ति की कोई कमी न थी। साथ ही राष्ट्रवादी, सहनशील, जिद्दी और युयुत्सु जनतंत्रात्मक समाजवादी पार्टी की आवश्यकता को महसूसने वाली जनता की अनंत सद्भावनाएं भी लोहिया के साथ थीं।

नवीन समाजवादी पार्टी की स्थापना के लिए, दिसंबर 1955 के आखिरी सप्ताह में, हैदराबाद में सम्मेलन संपन्न हुआ। यह स्वाभविक था कि सम्मेलन के अध्यक्ष लोहिया ही हों। भारत के सभी प्रदेशों से प्रतिनिधि सम्मेलन में उपस्थित थे। जिस तरह लोहिया के पचमढ़ी का अध्यक्षीय वक्तव्य समाजवादी साहित्य का महत्वपूर्ण दस्तावेज था उसी तरह हैदराबाद सम्मेलन के अध्यक्ष पद से दिया गया उनका भाषण भी! पचमढ़ी के वक्तव्य में जनतंत्रात्मक समाजवादी विचारधारा के आधारभूत तत्वों की ही सुविहित और तर्कसंगत प्रस्तुति थी तो हैदराबाद के भाषण में पचमढ़ी से हैदराबाद तक की विचारयात्रा के सिलसिले में पक्षांतर्गत और पक्षबाह्य कई घटनाओं को लेकर मौलिक और सुसूत्र विचार भरे पड़े हैं।

पक्षांतर्गत अनुशासन और विचार-स्वातंत्र्य को लेकर लोहिया ने अपने वक्तव्य में एक मौलिक मुद्दा उठाया था, "जब और जहां पक्षांतर्गत जनतंत्र का अंत होता है तब और वहां देश जनतंत्र का आरंभ होता है। जनतंत्र का यही अभिप्राय है कि जब जब बहुमत और अल्पमत में संघर्ष छिड़ता है तब तब अल्पमतानुयायियों को चाहिए कि वे विजय के लिए प्रयत्नों की पराकाष्ठा करें और हार को सहने-झेलने की शक्ति भी रखें।"

समाजवाद की प्रस्थापना के लिए सशस्त्र विद्रोह और सविनय और शांतिपूर्ण सामूहिक प्रतिकार के औचित्य-अनौचित्य पर विचार व्यक्त करते हुए आपने कहा था, "इस बहाने आपको एक कठोर यथार्थ का अहसास दिलाता हूं! फिलहाल हमारे सम्मुख सवाल है कि क्रांति संगठन हिंसा के आधार पर की जाए अथवा अहिंसा के ! क्रांति के अंतिम पड़ाव पर हिंसा का प्रयोग किया जाए अथवा न किया जाए, यह प्रश्न अप्रस्तुत और महत्वहीन है। इस तरह का प्रश्न उसी तरह बेमानी है कि नवजात शिशु की अंत्येष्टि किस तरह की जाए ?" अहिंसक क्रांति को सही क्रांति न मानने वालों के भ्रम को निरस्त करते हुए लोहिया ने कहा था, "अहिंसात्मक क्रांति में जितना महत्व अहिंसा का है उतना ही क्रांति का !"

मार्क्सवाद और गांधीवाद के अपने आप को वारिस मानने वाले समाजवादियों को लोहिया ने आगाह किया कि 'समाजवाद को इसकी कतई जरूरत नहीं कि वह अपने आपको गांधी अथवा मार्क्स का समर्थक या विरोधक कहलाए !' इसके उपरांत लोहिया ने गांधी हत्या के बाद के गांधीवादी या सर्वोदयवादी विचारों का मार्मिक विच्छेदन करते हुए कहा, "आज के यथार्थ जीवन में न गांधीवाद उपयोगी और सार्थक है और न मार्क्सवाद, दोनों ही निर्जीव हैं। निर्वीर्य गांधीवादी अमीरों के हृदय परिवर्तन की आशा लगाए बैठे हैं, गरीबों के हृदय परिवर्तन का उन्हें जरा भी भान नहीं है। वर्ग संघर्ष को तूल देने वाले मार्क्सवादी वर्ग संघर्ष की चर्चा तो जोरदार करते हैं लेकिन उसका वर्ग संघर्ष भविष्य के उद्देश्यों के लिए होता है, वर्तमान दुर्दशा पर वे चूं तक नहीं कहते।"

लोहिया ने समाजवाद क्या है और क्या नहीं है इसका तर्कसंगत तथा सुसूत्र विवेचन करते हुए कहा कि, 'ऊंचों के बारे में क्रोध भी समाजवाद नहीं है और नीचों के बारे में अलगाव भी ! शोषण के विरोध में क्रोध और कनिष्ठों के प्रति करुणा का नाम समाजवाद है।'

भारतीय राजनीति में विरोधी पक्षों की स्थिति का विश्लेषण करते हुए लोहिया ने कहा था कि 'विरोधी पक्ष नैमित्तिक, संकुचित, मर्यादित और खंडित आंदोलन चलाते हैं। जब तक सारे विरोधी दल अपनी राजनीति में सम्यक दृष्टिकोण को स्वीकार नहीं करते हैं तब तक सही मायने में विरोधी पक्ष नहीं बनेगा।' राजनैतिक पक्षों के संबंध में जनता के दृष्टिकोण का विश्लेषण करते हुए आपने कहा था कि 'विरोधी पक्षों का मूल्यांकन उनकी राजनैतिक क्रांतिकारी प्रवृत्तियों के आधार पर नहीं किया जाता, बल्कि जो पक्ष सिफारिश करते हुए सरकारी पत्तल में से जितनी अधिक जूठन पा सकता है वही पक्ष उतना ही

अधिक अच्छा आंका जाता है।'

'आजकल विरोधी पक्ष और सरकार तथा प्रस्थापित हित संबंधियों के बीच झूठमूठ की लड़ाई या मिली-जुली कुश्ती चल रही है।' अपने इस विचार को विस्तार देते हुए लोहिया ने कहा कि "अब हमारा संघर्ष उस व्यवस्था के विरोध में शुरू हुआ है जहां आर्थिक, सामाजिक और प्रशासकीय सत्ता मुट्ठी भर लोगों के हाथ में है। इसे पूरी ताकत और जिद्द के साथ लड़ना है, इसलिए यह आवश्यक है कि राजनीति के प्रवाह से बाहर खड़ी तीन चौथाई जनता को सामुदायिक जीवन के मंच पर एकत्रित किया जाए क्योंकि इसी जनता के हाथों भावी इतिहास का निर्माण होने वाला है। आज तक एक वस्तु के नाते ही नहीं बल्कि एक निर्माता के नाते समाज के जिस दलित, पिछड़ी जाति-जनजातियों, स्त्रियों और अन्य जनों को नकारा गया है उनके बनने, फलने-फूलने के लिए उच्च वर्ग की जनता को आज खाद बनने का काम करना है।"

आत्मविश्वास की कमी, झटपट सत्ता हासिल करने की लालसा और अवसरवादिता के कारण सामयिक राजनीति में संयुक्त मोर्चा बांधने की नीति घुस आई थी; संयुक्त मोर्चा के कारण प्राप्त सत्ता के पीछे जनता का सही सही बल कभी नहीं रहता, वह तो चंद नेताओं की एकत्रित सत्ता होती है। इसे प्रतिपादित करते हुए लोहिया ने कहा था कि 'वह विरोधी पक्ष राजनीति में कभी कारगर सिद्ध नहीं होता जो कोटि कोटि जनता के दृढ़ संकल्प में निहित शक्ति की आकांक्षा के बदले सरकारी शक्ति और इससे प्राप्त होने वाले प्रभाव की इच्छा रखता है।'

लोहिया ने इस तरह अपने नए पक्ष को भारतीय राजनीति के बहुत बड़े दोष से बचा ले जाने का प्रयास किया था। सामयिक राजनीति वरिष्ठ नेताओं की चापलूसी, जालसाजिशों, दांवपेंचों और किसी से भी समझौता कर लेने की प्रवृत्तियों के जरिए सत्ता हासिल करने और अधिकार पदों को बटोरने की प्रवृत्तियों के कारण खोखली और रोगग्रस्त बनी हुई थी। लोहिया की मान्यता थी कि विरोधी पक्ष को ऐसे जर्जर मार्गों द्वारा सत्ता के लिए उतावली करना नहीं चाहिए। साथ ही लोहिया जानते थे कि समाज क्रांति के लिए सत्ता सहायक साधनभूत हो सकती है इसलिए बहुत दूर भी नहीं और बहुत निकट भी नहीं ऐसा 'सात सालों में सत्ता' का लक्ष्य उन्होंने अपनी पार्टी के सामने रखा था। लोहिया का प्रयास सत्ता की अनिवार्यता और I के लिए अधीरता के बीच संतुलन बनाए रखने का था। इसलिए लोहिया ने 'सात सालों में सत्ता' के नारे के साथ शत वार्षिक संघर्ष के कार्यक्रम का जोड़ बिठाया था और कार्यकर्ताओं को आगाह किया था कि 'संभव है कि अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए हमें सौ सालों तक प्रतीक्षा करनी पड़े।'

त्रावणकोर-कोचीन के कुख्यात गोलीबारी कांड से उद्भूत समस्या के संदर्भ में लोहिया का निवेदन था कि 'जब तक सरकार और जनता अपनी अपनी मर्यादाओं का भान रखते हुए व्यवहार नहीं करती है तब तक पुलिस और भीड़ के पारस्परिक संबंधों का नियमन संभव नहीं होगा।'

न नए पक्ष के पास और न स्वयं लोहिया के पास अन्य कोई पर्याय था इसलिए उन्होंने पक्ष का संगठनात्मक अध्यक्ष बनना कबूल किया था। नई जिम्मेदारी को निभाने के लिए लोहिया कटिबद्ध हुए और इसके लिए आपने अथक परिश्रम भी किए। लगातार कार्यक्रम देते हुए उन्होंने अपने कार्यकर्ताओं को हमेशा क्रियाशील और गतिशील रखा। कार्यकर्ताओं के प्रशिक्षण के साथ सुसूत्र संगठन को बनाने के प्रयत्नों के साथ लोहिया को पक्ष के संविधान, सिद्धांतों और नीति नियमों की रखवाली भी करनी थी।

18

लड़ाकू पक्ष के लड़ाकू नेता

नए पक्ष की स्थापना के कुछ ही दिनों बाद उसके लड़ाकूपन की प्रतीति होने लगी थी; मार्च 1956 में लखनऊ में उत्तर प्रदेश के एक लाख किसानों के विराट मोर्चे का आयोजन किया गया था, इसी तरह बिहार में भी सत्याग्रह आंदोलन छिड़ गया था इसमें पांच हजार प्रतिकारकों का सहयोग था, जो अधिकांश गरीब और उपेक्षित वर्गों में से थे। इसी दरम्यान महाराष्ट्र के समाजवादी नेता मय बंबई अलग से मराठी भाषी राज्य की मांग का पुरजोर आंदोलन 'संयुक्त महाराष्ट्र आंदोलन' के नाम से चला रहे थे। उत्तर प्रदेश के समाजवादियों ने इसलिए आंदोलन छेड़ा था कि काशी के विश्वेश्वर के मंदिर में हरिजनों को प्रवेश मिले।

पक्ष कार्यकर्ताओं के साथ नेताओं को भी कृतिशील बनाए रखने के लिए प्रतिमास चिट्ठियां-गश्ती चिट्ठी भेजा करते थे, जिनका सामूहिक पाठ किया जाता था। अपने वैयक्तिक अवांछित दोषों, आदतों के प्रति सतर्क और सजग रहने का आह्वान लोहिया अपने कार्यकर्ताओं को लगातार दिया करते थे। सार्वजनिक जीवन में काम करने वालों के अवांछित दोष की मार्मिक पहचान करते हुए एक गश्ती चिट्ठी में आपने लिखा था कि 'हम, लगभग सभी लोग समाज के कनिष्ठ मध्यवर्ग से आए हैं और हमारी आंखें उच्च वर्ग के लोगों की ओर लगी रहती हैं। नेता बनने की प्रक्रिया में कार्यकर्ता नेताओं की जीवन-पद्धति की नकल उतारने लगते हैं। स्त्री-पुरुष कार्यकर्ताओं के पारस्परिक संबंधों के विषय में लोहिया ने स्पष्ट कर दिया था कि, 'मुक्त आचरण और उच्छृंखल आचरण में जमीन-आसमान का अंतर है, इसका भान लगातार रहना चाहिए।'

लोहिया ने अनुभव किया कि पार्टी में भाषणवीरों, सत्याग्रहवीरों की कोई कमी नहीं है लेकिन रचनावीरों, संगठनवीरों और विचारवीरों की अच्छीखासी कमी अवश्य है। इसलिए अपनी एक गश्ती चिट्ठी में आपने अपने आप से एक सवाल करने के रूप में मशविरा देते हुए लिखा था कि 'कहीं यह तो नहीं हो रहा है कि घोड़ा तो कब का मरा हुआ पड़ा हुआ है और मुझ जैसे बेवकूफ उसे दौड़ाने के प्रयत्नों में कोड़े लगा रहे हैं।'

नए पक्ष की स्थापना के कुछ ही महीनों बाद लोहिया अपने स्वभाव के अनुसार स्वप्न देखने लगे। इनमें से एक स्वप्न मासिक चलाने का था। 'कम से कम संकुचित और अधिक से अधिक विश्वव्यापक उद्देश्यों की लगातार खोज, संसार के सत्य स्वरूप को उद्‌घाटित और भविष्य का अन्वेषण करने वाला एक विचारपत्र चलाने की' आपकी योजना थी। आप यह भी चाहते थे कि मासिक की सार्थकता मात्र विचारपीठ बनकर रह जाने में नहीं है, इसे मानव जाति की नई रचना के प्रयत्नों में अंतर्राष्ट्रीय कृतिपीठ भी बनना है। आपके संपादकत्व में 'मैनकाइंड' नाम से अंग्रेजी और 'जन' नाम से हिंदी मासिक का प्रकाशन होने लगा। भारत के किसी भौगोलिक केंद्रवर्ती स्थान में एक अंतर्राष्ट्रीय समाजवादी विद्यालय चलाने का भी स्वप्न लोहिया ने देखा था लेकिन जो कभी साकार नहीं हो पाया।

लोहिया अपने आपको झाडूवाला समझते थे और आपने जिंदगीभर व्रतस्थ होकर राष्ट्रीय जीवन और समाजवादी आंदोलन में व्याप्त कूड़ा-करकट साफ करने का काम किया है। लोहिया ने अपनी अध्यक्षीय कालावधि में राजनैतिक दलों की वर्तुल परिषद जिसमें प्रतिनिधि कार्यकर्ताओं का समावेश था, की कल्पना चलाई। अपनी कल्पना को स्पष्ट करते हुए लोहिया ने कहा था कि 'प्रस्तुत परिषद का यह उद्देश्य कतई नहीं है कि सम्मिलित होकर किसी राजनैतिक कार्यक्रम का आयोजन किया जाए। परिषद का अपना सीमित हेतु इतना भर है कि राजनैतिक पक्षों में फैले कपट, असत्य, सौदेबाजी, अवसरवादिता, पाखंड, ढोंग, मुट्ठी भर नेताओं में केंद्रित सत्ता, आश्वासन-भंग, जैसी गंदी प्रवृत्तियों पर रोक लगाना है। राजनैतिक पक्षों को चाहिए कि वे अपने सदस्यों को सही संख्या, संगठन की सत्य स्थिति, पक्षनिधि का लेखा-जोखा जाहिर करें। एक पक्ष जिस व्यक्ति को चुनाव-टिकट नहीं देता, दूसरा पक्ष उसी व्यक्ति को अपना प्रतिनिधि न बनाए। अगर कोई सदस्य संसद या विधान सभा का सदस्य है और पार्टी छोड़ना चाहता है तो सब से पहले वह अपने संसद अथवा विधान सभा सदस्यत्व का त्यागपत्र दे। सभी राजनैतिक पक्षों को चाहिए कि वे सरकार और जनता की ओर से किए जानेवाले हिंसाचार का संयुक्त होकर विरोध करें। आपसी प्रचार सभाओं को उखाड़ने की कोई हरकत न करें, इन सारे मुद्दों पर समान मंच पर विचार करते हुए निर्णय किया जा सकता है।'

परंतु लोहिया की वर्तुल परिषद की कल्पना की अन्य पक्षों ने उपेक्षा ही की !

लोहिया की नाविन्यपूर्ण कल्पना थी कि नव प्रस्थापित समाजवादी पार्टी का पहला वार्षिक सम्मेलन भारत के भौगोलिक मध्यबिंदु पर पड़ने वाले किसी स्थान पर किया जाए। इसके मुताबिक सीहोर, मध्य प्रदेश में जनवरी 1956 में चार दिवसीय सम्मेलन आयोजित किया गया था। लोहिया अध्यक्ष थे। अपने अध्यक्षीय वक्तव्य के बाद शेष तीन दिनों में मुश्किल से कुछ घंटे ही लोहिया सम्मेलन में उपस्थित रहे होंगे। नए पक्ष की स्थापना के बाद पहले वर्ष में समाजवादी पार्टी यानी 'सब कुछ लोहिया पार्टी' इस तरह का समीकरण बना हुआ था। लोहिया के युवा सहयोगी विचार करते हुए निर्णय करने का उत्तरदायित्त्व लोहिया पर लादे जा रहे थे। जिम्मेदारी से कन्नी काटने का परिणाम यों होता गया कि

व्यक्तिगत दबाव में निर्णय तो किए जा रहे थे परंतु इन पर अमल कतई नहीं हो पा रहा था। अपने सहयोगियों को स्वतंत्र वैचारिक धरातल पर निर्णय करने की क्षमता प्राप्त हो इसलिए लोहिया ने अधिवेशन के कामकाज से अपने को अलग रखा था।

अपने अध्यक्षीय वक्तव्य में सत्ता प्राप्ति के नजदीकी मार्गों को खोजने की प्रवृत्ति पर टिप्पणी करते हुए लोहिया ने कहा था कि "क्या चालाकी के उपायों से देश का बदलाव संभव है ? जब तक कार्यकर्ताओं के मन में परिवर्तन नहीं होता तब तक देश की राजनीति की बुनियाद नहीं बदलेगी, और देश भी नहीं बदलेगा ! नजदीकी रास्ते की खोज सिवा मृगजल के अन्य कुछ भी नहीं है।"

समाजवादी पक्ष संपूर्ण समता के आदर्श को अपना लक्ष्य निर्धारित करे। अपने लक्ष्य की दिशा में संभव समता के सामयिक उद्देश्य को सिद्ध करने के प्रयास किए जाएं। अपने इस विचार को लेकर उन्होंने कहा था कि 'प्राथमिक पाठशालाएं सब के लिए एक जैसी और समान होनी चाहिए और यह बिलकुल संभव है, राष्ट्रपति के बच्चों और भंगी के बच्चों को एक ही पाठशाला में पढ़ाना चाहिए।'

इसी सम्मेलन में लोहिया ने अगले वर्ष के लिए अध्यक्ष पद की जिम्मेदारी अपने एक वरिष्ठ सहयोगी को सौंपी। अपने एक वर्ष की अध्यक्ष पद की अवधि में लोहिया ने आदर्श समाजवादी पक्ष के वैचारिक और व्यावहारिक कार्यक्रमात्मक दिशाओं को काफी स्पष्टता दी।

संसद के और सभी राज्यों की विधानसभाओं के आम चुनाव (1957) समीप थे। समाजवादी पार्टी की निर्धारित नीति थी कि अन्य किसी पार्टी के साथ संयुक्त रूप में अथवा स्थानों का बंटवारा करते हुए चुनाव को जो प्रभावशाली भी थे पार्टी की 'एकला चलो रे' नीति रास नहीं आई थी। लोहिया ने सजग कर दिया था कि 'इस अवसर पर पार्टी की नीति और संविधान की रक्षा का उत्तरदायित्व पार्टी के पदाधिकारियों पर है। जिन्हें पार्टी की वर्तमान चुनाव नीति पसंद नहीं है, वे अपने मत का प्रचार जरूर कर सकते हैं, और राष्ट्रीय समिति को सलाह दे सकते हैं परंतु जब तक पार्टी-नीति में परिवर्तन नहीं होता है तब तक कोई पार्टी-सदस्य निर्धारित नीति के विरोध में काम नहीं करे।'

इस समय एक व्यांवहारिक मुद्दा उठा कि जिस मतदाता-क्षेत्र में पार्टी का अपना उम्मीदवार न हो वहां के लिए क्या नीति अपनाई जाए ? लोहिया का मशविरा था कि 'समाजवादी पक्ष यह स्वीकार नहीं करता कि समाजवादी पक्ष के अतिरिक्त अन्य कोई पक्ष सही मायनों में विरोधी पक्ष है इसलिए जहां समाजवादी पार्टी का उम्मीदवार नहीं है वहां मतदाताओं का परम कर्तव्य है कि वे अपना मत लौटा दें, लेकिन इसका अभिप्राय यह नहीं है कि आलसीपन और बेफिक्री के कारण मतदान ही न किया जाए क्योंकि यह काम जनतंत्र-विरोधी है। साथ ही अपना मत लौटाने के संकट का मतदाताओं को आइंदा भी, बार बार सामना न करना पड़े इसलिए पार्टी को चाहिए कड़ी मेहनत करते हुए हर संभव स्थान पर अपने उम्मीदवार को प्रत्याशी बनाए।'

लोहिया की मान्यता थी कि 'समाजवादी पार्टी चुनाव को न केवल सत्ता प्राप्ति का परंतु विचार परिवर्तन और जनता की सार्वभौम इच्छा शक्ति की अभिव्यक्ति का साधन भी मानती है। इसीलिए अगल-बगल की राजनैतिक दलदल में धंस जाने के खतरे के बावजूद समाजवादी पार्टी अपने मकसद के खातिर यह जोखिम उठाएगी।'

इसी वैचारिक अधिष्ठान और सिद्धांतनिष्ठा के बल पर समाजवादी पार्टी ने द्वितीय आम चुनाव लड़े। पार्टी के लिए यह अवसर अग्निपरीक्षा का था; पार्टी की 'एकला चलो रे' की नीति के विरोध में कोई विद्रोह नहीं हुआ परंतु इसका अपेक्षित परिणाम भी स्पष्ट हुआ। पार्टी ने संसद के लिए 33 स्थानों पर चुनाव लड़े और 9 स्थानों पर इसके उम्मीदवार विजयी हुए तो विधान सभा के कुल 335 स्थानों में से 55 स्थानों पर विजय प्राप्त की, जो चाहे थे उसकी तुलना में प्राप्त स्थान बहुत ही कम थे। चुनाव परिणामों पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए लोहिया ने कहा था कि 'अभी समूचे देशभर में अकेला समाजवादी पक्ष ही स्वयं अपने बल पर, अकेले चुनाव लड़ने वाला पक्ष है, और सिद्धांतनिष्ठा तो हमेशा ही अकेली रही है, अतीत की तुलना में अबकी बार पार्टी ने दुगने स्थानों पर विजय पाई है, धीरे धीरे आगे बढ़ रही है, गंगा-गोदावरी के इलाके में पार्टी ने अपना खूंटा गाड़ लिया है।'

यह पहला अवसर था कि लोहिया चुनाव के मैदान में उतरे थे, वैसे 1937 में उस समय की केंद्रीय असैंबली के लिए कांग्रेस के उम्मीदवार के नाते आपकी नियुक्ति हुई थी परंतु इस तरह से नियुक्त सदस्य को 'ब्रिटिश राजमुकुट के प्रति एकनिष्ठा' की शपथ ग्रहण करनी पड़ती थी इसलिए लोहिया ने नियुक्ति अस्वीकार कर दी थी।

लोहिया का विश्वास था कि जनतंत्र में समाजवाद के लिए संघर्ष सड़क पर भी संभव है और संसद में भी। आपने फैसला किया कि संसद-शस्त्र की आजमाइश की जाए। आपने कहा कि, 'मैं विगत पंद्रह वर्षों से इस क्षण की प्रतीक्षा में था।' उत्तर प्रदेश के चकिया चंदोली संसदीय चुनाव क्षेत्र से 'पराभूत उम्मीदवारों के दुःख में सहभागी होने के लिए' आपने चुनाव लड़ा और तीस-पैंतीस हजार मतों से आप हार गए। खुले दिल से लोहिया ने अपनी हार कबूल की और कहा कि, 'पराभव का मानसिक सदमा तो होकर रहता है, मैं सोचता हूं कि आखिर यह सब क्या हो रहा है ? मुझमें और मेरी पार्टी में वह हिम्मत और आकर्षण हो जो सत्रह बार हार खाकर भी अठाहरवीं बार लड़ने के लिए तैयार मुहम्मद में थी। जो पक्ष सिद्धांतों पर चलता है वह कभी प्रसंगवश हार भी जाए लेकिन एक न एक दिन वह सफल भी होता है।

मुहम्मद की जिद्द के साथ लोहिया तन कर खड़े हो गए। प्रांतीय नेताओं और कार्यकर्ताओं का धैर्य भी टूट चुका था परंतु अधिकांश कार्यकर्ता पक्ष की लड़ाकू छवि का संरक्षण और संवर्धन करने के लिए लोहिया के साथ डटे हुए थे। चुनावों के दो-तीन महीनों के बाद ही जनता की मांगों के लिए लोहिया के नेतृत्व में देशव्यापी सत्याग्रह आंदोलन चलाया गया।

आंदोलन का नेतृत्व स्वयं लोहिया कर रहे थे। बिक्रीकर कानून रद्द किए जाने की

मांग के लिए लोहिया ने नवंबर 1957 में लखनऊ के बिक्रीकर कार्यालय के समाने प्रदर्शन किए। नियम के मुताबिक कथित अपराधी को रिमांड देने के लिए मैजिस्ट्रेट के सामने उपस्थित करना चाहिए था परंतु ऐसा न करते हुए पंद्रह दिनों के रिमांड पर लोहिया को सीधे जेल में रवाना किया गया। लोहिया ने रिमांड के विरोध में उच्च न्यायालय में शिकायत दर्ज की। रिमांड की अवधि की समाप्ति पर जब लोहिया को न्यायालय में ले जाने के लिए पुलिस वाले आए तब न्यायालय में चलने से साफ साफ मना करते हुए पुलिस से कहा कि 'आप लोगों ने न्यायालय के साथ मिलकर गैरकानूनी रिमांड की फैक्ट्री ही खोल रखी है।' आखिर ले-देकर बारह दिनों के बाद न्यायाधीश जेल में आए ताकि मामले की सुनवाई हो सके परंतु उच्च न्यायालय में दायर अपनी शिकायत का फैसला जब तक नहीं किया जाता तब तक मैजिस्ट्रेट के सामने आना लोहिया ने स्वीकार नहीं किया। लोहिया को जबरदस्ती ले जाने के इरादे से जब तीस-पैंतीस कैदियों और अठारह-बीस वार्डर्स को लेकर जेल पहुंचे तब पाया कि साथी सत्याग्रहियों पर निर्ममता से लाठियां चलाई गईं और उन्हें बैरकों में ठूंस दिया गया और लोहिया को जबरदस्ती कुर्सी में बिठाया गया और मैजिस्ट्रेट के सामने उपस्थित किया गया। लोहिया ने एक शब्द तक कहने से इनकार कर दिया, तब जबरदस्ती से उनकी मुट्ठी खुलवाकर एक कागज पर उनके अंगूठे का ठप्पा लगवा लिया गया।

इस कांड की पूरी हकीकत जैसे ही जेल के बाहर पहुंची उसी समय राजनारायण ने इलाहाबाद उच्च न्यायालय के लखनऊ खंडपीठ के सम्मुख एमिकस क्यूरी के तहत आवेदन दे दिया।

लोहिया का किया हुआ आवेदन पहले से उच्च न्यायालय में पड़ा हुआ था, दो न्यायमूर्तियों के सामने उसकी सुनवाई कराई गई। अपना मामला स्वयं लोहिया चला रहे थे। गैरकानूनी गिरफ्तारियां और रिमांड के चलते कानून की आड़ में किए जा रहे संविधान का भंग के काम देश में सरेआम जारी थे। इन अत्याचारों का शिकार साधारण गरीब और अशिक्षित जन आए दिन हो रहे थे। अपनी कैफियत के आरंभ के वक्तव्य में लोहिया ने कहा कि 'मैं किसी नेता के रूप में नहीं बल्कि साधारण नागरिक के नाते प्रार्थना करता हूं कि आप इस तरह के किए जा रहे नागरिक स्वाधीनता के खात्मे पर रोक लगाएं। जेल जाना मुझे जरा भी नहीं भाता लेकिन लाइलाज हूं, बचपन में गांधीजी का साथ मिला इसलिए आज अन्याय और शोषण को न झेल पाता हूं और न सह पाता हूं।'

लोहिया को बीच में ही टोकते हुए न्यायमूर्ति मुल्ला बोले, 'आप तो किसी नेता की भांति बोल रहे हैं !'

लोहिया ने जवाब में कहा कि 'नहीं नहीं ! मैं बहुत पीड़ित हूं ! मैं जब अपने अंगूठे को देखता हूं तब समझ नहीं पाता कि यह आखिर झुका किस तरह होगा ? देश के हजारों पीड़ितों की ओर से मैं यहां पेश हुआ हूं, आशा है कि आप पर ऐसा अवसर कभी न आए!'

'कौन जाने !' मुल्ला सहजभाव से बोले।

लोहिया ने आशा व्यक्त की 'अगर आप भी मेरी राह के हमराही हो जाएंगे तो इससे बढ़कर मेरे लिए अन्य कोई खुशी नहीं होगी और जितनी मुझे होगी उतनी शायद ही किसी अन्य को होगी !'

खंडपीठ के दो न्यायाधीशों में लोहिया की गिरफ्तारी को लेकर एक राय नहीं हो पाई इसलिए मामला मुख्य न्यायाधीश के सामने पेश किया गया। मुख्य न्यायाधीश ने लोहिया के हेबिअस कार्पस के तहत किए गए आवेदन को नामंजूर करार दिया। इसके विरोध में उच्चतम न्यायालय में रिट पिटीशन दायर किया गया। परंतु इसकी सुनवाई से पहले ही सरकार ने लोहिया को रिहा कर दिया।

चुनाव में निराशापूर्ण विजय के बावजूद समाजवादी पक्ष ने अपनी 'लड़ाकू' छवि बरकरार रखने में सफलता पाई थी। देश के अधिकांश राज्यों में हजारों सत्याग्रही जेलों में बंद थे।

19

समाजवाद का सगुण-साकार रूप

जैसे ही 1948 में लोहिया कांग्रेस से अलग हुए वे लगातार इस प्रयास में थे कि अपना पक्ष एक सशक्त विरोधी और सक्षम समाजवादी पक्ष के नाते उभरे। लोहिया के नेतृत्व में स्थापित नवीन पक्ष का कांग्रेस के साथ सहयोग करने का सवाल खत्म हुआ। परंतु अभी, समाजवादियों को अपेक्षित समाजवाद का साफ और ठोस स्वरूप विकसित करने का काम बाकी था। 1952 में पचमढ़ी में दिए गए वक्तव्य में लोहिया ने इस दिशा में प्रयत्न शुरू कर दिए थे और 1957-62 के दरम्यान आपने समाजवाद का सगुण साकार रूप विविध विचारों और कार्यक्रमों के जरिए निखारा भी था। देश के सामने कांग्रेस की समाजवादी समाज रचना की घोषणा और प्रजा समाजवादियों के समाजवाद से अपने समाजवादी पक्ष के समाजवाद के अंतर को स्पष्ट कर देना बहुत आवश्यक था, बिना इसे किए समाजवादी पक्ष के अपने अलग अस्तित्व का औचित्य सिद्ध न होता !

एक बार लोहिया ने कहा था कि "समाजवाद की परिभाषा दो शब्दों में यों की जा सकती है—'समता और समृद्धि यानी समाजवाद' गरीबी के समान बंटवारे का नाम समाजवाद नहीं है बल्कि समृद्धि के अधिकाधिक समान वितरण का नाम समाजवाद है। बिना समतावाद के समृद्धि असंभव है और बिना समृद्धि के समता व्यर्थ है !"

समाज में व्याप्त विषमता के संदर्भ में लोहिया की मान्यता थी कि भारतीय समाज का सीधी और खड़ी रेखा में दो हिस्सों में विभाजन हुआ है। एक तरफ लोकभाषा, लोकभूषा, लोकभोजन और लोकभवन है तो दूसरी तरफ सामंतीभाषा, सामंतीभूषा, सामंतीभोजन और सामंतीभवन है। इस विभाजन की जड़ में भाषा, जाति, आय और व्यय में निहित, पराकाष्ठा की विषमता ही है।

'अंग्रेजी हटाओ !' का नारा बुलंद करते हुए लोहिया ने सरकारी और सार्वजनिक व्यवहार से अंग्रेजी की प्रभुता को निर्मूल करने की मांग की। लोहिया का अंग्रेजी-विरोध केवल इसलिए नहीं था कि वह एक विदेशी भाषा है, बल्कि इसलिए था कि देश के मुट्ठीभर या दो-तीन प्रतिशत लोगों की भाषा को सार्वजनिक व्यवहार की भाषा बनाया

जाए। पढ़ाई के अन्य अनेक विषयों में एक विषय के नाते अंग्रेजी बरकरार रहेगी। परंतु इसी अंग्रेजी की वजह से भारतीय समाज घृणास्पद रूप से विभाजित हुआ है और भारतीय जनतंत्र पंगु और अपाहिज बना हुआ है।

भारतीय समाज रचना की यह विशेषता है कि इसमें जितना तीव्र वर्ग संघर्ष है उतना ही तीव्र, बल्कि कुछ अंशों में ज्यादा ही वर्ण संघर्ष प्रखर है। तीन प्रतिशत उच्च वर्णियों के वर्चस्व पर आधारित भारतीय जाति प्रथा को संपूर्ण नष्ट किए बिना भारत में समाजवाद कायम नहीं किया जा सकता। लोहिया इस वास्तविकता का भान करा देने वाले पहले समाजवादी नेता थे। उन्होंने 'जाति तोड़ो' का नारा देते हुए कहा कि "समता प्रस्थापन के मार्ग में सबसे बड़ा रोड़ा वरिष्ठ और कनिष्ठ जाति भेदों का ही है, हजारों वर्षों से चली आ रही जाति प्रथा के कारण अपना समाज विभाजित हुआ है, दस-पांच कोटि की जनसंख्या वाले वरिष्ठ जाति के हाथों में आज सत्ता और संपत्ति केंद्रित है और तीस-पैंतीस कोटि कनिष्ठ जाति की जनता इससे वंचित है। समाजवाद को चाहिए कि वह सामाजिक ही नहीं बल्कि धार्मिक, राजनैतिक और आर्थिक बाहुओं से भी जाति प्रथा पर धावा बोले और चरमराकर गिरा दे। राजनैतिक धावा बोलते हुए हमें चाहिए कि अछूतों और आदिवासी जातियों-जनजातियों के साथ साथ महिलाओं, गरीब मुसलमानों, पिछड़ी जातियों के जनों को भी सभी प्रशासनिक और सार्वजनिक क्षेत्रों में साठ प्रतिशत स्थानों पर आरक्षण देते हुए विकास का अवसर हम दें। समान अवसर की बात एक चकमा है क्योंकि प्रस्थापितों की यथास्थिति को बरकरार रखने की वह एक धूर्त साजिश है, वरिष्ठ और कनिष्ठ जातियों के बीच के इस होड़ में, जो अपने आप को असमान गुटों के बीच की होड़ है—और कनिष्ठ जातियों को विशेष अवसर न दिए जाने की स्थिति में उनकी इस शर्त में हार तय है और कनिष्ठ जातियां हमेशा पिछड़ती जाएंगी। शोषितों और वंचितों का यही वर्ग अपने देश में कनिष्ठ और दलित जातियों के नाम से जाना जाता है। इस वर्ग को शोषण के शिकंजों से मुक्त किए बिना जाति प्रथा का नाश सर्वथा असंभव है। इसलिए लोहिया ने जिस तरह जाति प्रथा पर राजनैतिक दिशा से धावा बोला उसी तरह आर्थिक दिशा से भी जोरदार आघात किया। धर्म के लिए जाति प्रथा की ओर से जोरदार समर्थन प्राप्त होता है और जाति प्रथा के लिए धर्म की ओर से !

धर्म में निहित मानी गई जाति और वर्णव्यवस्था को अस्वीकार और धिक्कार करते हुए जाति व्यवस्था पर धर्म की ओर से धावा बोला जाना चाहिए।

किसी भी व्यक्ति की आय 'न सौ से कम न एक हजार से ज्यादा' समाजवादियों के इस पुराने नारे के साथ लोहिया ने अपनी टिप्पणी दी, व्यक्ति की आय में अलग अलग तरह के भत्तों, प्राप्त होने वाली अन्य सुख-सुविधाओं और ऊपरी आमदनी का समावेश भी किया जाना चाहिए। इसलिए समाजवादी व्यवस्था को अगर विषमताहीन बनाना हो तो न केवल आमदनी पर रोक लगाना आवश्यक है बल्कि खर्च पर भी सीमा की सख्त आवश्यकता है। लोहिया की शुरू की मांग 1:10 के अनुपात में खर्च की सीमा निर्धारण की थी। लोहिया की मान्यता थी कि 'संपूर्ण और आदर्श समता शायद ही संभव होगी परंतु

संभवनीय समता की स्थापना अवश्य की जा सकती है।'

लोहिया का दृढ़ विश्वास था कि सामाजिक और आर्थिक समता की सारी कोशिशें तभी कामयाब होंगी जब शैक्षणिक विषमता को हम दूर करेंगे। इसलिए अपनी समान शिक्षा नीति का प्रतिपादन करते हुए उन्होंने कहा था कि अमीर प्राथमिक शालाओं को तुरंत बंद किया जाए। इसी कारण अंग्रेजी माध्यम वाले पब्लिक स्कूलों और कान्वेंटों का भी आपने विरोध किया था। लोहिया की मांग थी कि हर स्तर की शिक्षा में से अंग्रेजी माध्यम को हटाया जाए।

लोहिया की कोशिश थी कि समाज परिवर्तन के आंदोलन में दलितों और पिछड़े वर्गों के नेताओं-कार्यकर्ताओं का योगदान भी प्राप्त किया जाए। लोहिया के प्रयत्नों से पिछड़े वर्गों के संगठन के अध्यक्ष रामलखन चंदापुरी समाजवादी पक्ष में सम्मिलित हुए थे। डा0 बाबासाहब अंबेडकर के बारे में तो लोहिया की मान्यता थी कि 'समूचे भारतीय जीवन में गांधीजी के बाद एक महान व्यक्ति और जातिप्रथा विनाश अभियान का आशा-स्थान डा0 अंबेडकर ही हैं !' इसलिए डा0 अंबेडकर से संपर्क करते हुए लोहिया ने वैचारिक आदान-प्रदान का काम शुरू कर दिया था। काश ! डा0 अंबेडकर की आकस्मिक मौत न हुई होती तो संभव है कि भारतीय राजनीति के मंच पर समाजवादी पक्ष और रिपब्लिकन पक्ष का मिलाजुला एक नया पक्ष अवतरित हो जाता और भारतीय राजनीति का स्वरूप भी कुछ अलग हो जाता ! लोहिया ने दक्षिण भारत के जाति विनाश आंदोलन के और द्रविड़ कड़घम के जनप्रिय नेता रामास्वामी नायकर से मुलाकात भी की थी। अपने अनुयायियों को भड़काने के जुर्म में इन दिनों नायकर जेल में बंदी थे। त्रिचनापल्ली में दिए गए अपने जाहिर वक्तव्य में नेहरू ने नायकर को 'पागल' बताते हुए, उन्हें कड़ी से कड़ी और अधिक से अधिक सजा दी जाने की इच्छा प्रकट की थी। लोहिया ने नायकर के साथ अपनी बातचीत में नेहरू के वक्तव्य को अन्यायकारक कहा। नायकर के अभियान की लोहिया ने बड़ी तारीफ भी की, परंतु साथ साथ नायकर के हिंदी विरोधी आंदोलन, गांधीजी के प्रतिमाओं के दहन के उपक्रमों, व्यक्तिगत रूप में कतिपय ब्राह्मणों के बारे में किए गए हिंसाचारों को लेकर अपनी नाराजगी भी व्यक्त की थी। इसके साथ लोहिया ने नायकर से सहयोग पाने की इच्छा भी व्यक्त की थी।

इस तरह लोहिया समाजवादी पक्ष को अधिक व्यापक और शक्तिशाली बनाने के प्रयत्नों में थे कि सहसा एक विलक्षण उलझन में फंस गए। जून 1957 में जयप्रकाश नारायण ने एक पत्र लिखकर लोहिया से मुलाकात की इच्छा व्यक्त की थी और इसके मुताबिक जुलाई में लखनऊ में दोनों नेता मिले भी। चर्चा का विषय समाजवादी पक्षों का ऐक्य था। दोनों नेता इस बात पर सहमत हुए कि समाजवादी पक्ष और प्रजा समाजवादी पक्ष सम्मिलित होकर एक ही जनतांत्रिक समाजवादी पक्ष को कायम करें, परंतु लोहिया ने यह भी स्पष्ट किया कि 'एकता का आधार समाजवादी पक्ष का संविधान, नीति और कार्यक्रम ही रहेगा।'

इस समय जयप्रकाश नारायण प्रजा समाजवादी पक्ष में किसी भी पद पर नहीं थे और पक्षीय राजनीति का त्याग करते हुए भूदान के लिए जीवनदान का उन्होंने संकल्प

किया था। प्रजा समाजवादी पक्ष की ओर से ऐक्य की बातचीत करने का कोई अधिकार जयप्रकाश को नहीं था। परंतु जयप्रकाश को शायद यह विश्वास था कि 'जिसे मैं उचित मानूंगा उसे प्रजा समाजवादी पक्ष भी स्वीकार करेगा !' जयप्रकाश का विश्वास अनुचित नहीं था परंतु लोहिया के समाजवादी पक्ष के साथ ऐक्य का उनका प्रस्ताव अधिकांश प्रजा समाजवादी पक्ष के नेताओं को स्वीकार नहीं था। लखनऊ भेंट-वार्ता के बाद लोहिया और जयप्रकाश में थोड़ा बहुत पत्राचार भी हुआ और दो-एक बार मुलाकातें भी हुईं। परंतु दोनों नेता किसी भी निश्चित निर्णय पर नहीं पहुंच पा रहे थे। इसी दरम्यान एक दिन अशोक मेहता ने यह घोषित कर दिया कि 'प्रजा समाजवादी और समाजवादी पक्षों के बीच कोई समझौता नहीं हो पाया है और बात छोड़ दी गई है।'

कुल मिलाकर सारी परिस्थितियों का जायजा लेते हुए जयप्रकाश नारायण ने भी एकता के लिए जारी बातचीत सहसा बंद कर दी। अशोक मेहता ने यह ऐलान किया कि, 'बातचीत में लोहिया की तरफ से सौदेबाजी अधिक हुई जिससे ऐक्य नहीं हो सका।' इस तरह निष्फलता का सारा दोष लोहिया के माथे मढ़ दिया गया। अन्य कुछ प्रजा समाजवादी नेताओं ने लोहिया पर तानाशाह होने का आरोप लगा दिया और यह भी घोषित किया कि दोनों पक्षों में न नीति विषयक मतभेद हैं और न सैद्धांतिक ! एकता न होने का कारण लोहिया मात्र हैं। इस पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए लोहिया ने कहा कि, "जो यह कहना चाहते हैं कि मेरे कारण एकता नहीं हो पा रही है तो उनके संतोष के लिए बड़ी खुशी के साथ न केवल समाजवादी पक्ष का बल्कि राजनीति का संपूर्ण त्याग करने के लिए मैं तैयार हूं।"

प्रजा समाजवादी पक्ष से लोहिया को निष्कासित करने का प्रस्ताव पक्ष की राष्ट्रीय समिति की बैठक में कुछ ही समय पूर्व जयप्रकाश ने ही रखा था, उन्होंने अबकी बार ये प्रयास किए थे कि समाजवादियों के ऐक्य के लिए लोहिया अगुवाई करें ! इससे अधिक आश्चर्य किस बात पर होता ? और जिस पक्ष के नेताओं को दिशाहीन, अवसरवादी और पंगु कहने में लोहिया नहीं हिचकिचाए थे उन्हीं के साथ एकता-वार्ता के लिए स्वयं तैयार हो गए यह भी कम आश्चर्यकारक नहीं था ! लोहिया के संबंध में यही कहा जा सकता है कि उनकी मान्यता थी कि 'प्रजा समाजवादी पक्ष के आधे से ज्यादा कार्यकर्ता स्वयं लड़ाकू और संघर्षशील हैं लेकिन सदोष नेतृत्व और अनिश्चय की स्थिति में वे अपाहिज और पंगु बन गए हैं' ठीक इसी तरह समाजवादी पक्ष में भी आदतों और स्वभाव से मजबूर कुछ पंगु हैं।' लोहिया इसी आशा से ऐक्य प्रयत्नों में लगे रहे कि दोनों पक्षों के संघर्षरहित कार्यकर्ताओं को इस बहाने संगठिन किया जा सकता है और इससे पंगुओं का नियंत्रण भी संभव होगा। लोहिया मन ही मन यह भी चाहते थे कि भूदान आंदोलन से हटकर जयप्रकाश भी फिर से समाजवादियों का नेतृत्व करें, राजनीति में उतर आएं ! साथ ही लोहिया को अपने नेतृत्व की सीमाओं का और जयप्रकाश की क्षमताओं का भी पूरा पूरा भान था। जब लोहिया प्रजा समाजवादी पक्ष के महामंत्री थे तब मार्च 1954 में एक पत्र लिखकर आपने जयप्रकाश का आह्वान किया था कि 'अब तुम्हें जनरल कौंसिल के समय

मेरी जगह संभालनी चाहिए। जाओ ! समूचे देश को गतिशील बनाने की जो शक्ति तुम में है, मुझमें नहीं है, और न अन्य किसी में ! हां ! यह बात जरूर है कि देश को गतिशील बनाने वाले को खुद को अविचल रखना चाहिए। समूचे देश के साथ तुम्हारी गहरी आत्मीयता के संबंध हैं, मेरा विश्वास है कि देश का नेता बनकर तुम ही समाजवादी विचारधारा को फिर से बढ़ा सकते हो !'

इसी दरम्यान उत्तर प्रदेश की विधान सभा में जन प्रतिनिधि, अध्यक्ष, और शासन के अधिकारों की मर्यादाओं और संसदीय शिष्टाचारों के बारे में एक उलझन उठी थी। समाजवादी पक्ष के एक सदस्य राजनारायण ने उत्तर प्रदेश की अकाल के कारण बिगड़ी परिस्थितियों को लेकर एक स्थगन प्रस्ताव दिया था, इसी से सत्तारूढ़ कांग्रेस, विधान सभा के अध्यक्ष और राजनारायण में मानो संघर्ष छिड़ गया था। परिणामतः अध्यक्ष ने राजनारायण का सदस्यत्व ही स्थगित कर दिया था, और उन्हें सभागृह से बाहर जाने का आदेश तक दे दिया था। जब राजनारायण ने आदेश पालन से मना कर दिया तब उन्हें लगभग अर्धनग्नावस्था में घसीटते-खींचते सभागृह से बाहर कर दिया गया था। राजनारायण की यह कहते हुए भर्त्सना की गई कि आपने बड़ी बेमुरौवती से संसदीय शिष्टाचारों की अवहेलना की है। परंतु लोहिया ने उन्हें 'प्रभावशाली विधायक' स्वीकार करते हुए कहा था कि "विधान सभा में जिस तरह सदस्य अनुशासन के पाबंद हैं उसी तरह अध्यक्ष भी हैं, हर हालत में अध्यक्ष को पक्षपाती व्यवहार नहीं करना चाहिए। यह मानना गलत है कि अध्यक्ष कभी गलती नहीं करता ! संसदीय प्रणाली में सुधार और संशोधन किए जाने की दृष्टि से राजनारायण का काम बहुत ही अहम है !"

'अपने ही देश में कहीं भी बिना किसी बाधा के प्रवास करने के' भारतीय नागरिकों के अधिकार के लिए सत्याग्रह करने की नौबत, नवंबर 1959 में सहसा उद्भूत हुई। अपना असम का दौरा पूरा कर, नवंबर 1958 में, लोहिया उर्वसीयम (तब का नेफा और आज का अरुणाचल प्रदेश) में जाने के लिए तिरुप कमिश्नरी के जयरामपुर नामक सीमावर्ती गांव में पहुंचे थे, सीमा रक्षकों ने लोहिया को इसलिए रोक लिया कि उनके पास उर्वसीयम में प्रवेश पाने का परवाना नहीं था। लोहिया बौखला उठे, अपने ही देश के एक हिस्से से दूसरे हिस्से में प्रवेश पाने के लिए परवाना होने की बात उनकी कल्पना के परे की बात थी। इस समय तो आपने बड़े संयत भाव से निर्बंध नहीं तोड़ा लेकिन इसी समय तो आपने घोषित किया कि 'इस मूर्खतापूर्ण नियम का पालन मैंने अपने स्वभाव के विरोध में किया है, इसका कारण शायद मेरी उम्र भी होगी ! परंतु ठीक एक साल बाद अर्थात 23 नवंबर 1959 को मैं यहां पहुंचूंगा और बिना परवाना उर्वसीयम में प्रवेश करूंगा। लगभग चालीस हजार मीलों तक फैले भारतीय प्रदेश में पहुंचने के लिए भारतीय नागरिक को परवाना लेना पड़े यह बात निश्चय ही संविधान के विरोध में है।'

यह तय था कि लोहिया न अपने लिए जमीन खरीदने वहां पहुंच रहे थे और न वहां के आदिवासियों को लूटने ! यह कहा नहीं जा सकता था कि लोहिया विदेशों के लिए गुप्तचर बनकर वहां पहुंच रहे थे। चीनी गुप्तचरों की घूसखोरी तो सरेआम जारी थी, भारतीय

सीमाओं के भीतर अस्सी मील तक घुसकर चीनियों ने माओ के चित्र, जहां-तहां चिपका दिए थे। परंतु शंकर, दुर्गा, गांधी और यहां तक कि नेहरू का चित्र चिपकाने की इजाजत वहां नहीं थी।

पूर्व निर्धारित कार्यक्रम के मुताबिक ठीक 23 नवंबर 1959 को लोहिया उर्वसीयम की सीमा पर दाखिल हुए। सीमा के भीतर कदम रखते ही उन्हें गिरफ्तार किया गया और डिब्रूगढ़ ले जाया गया और वहीं पर छोड़ भी दिया गया। चार दिनों के बाद उर्वसीयम की सीमा के दूसरे स्थान पर पहुंचकर लोहिया ने बंदीहुक्म को तोड़ने की कोशिश की तब उन्हें छियासी साल पहले के ब्रिटिश कानून के तहत गिरफ्तार किया गया, और तुरंत मुक्त भी कर दिया गया था।

इस मामले पर लोहिया ने सरकार को स्वाधीनता का संकेत करते हुए कहा कि 'सीमा सुरक्षा के बहाने ईशान्य सीमा के आदिवासियों को भारतीयों के प्रवाह से अलग काट कर अलग रखा जाएगा तो वह दिन दूर नहीं होगा कि पके फल की भांति वे विदेश के शिकार हो जाएं।' 1962 के चीनी आक्रमण के समय इसका अनुभव समूचे भारत ने किया था।

इस खतरे के अंदेशे से लोहिया ने ईशान्य सीमावर्ती पहाड़ी इलाकों की जातियों-जन जातियों के बारे में सरकारी नीतियों में संशोधन किए जाने की मांग रखी थी। सरकार की गलत नीतियों के कारण ही फिजों के नेतृत्व में जारी नगा आंदोलकों और मणिपुर का प्रश्न दिन-ब-दिन बिगड़ता गया था। सीमावर्ती जनता के लिए भारतीयों की अपेक्षा चीनी, ब्रह्मदेशी लोग आत्मीय लगने लगे थे। लोहिया ने 1959 में ही यह इशारा किया था कि सीमावर्ती नागरिकों की यथार्थ आशा-आकांक्षाओं की पूर्ति से ही उन्हें संतुष्ट रखा जा सकता है और तभी भारत की सीमा सुरक्षित रहेगी।

1958-59 में ही तमाम राजनैतिक पक्षों की संगठनात्मक संरचना में मूलभूत परिवर्तन किए जाने की आवश्यकता के विचार लोहिया के मन में ऊब-डूब हो रहे थे। इस सिलसिले में आपकी मान्यता थी कि 'वर्तमान समय में राजनैतिक पक्षों की अर्थात जनता की संगठित शक्ति पक्ष की सर्वोच्च केंद्रीय समिति में एकत्रित हुई है, परंतु आज आवश्यकता है कि केंद्र में एकत्रित शक्ति प्रदेश, जिले, तहसील के स्तर तक संक्रमित होने के बदले, जिस तरह पानी का स्रोत नीचे से ऊपर उछलता है उसी तरीके से जनता की शक्ति भी तलहटी में उछलकर ऊर्ध्वगामी बने। इसी हालत में पक्षों की संगठना बलशाली होगी।'

लोहिया की आकांक्षा थी कि भारत के राजनीतिक पक्षों में निहित इस बहुत बड़े दोष को अपनी पार्टी से आरंभ कर निरस्त किया जाए।

इस अभिनव कल्पना के प्रेरक उद्देश्य कई थे, उनकी इच्छा थी, पक्ष संगठन की सभी वरिष्ठ समितियों में कार्यरत निरंकुश नेतृत्व पर कनिष्ठ नेतृत्व का अंकुश बना रहे। पक्षांतर्गत सत्ता के सूत्र के केंद्रीय समिति में बैठे मुट्ठी भर नेताओं में केंद्रित न रहें और पक्ष संगठन के कनिष्ठ स्तर पर कार्य करने वालों को भी सत्ता में शरीक होने की गुंजाइश

बनी रहे। लोहिया चाहते थे कि कनिष्ठ पक्ष शाखाएं वरिष्ठों के हाथ की कठपुलियां न बनें, बल्कि उनमें अपने आप में निर्णयात्मिका शक्ति, उपक्रमशीलता की क्षमता और कार्यप्रवणता जागृत हो। अगर ऐसा होता है तो लोहिया को लगता था कि पक्ष संगठन पर संसदीय गुट की जो पकड़ फिलहाल है वह इससे जरूर ढीली पड़ जाएगी। अपनी कल्पना पर अमल करने के इरादे से आपने एक सुझाव दिया, "कुछ समय तक हम अखिल भारतीय स्तर की, प्रादेशिक स्तर और जिला स्तर की सभी समितियों को बरखास्त करते हुए इससे नीचे की समितियों को बरकरार रखें।" परंतु पक्ष के अधिकांश नेताओं को लोहिया की क्रांतिकारी कल्पना रास नहीं आई। आगे चलकर पक्ष के चेन्नीममाई (तमिलनाडु) के राष्ट्रीय अधिवेशन में लोहिया ने अपनी कल्पना पेश अवश्य की परंतु इस अपनाग्रही भूमिका से कि 'मेरी इच्छा इसे आप लोगों पर थोपने की कभी नहीं है।' अधिवेशन में बहुमत से यह फैसला किया गया कि लोहिया के सुझाव पर कोई चर्चा न की जाए और इसे बस्ते में बांधकर रख दिया गया। इसके बाद फिर कभी उक्त सुझाव चर्चा का विषय नहीं बना। त्रावणकोर-कोचीन गोलाबारी के कांड के अनुभव के बाद लोहिया ने दुबारा यह अनुभव किया कि समाजवादियों में किसी भी मौलिक और क्रांतिकारी विचार को अमल में लाने का प्रयोग करने की न क्षमता है और न हिम्मत।

1960 में समाजवादी पक्ष ने जनता की कुछ चुनी हुई मांगों के लिए देशव्यापी सत्याग्रह आंदोलन चलाया और लोहिया इसके प्रचार के लिए भारत भर में दौरे करते रहे। इस दरम्यान कानपुर में एक विशेष प्रसंग घटित हुआ। रात के मुकाम के लिए लोहिया सरकारी सर्किट हाउस में पहुंचे तब चौकीदार ने साफ मना कर दिया परंतु लोहिया ने चौकीदार की एक भी न मानी और सर्किट हाउस में ही डेरा डाल दिया, लोहिया की मान्यता थी कि डाक बंगले और सर्किट हाउस सरकारी सराय मात्र हैं और वहां निवास का जितना अधिकार सरकारी नौकरों और मंत्रियों को है उतना ही साधारण जनता को भी। कुछ दिनों बाद लोहिया के पास नोटिस पहुंचा कि सरकारी निवास में अनधिकृत रूप से घुसने के अपराध में रु. 100/- का जुर्माना अदा करें, यह भी साफ था कि लोहिया ने जुर्माना भरने से इनकार कर दिया।

अंग्रेजी में न बोलने और मातृभाषा हिंदी में बोलने के आग्रह के कारण दक्षिण भारत के दौरे में दो बार पथराव का सामना करने की नौबत भी लोहिया को उठानी पड़ी थी। इसका कारण था कि लोहिया के 'अंग्रेजी हटाओ' अभियान के विरोध में इसे छिपे तरीके से हिंदी लादने के रूप में कुप्रचारित किया जा रहा था। 'इस बात का मुझे दुख है कि मैं तमिल में नहीं बोल पा रहा हूं, लेकिन चूंकि हिंदी मेरी मातृभाषा है मैं हिंदी में बोलूंगा।' लोहिया ने कोयम्बतूर में यह कहते हुए अपना वक्तव्य शुरू ही किया था कि पथराव भी शुरू हो गया। बंगलौर की एक सभा में भी इसकी आवृत्ति हुई। परंतु कहीं से भी सभा स्थान को छोड़कर लोहिया नहीं गए।

इन्हीं दिनों लोहिया और समाजवादी पक्ष का 'अंग्रेजी हटाओ' अभियान और जोर

पकड़ता जा रहा था। देशज भाषाओं की उपेक्षा और अंग्रेजी की प्रभुता को लेकर देश भर में उल्टी-सीधी चर्चाएं चल रही थीं। नर्मदा के ऊपरी हिंदी प्रदेशों में चर्चा ने उग्र और आक्रामक रूप धारण कर लिया था। युवा साहित्यकारों, पत्रकारों, विद्यार्थियों और प्राध्यापकों में 'अंग्रजी हटाओ' आंदोलन का लक्षणीय प्रभाव का दौर था। इसी के साथ अंग्रेजी के समर्थकों ने भी अपनी बात खुलकर कहने का काम शुरू किया था। गलतफहमियां फैलाई जा रही थीं, इनका खंडन करते हुए लोहिया बार बार कहते थे कि 'मेरी लड़ाई देशज भाषा, लोकभाषा विरुद्ध अंग्रेजी की प्रभुता की है, मुझे इस बात की कोई चिंता नहीं कि हिंदी का क्या होगा ? भले वह गड्ढे में गिर जाए।' 1961 के आरंभ में ब्रिटेन की महारानी एलिजाबेथ भारत यात्रा पर आने वाली थीं, इसी समय किसी सिलसिले में भारत में स्थित ब्रिटिश डिप्टी कमिश्नर ने कहीं पर कहा कि 'भारत को अपने विकास के लिए अंग्रेजी अनिवार्यतया आवश्यक है।' लोहिया ने आगाह करते हुए कहा कि यह उचित नहीं है कि 'महारानी के दौरे का उपयोग अंग्रेजी को बनाए रखने के लिए किया जा रहा है। हमारे अंदरूनी मामलों में दखल देने का कोई अधिकार किसी भी विदेशी को नहीं है।' लंदन में रहनेवाली भारतीय हाई कमिश्नर विजयलक्ष्मी पंडित ने तो हद कर दी, उन्होंने कहा कि 'अंग्रेजी हटाओ' अभियान पागलों का आंदोलन है।

अहिंदी प्रदेशों में रहनेवालों और 'अंग्रेजी हटाओ' के विरोधी जनों की ओर ध्यान देना भी लोहिया के लिए जरूरी हो गया था। अहिंदी भाषियों के मन में यह खौफ था कि अगर अंग्रेजी को हटाया जाएगा तो चारों ओर, खासकर केंद्रीय सरकारी नौकरियों में हिंदी भाषियों की प्रभुता होगी और ऐसा मानने वाले लोगों की संख्या भी कम नहीं थी। अहिंदी भाषियों के मन के इस खौफ को निरस्त करने के उद्देश्य से लोहिया ने अपनी एक त्रिसूत्री योजना बनाई थी, बशर्ते अंग्रेजी को लेकर अपनी पूर्व भूमिका को बरकरार रखा था। एक सूत्र था कि केंद्र की राजभाषा हिंदी हो, परंतु केंद्रीय राजपत्रित नौकरियों में देश के सागरी प्रदेशों के निवासियों को आनेवाले दस सालों तक आरक्षण दिया जाए। दूसरा सूत्र था कि केंद्र सरकार का प्रशासनिक दृष्टि से दो भाषिक विभागों में विभाजन किया जाए, अर्थात जो प्रदेश हिंदी विरोधी नहीं हैं, उनके साथ केंद्र के सारे कामकाज हिंदी में हों और और जिनका राजभाषा हिंदी से विरोध है वहां अंग्रेजी बरकरार रहे और केंद्र भी इन प्रदेशों के साथ अंग्रेजी में कामकाज चलाएगा ! जब तक ये प्रदेश अंग्रेजी चलाना चाहेंगे तब तक केंद्र और इनके दरम्यान अंग्रेजी चलती रहेगी।

लोहिया के दोनों सूत्रों की उपेक्षा करते हुए, विरोधी पक्षों सहित सभी राजनैतिक पक्षों ने 1965 के बाद भी हिंदी के साथ साथ अंग्रेजी भी केंद्र सरकार की सहभाषा रहेगी, इस तरह का प्रस्ताव संसद में पारित किया।

लोहिया का तीसरा सूत्र बहुभाषी केंद्र का था।

20

नई राहों की खोज

परिस्थितियां कुछ यों बदलती जा रही थीं कि राष्ट्रीय एकात्मता को चारों तरफ से घेरकर अधिकाधिक संख्या में और उतनी ही तीव्रता के साथ ललकारा जा रहा था, इसमें भाषायी आह्वान था, वांशिक संघर्ष था और राजनैतिक चुनौतियां तो लगातार थीं। लोहिया के दिमाग को लगातार और चौबीसों घंटे यही समस्याएं कुरेदती रहती थीं। एकात्मता को बनाए रखने और अधिक मजबूत करने के अन्य अनेक उपायों के साथ लोहिया प्राचीन सभ्यता, संस्कृति और पुराणों में भी एकात्मता के प्रवाहों की टोह लेते थे। आपने पाया कि भारतीय शिल्पकला में राष्ट्रीय एकात्मता की छाप अधिक गहरी देखी जा सकती है; इसी तरह आपने यह भी पाया कि रामायण और महाभारत जैसे आर्य ग्रंथों में भी एकात्मता के बीज विद्यमान हैं। लोहिया को विश्वास हो गया था कि 'कृष्ण पूर्व और पश्चिम भारत की एकात्मता के प्रतीक हैं तो राम उत्तर और दक्षिण भारत की एकात्मता के प्रतीक हैं।' इसी विचार का मूर्त रूप 1961 के फरवरी में चित्रकूट में 'रामायण मेला' के आयोजन में दिखाई दिया था। लोहिया के इस विचार को प्राचीन जंबूद्वीप के इंडोनेशिया, कंबोडिया आदि कई रामायण के प्रति आस्था रखने वाले छोटे-बड़े देशों ने तगड़ा समर्थन दिया। इस विचार का स्वागत करते हुए मेले में सम्मिलित होने की इच्छा भी कई देशों ने व्यक्त की थी। लोहिया का यह भी विचार था कि इस बहाने इन देशों के और भारत के सांस्कृतिक कार्यक्रमों का मिला-जुला आयोजन किया जाए। 'रामायण मेला' के अपने उद्देश्यों को स्पष्ट करते हुए लोहिया ने कहा था कि 'अगर धर्म अंतिम श्रेय की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील है तो राजनीति अमंगल का सामना करने के लिए कटिबद्ध है। वर्तमान स्थितियों में धर्म अमंगल का सामना नहीं कर पा रहा है, निष्क्रिय बना हुआ है, परंतु साथ साथ राजनीति भी तो अत्यंत कलही और अर्थशून्य बन गई है। इस मेले का प्रमुख उद्देश्य भारतीय जनता को यह विवेकपूर्ण जानकारी देना है कि रामायण के सच्चे हीरे-मोती कौन से हैं और जूठन कौन सी है।' लोहिया का दृढ़ विश्वास था कि 'एक उपाय यह भी हो सकता है कि विदेशियों द्वारा भारतीयों में आर्य, द्रविड़, मंगोल, आदि के नाम पर डाली गई फूट को मिटाया जाए।'

'रामायण मेला' के उद्देश्यों की चर्चा करते हुए लोहिया ने धर्म और राजनीति को लेकर बहुत ही महत्वपूर्ण और प्रतीकात्मक परिभाषा प्रस्तुत की। 'धर्म, अगर दीर्घकालिक राजनीति है तो राजनीति अल्पकालिक धर्म है।' राजनीति और धर्म के आपसी बिगड़े हुए संबंधों पर भी लोहिया ने खेद व्यक्त किया था।

मेला आयोजन समिति ने केंद्र सरकार से प्रार्थना की थी कि 'रामायण मेला' जैसे व्यापक पैमाने पर किए जा रहे सांस्कृतिक आयोजन के आर्थिक आयाम को ध्यान में रखते हुए मेला-यात्रियों को रेल किराए में रियायत दे। परंतु रेल मंत्रालय ने इसे एकदम अस्वीकार कर दिया था। नौकरशाही ने जवाब में कहा था कि, 'धार्मिक और सांप्रदायिक आयोजनों के लिए रेल किराए में रियायत नहीं दी जा सकती !' रेल मंत्रालय और नासमझ सरकार पर तरस खाने के अतिरिक्त 'मेला समिति' अधिक कुछ न कर सकी।

अन्य अनेक उपायों से भी सरकार ने यह कोशिश की कि 'रामायण-मेला' जहां तक हो सके वहां तक बेतरतीब और असफल बने। इसलिए इन सारे झंझटों से परेशान होकर लोहिया ने 'रामायण मेला' आयोजित करने का विचार छोड़ दिया।

नवंबर 1961 के आखिरी दिनों में लोहिया ने पंद्रह दिनों की विदेश यात्रा की। ग्रीस की राजधानी एथेन्स में विश्व शांति परिषद का आयोजन था और लोहिया इसमें आमंत्रित थे। एथेन्स की ओर प्रयाण से थोड़ी देर पूर्व किसी ने कहा, 'आप अभी सिकंदर के देश की यात्रा पर जा रहे हैं।' लोहिया ने उत्तर दिया, 'नहीं ! मैं तो सुकरात के देश में जा रहा हूं !' लेकिन समूचे ग्रीस में लोहिया को सुकरात के नाम पर एक गांव तक नहीं मिला। सिंकदरा और अलेक्झांड्रिया नाम के दो शहर अवश्य मिले। स्वाभाविक रूप में लोहिया बोल उठे, 'एक महान दार्शनिक और दूसरा महान सेनानी था, लगता है इतिहास सेनानी के पक्ष में है।... पता नहीं वह शैक्षिक प्रणाली कब विकसित होगी जो हमें सिकंदर से सुकरात की ओर ले जाएगी।'

एथेन्स में आयोजित विश्व शांति परिषद के लिए संसार भर से अनेकानेक नामवर राजनैतिक, साहित्यकार, अध्यापक, शांतिवादी, और शाकाहारवादी तक आमंत्रित थे और उपस्थित भी थे। परिषद का वातावरण और कुल मिलाकर परिवेश लोहिया की दृष्टि से कुछ निराशा भरा ही रहा था। लोहिया ने अपने वक्तव्य में कहा कि 'अन्यायपूर्ण समाज व्यवस्था ही शस्त्रास्त्रों की जन्मदात्री होती है इसलिए निःशस्त्रीकरण का असली उपाय न्यायाधिष्ठित समाज व्यवस्था कायम करना है।' लोहिया ने अपने वक्तव्य में इसी मुद्दे पर बल दिया था और सभी पार्षद भी इस बात पर लगभग सहमत थे। अपना 'सप्तक्रांति' का सुप्रसिद्ध विचार भी लोहिया ने किसी विश्व मंच से पहली बार व्यक्त किया था। लोहिया ने कहा, 'अगर दुनिया को शस्त्रास्त्रों के खौफ से मुक्त करना है और दुनिया में न्यायाधिष्ठित समाज व्यवस्था कायम करनी है तो हमारे लिए निम्नांकित सात क्रांतियों की आवश्यकता है: 1) नर-नारी समानता के लिए क्रांति, 2) रंगभेद पर अधिष्ठित विषमता के विरोध में क्रांति, 3) जन्म और जाति व्यवस्था पर आधारित विषमता के विरोध में

क्रांति, 4) विदेशियों की गुलामी के विरोध में तथा विश्व संसद की स्थापना के लिए क्रांति, 5) निजी पूंजी से उत्पन्न विषमता के विरोध में और योजनाओं के जरिए उत्पादन वृद्धि के लिए क्रांति, 6) व्यक्तिगत जीवन में किए जानेवाले हस्तक्षेप के विरोध में क्रांति, और 7) शस्त्रास्त्रों के विरोध में और सत्याग्रह के लिए क्रांति।

लोहिया के 'सप्तक्रांति' विचार का इटली के समाजवादी पक्ष के महामंत्री ने जोरदार समर्थन किया।

21

'हिमालय बचाओ'

1961 के आखिरी दिनों में अगले साल होने वाले आम संसदीय और विधानसभा चुनावों की गतिविधियां जोर पकड़ने लगी थीं। विरोधी पक्षों में संयुक्त मोर्चे की चर्चा भी जारी थी। 'मात्र सत्ता प्राप्ति के इरादे से मत विभाजन को टालना और संयुक्त मोर्चे बनाना मुझे पसंद नहीं।' अपने इस मत को व्यक्त करते हुए लोहिया ने कहा था कि 'संयुक्त दलों के ऐवज में सब का एकत्रित एक पक्ष क्यों न बनाएं जो समाजवाद, राष्ट्रीयता, जनतंत्र और अहिंसा में विश्वास करता हो। जिन्हें ये बातें मंजूर हैं वे सब इस विरोधी पक्ष में आ सकते हैं, जनसंघ और कम्युनिस्ट पार्टी तक को इसमें सम्मिलित किया जाएगा बशर्ते निहित तत्वों के विरोधी विचारों को दोनों त्याग दें। हम सब के सम्मिलन से एक क्रांतिकारी पक्ष अवश्य बनेगा।'

अलग से यह कहने की आवश्यकता नहीं कि लोहिया का यह स्वप्न भी साकार नहीं हो पाया। उनके अपने समाजवादी पक्ष ने 1957 की भांति अपने निजी बल पर 1962 का चुनाव लड़ा। परंतु उन्हें अपेक्षित सफलता नहीं प्राप्त हो सकी।

1962 के चुनावों में समूचे देश का ध्यान नेहरू विरुद्ध लोहिया के चुनाव पर केंद्रित था। उत्तर प्रदेश के फूलपुर लोक सभा चुनाव क्षेत्र से प्रस्तुत चुनाव लड़ा गया था। इससे पूर्व दो बार आम चुनाव संपन्न हुए थे परंतु विरोधी दल के किसी भी नेता ने यह हिम्मत नहीं जुटाई थी कि वह नेहरू के विरोध में चुनाव लड़ सके। लोहिया पर भी काफी दबाव डाला गया कि वे नेहरू के विरोध में चुनाव न लड़ सकें, परंतु अपनी भूमिका को स्पष्ट करते हुए लोहिया ने कहा था कि 'गांधीयुग, सादगी, कर्तव्यनिष्ठा और त्याग का युग था परंतु नेहरूयुग वैभव, फैशन और फिजूलखर्ची का युग है ! भारत को विजयी बनाने के लिए यह जरूरी है कि प्रधानमंत्री को परास्त किया जाए।' समाजवादी पक्ष का चुनाव चिह्न बरगद का पेड़ था, अपने चुनाव पर्चे में 'बरगद की बात' में लोहिया ने कहा था कि 'भारत की जनता और यहां के गरीबजन शायद मुझे अपना समझते हैं, बस ! यही मेरी कमाई है, इसके अतिरिक्त मेरे पास अन्य कुछ भी नहीं है ! इसी के बूते पर मैं एक पुरानी चट्टान

से टकराने का साहस कर पाया हूं !'

लोहिया चुनाव हार गए परंतु लोहिया को इतने मत मिले कि जिससे नेहरू के अजेय होने का भ्रम टूट सके। तैंतालीस मतदान केंद्रों में लोहिया को नेहरू की अपेक्षा ज्यादा मत हासिल थे। बंबई के 'टाइम्स' ने अपनी टिप्पणी में लिखा था कि 'नेहरू को मतदान करने वाले दो मतदाताओं के पीछे एक ने समाजवादी पक्ष के नेता को अपना मत दिया है।'

1962 के अक्तूबर में चीन ने भारतीय भूमि पर अचानक आक्रमण किया और प्रत्यक्ष रणसंग्राम शुरू हुआ। चीन की फौजें भारत की ईशान्य सीमा में घुस आई थीं और एक महीने की अल्पावधि में एक के बाद दूसर इस गति से चौकियों पर कब्जा करते हुए वे असम के तेजपुर गांव से सिर्फ अस्सी मील की दूरी पर आ पहुंची थीं। सीमा प्रदेश में पराकाष्ठा का आतंक छा गया, भागदौड़ और विनाश की कोई सीमा नहीं थी। सरकारी अधिकारियों को चाहिए था कि वे जनता का मनोबल बढ़ाते और उसे साहस बंधाते लेकिन उन्हीं के छक्के छूट गए और वे सारे के सारे दुम दबाकर भाग गए। सेनाधिकारियों ने भी बिना मुकाबला किए अनेक चौकियां चीनियों को सौंप दिए। चीनी सेना स्वयं अगर रुक न जाती तो पता नहीं चीनी सेना कहां तक अंदर कुचलती हुई चली आती ! संभव है कि वह सीधे बंगाल की ओर कूच करती, खदेड़ती चली आती।

भारत की प्रतिष्ठा टूट गई। प्रखर देशभक्त लोहिया का मन पराभव के दारुण दुःख से बहुत व्यथित हुआ था। सीमावर्ती प्रदेशों की जनता की शोचनीय, असहाय अवस्था देखकर उनका दिल रो पड़ा। सबसे गुस्सा दिलाने वाली बात तो यही रही कि जनता का संरक्षण करने में नेहरू सरकार असफल रही।

जब 1949 में चीन तिब्बत पर हावी हो गया था उसी समय लोहिया ने चीन के संभाव्य आक्रमण से सरकार को आगाह कर दिया था। आगे चलकर चीन ने भारतीय सीमा के अंदर कतिपय जगहों पर अपने अधिकार का दावा भी किया था, कुछ चौकियों पर अपना फौजी आधिपत्य भी जमा लिया था, इस अवसर पर भी लोहिया ने सरकार को सचेत किया था। इस समय भारत-चीन सीमा विवाद पर आपने कहा था कि 'अंग्रेजी साम्राज्यवादियों द्वारा निर्धारित मैकमोहन रेखा भारत-चीन के बीच की सीमा रेखा नहीं हो सकती, कैलास, मानसरोवर और पूर्ववाहिनी ब्रह्मपुत्र ही भारत की सीमा है। इसे लांघकर अंदर आना चीन का आक्रमण ही समझना चाहिए।' भारत सरकार ने लोहिया के इशारे की न केवल उपेक्षा की बल्कि 1954 में भारत को शत्रुवत समझने वाले चीन के साथ शांति और सहकार्य का 'पंचशील' करार तक किया, और तो और चीन को संयुक्त राष्ट्र संघ का सदस्य बनाने के मामले को हमेशा तूल दी।

युद्ध समाप्ति के उपरांत 1963 में लोहिया ने असम के सीमावर्ती इलाकों का व्यापक दौरा किया। ग्वातालपाड़ा जिले में एक स्थान पर आपको गिरफ्तार भी किया गया और तुरंत रिहा भी कर दिया गया था। समूचा दौरा हो जाने के बाद लोहिया को लगा कि जो

बात भारतीय सेना के पास अच्छे शस्त्र न होने की कही जा रही है वह सही नहीं है। चीनी सिपाही सिर्फ बंदूकें लेकर आए थे परंतु हमारे पास बड़े बड़े टैंक्स और अच्छे खासे शस्त्र भी थे। इसलिए अपने दौरे के निष्कर्षों को जाहिर करते हुए लोहिया ने कहा कि, "हमारी सेना ने बोमंडिला और वालांग चौकी बिना लड़ाई किए ही चीनियों के हवाले कर दीं और दुम दबाकर भागी, इस कदर भागी कि रोजाना तीस मील की रफ्तार से हमारी सेना पीछे लौटी आ रही थी।"

आखिर यह सब क्यों हुआ ? प्रश्न की गहराई में पहुंचते हुए लोहिया ने अपने आप से यह सवाल किया कि 'कहीं सचमुच ऐसा तो नहीं हो गया कि लड़ाई के मामलों में हम निकम्मे बन गए हों ? सीमावर्ती जनता के चेहरे मुरझाए हुए थे। लोहिया को उन चेहरों पर सिर्फ जिजीविषा नजर आई थी, जैसे-तैसे क्यों न हो वह जनता जीने के लिए ललकती दिखाई दी, मरे हुए जीना, मन की और शरीर की ठोकर खाकर भी जीना। यही हाल सेना और सेनाधिकारियों का था। फिर कौन लड़ता ? और किसलिए लड़ता ? अपनी दारुण हार का यही कारण था।' मारना भूल गए हैं, लेकिन स्वेच्छा से मरना नहीं सीख रहे हैं।

फिर एक तरह से लोहिया ने समूचे राष्ट्र का आह्वान किया, "निर्मम तटस्थता के साथ हमें यह सोचना चाहिए कि आखिर हमारे देश को हुआ क्या है ? जिन कीटाणुओं-विषाणुओं से हमारा मन सड़ गया है उन्हें दूर करने के उपायों पर गंभीरता के साथ सोचना चाहिए।"

इस पर गहन चिंतन करने के बाद लोहिया ने कहा कि "विषमता के घेरों और दीवारों को बरकरार रख कर चीनियों को मात देना संभव नहीं है; अगर हमें विजयी बनना है तो रोटी-बेटी व्यवहारों सहित सभी क्षेत्रों में वर्तमान विषमता और भेदभाव को मिटाना चाहिए। आवश्यकता भारत के मन को स्वस्थ और मजबूत बनाने की है। यही हमारा पहला काम होना चाहिए।"

1962 के प्रकट आक्रमण के बावजूद संयुक्त राष्ट्र संघ में विराजमान भारतीय प्रतिनिधि चीन को सदस्य बना लेने की तरफदारी कर रहे थे, इस पर लोहिया का बौखला उठना स्वाभाविक था, उन्होंने बहुत कठोर शब्दों में नेहरू-सरकार की भर्त्सना करते हुए कहा, 'यहां मेरी जान चली जा रही है, प्राण तड़प रहे हैं, ऐसी स्थिति में वर्तमान सरकार हमारे राष्ट्र पर सबसे बड़ा धब्बा और कलंक है, यह सरकार गद्दार है।'

भारत-चीन युद्ध में हार के बाद लोहिया ने साग्रह प्रतिपादन किया कि 'अपने लज्जास्पद पराभव के बाद राष्ट्र को हिमालय के संरक्षण के लिए एक बहुआयामी, सीमा नीति को स्वीकार करना चाहिए।' इसलिए आपने 'हिमालय बचाओ' का नारा दिया। इस नारे को व्यापक जनमत प्राप्त हो इसलिए जगह जगह सम्मेलनों का आयोजन करवाया। बिहार में आयोजित सम्मेलन में भूतपूर्व राष्ट्रपति डा0 राजेंद्र प्रसाद उपस्थित थे। इस सम्मेलन में दिए गए अपने वक्तव्य में लोहिया ने कहा था कि 'चीनी आक्रमण के कारण हमारा यह भ्रम टूट गया है कि हिमालय भारत का पुराना संरक्षक है। कश्मीर से उर्वसीयम (नेफा)

तक फैली अपनी सुदीर्घ हिमालय की सीमा के संबंध में हमें अल्पकालिक और दीर्घकालिक और ठोस नीति को अपनाना चाहिए और इस पर दृढ़ता के साथ अमल भी करना चाहिए। तभी, आइंदा हमारे लिए हिमालय की सीमाओं का रक्षण कर पाना संभव होगा।' इस सिलसिले में लोहिया ने मांग की थी कि सरकार अनिवार्य सेना भरती का काम वरीयता से शुरू करे और अगर दुबारा आक्रमण का सामना करने की नौबत आएगी तो हम अपने को इस तरह तैयार और तत्पर रखें कि तिब्बत के पठार तक हम सीधे पहुंच सके। परंतु इसी के साथ लोहिया को इसका भी पूरा भान था कि देश की सीमाओं का रक्षण मात्र सैन्य नहीं कर पाएगा इसलिए आपका निवेदन था कि 'अपने देश में समता के आधार पर क्रांतिकारी परिवर्तन की आवश्यकता है, सैन्यशक्ति के पीछे जनशक्ति का सक्षम रूप में खड़ा होना आवश्यक है; इन दो शक्तियों का आपसी रिश्ता हथेली और मुट्ठी जैसा है।'

एक ओर लोहिया तन-मन से इस समस्या का समाधान ढूंढ़ने में व्यग्र और व्यस्त थे कि चीनी आक्रमण से उद्भूत राष्ट्रीय संकट का सामना करने के उपाय कौन से हैं और उनको कैसे लागू किया जाए ? तो दूसरी ओर उत्तर प्रदेश में उन्हीं के पक्षानुयायियों ने लोहिया को मनःताप दिलाने वाला एक काम कर दिया। केंद्रीय समिति की अनुमति पाए बिना, पक्ष के सारे नियमों को हेकड़ी दिखाते हुए उत्तर प्रदेश विधान सभा के सदस्यों ने प्रजा समाजवादी पक्ष के सदस्यों को अपने में सम्मिलित कर लिया और दिसंबर 1962 में विधान सभा में 'संयुक्त समाजवादी पक्ष' की स्थापना कर डाली थी। सभापति महोदय ने भी इसे विरोधी पक्ष की मान्यता दे दी थी। न किसी निश्चित लक्ष्य का और न कोई निश्चित नीति का इस ऐक्य-कांड के लिए आधार था इसलिए केंद्रीय समिति ने उत्तर प्रदेश विधान सभा के अपने सदस्यों को इशारा दिया कि 'इस ऐक्य के लिए प्रजा समाजवादी पक्ष के सदस्यों की समाजवादी पक्ष की नीति और उद्देश्यों के लिए अनुकूलता प्राप्त करें, अन्यथा अनुशासन भंग की कार्यवाही के लिए तैयार हो जाएं।' इसका काफी कुछ परिणाम हुआ; समाजवादी सदस्यों ने समाजवादी पक्ष के 1962 के चुनाव घोषणा पत्र को स्वीकृति देने के लिए प्रजा समाजवादी पक्ष के सदस्यों को मना लिया और फिर यह तूफान शमित हो गया। स्वयं लोहिया ने इस पूरे कांड से अपने को अलिप्त रखा था, उन्होंने अपनी व्यक्तिगत मान्यता का कथन अवश्य दिया, 'यह कोई न समझे कि इस ऐक्य के लिए वर्तमान आधार बहुत मजबूत है। सारा कांड अनुशासन भंग करते हुए किया गया है।'

उत्तर प्रदेश में घटित इस आकस्मिक ऐक्य-नाट्य से दोनों पक्षों की एकतावादी मंडलियों को मानो स्फुरण मिल गया, दोनों तरफ काफी उत्तेजना रही और दोनों तरफ से अपने अपने नेतृत्व पर ऐक्य के लिए दबाव बढ़ने लगा। लोहिया ऐक्य के लिए एक शर्त पर अनुकूल थे और वह थी उद्देश्यों और नीति की दृढ़ भूमि। लोहिया ने मन ही मन यह तय कर लिया था कि एकता के लिए स्वयं नेतृत्व नहीं करेंगे। कारण भी साफ था, कहीं प्रजा समाजवादी पक्ष के नेताओं की दृष्टि में लोहिया बाधक न बन जाएं !

इस पृष्ठभूमि पर भरतपुर में समाजवादी पक्ष का राष्ट्रीय सम्मेलन आयोजित किया

गया था और सम्मेलन में 1962 के चुनाव घोषणा पत्र के अनुसार ही प्रजा समाजवादी पक्ष के साथ एकता प्रयत्न किए जाने के संबंध में राष्ट्रीय समिति को अधिकार सौंप दिए।

लोहिया सम्मेलन में उपस्थित थे, आपने प्रतिनिधियों को सचेत किया कि, ऐक्य के लिए आधार माने गए 1962 के चुनाव घोषणा पत्र पर दृढ़ रहिएगा और यह अभी से तय कर लीजिए कि इससे अधिक समझौते के खातिर झुकेंगे नहीं। हां ! लेकिन ऐक्य के लिए की जानेवाली बैठकों में मैं उपस्थित नहीं रहूंगा ! इसलिए कि मुझ पर हमेशा यह आरोप लगाया जाता है कि मेरे कारण ही सारा टूट-फूट का काम होता है। लोहिया ने 1962 के चुनावों से पहले भी यह इच्छा व्यक्त की थी कि राष्ट्रवाद, समता, क्रांतिकारिता और जनतंत्र की चतुःसूत्री पर अधिष्ठित एक ही एक विशाल और लड़ाकू विरोधी पक्ष बने, जिसमें सभी विरोधी पक्षों का समावेश हो। लोहिया को शायद यह आशा रही होगी कि इस स्वप्न की पूर्ति का प्रारंभ संभवतः समाजवादी और प्रजा समाजवादी पक्षों के मिलन से होता हो। इसी उद्देश्य से आपने ऐक्य प्रयत्नों को अपना समर्थन दिया हो।

भरतपुर के ऐक्य प्रस्ताव का चारों तरफ से स्वागत हुआ—प्रजा समाजवादी पक्ष की राज्य शाखाओं और कनिष्ठ शाखाओं, कतिपय नेता-कार्यकर्ताओं ने स्वागत किया—परंतु प्रजा समाजवादी पक्ष की राष्ट्रीय कार्यकारिणी ने समाजवादी पक्ष के चुनाव घोषणा पत्र के आधार पर ऐक्य के लिए मना तो कर दिया परंतु ऐक्य के प्रस्ताव पर विचार करने के लिए एक उपसमिति नियुक्त करने का फैसला अवश्य कर लिया।

इधर एकता प्रयत्न अपने जोरों पर चल रह रहे थे और वहां उत्तर प्रदेश विधान सभा में एक कांड घटित हुआ। किसी एक मामले को लेकर सभापति और समाजवादी सदस्यों के बीच का विवाद अपनी पराकाष्ठा पर पहुंच गया और नौबत यहां तक पहुंची कि समाजवादी पक्ष के 22 सदस्यों को मार्शल के जरिए सभागृह से जबरदस्ती निकलवा दिया गया। प्रजा समाजवादी पक्ष के सदस्य इस अवसर पर सभागृह में ही थे परंतु चुपचाप बैठे थे, उसके निषेध में नवगठित विधानसभा संयुक्त समाजवादी पक्ष के नेता उग्रसेन ने त्यागपत्र दे दिया और यह भी घोषित किया कि संयुक्त समाजवादी पक्ष को बरखास्त किया गया है। इस आकस्मिक कांड के कारण ऐक्य के लिए चल रहे सारे प्रयत्न ठंडे पड़ गए।

22

संसद में प्रवेश

इसी समय के आसपास लोहिया के राजनैतिक जीवन और देश की संसदीय राजनीति को मोड़ देने वाली एक घटना घटित हुई। उत्तर प्रदेश के फर्रुखाबाद लोक सभा के चुनाव क्षेत्र में उपचुनाव होने वाला था, लोहिया इसमें प्रत्याशी बन गए और कांग्रेसी उम्मीदवार से बहुत अधिक मत पाकर चुन भी लिए गए। इसी समय उत्तर प्रदेश के अमरोहा और जौनपुर में भी लोक सभा के लिए उपचुनाव हुए और वहां से आचार्य कृपलानी (विपक्ष) और जनसंघ के दीनदयाल उपाध्याय विजयी हुए। इस तरह तीनों उपचुनावों में कांग्रेस को मुंह की खानी पड़ी थी। इन तीनों चुनाव क्षेत्रों में प्रजा समाजवादी पक्ष के अतिरिक्त अन्य किसी भी पक्ष ने अपना उम्मीदवार खड़ा नहीं किया था, और न अपना संयुक्त मोर्चा भी बनाया था। इन उपचुनावों के परिणामों से एक बात स्पष्ट हुई थी कि बिना संयुक्त मोर्चा बनाए सिर्फ मतों के बंटवारे को टालने पर भी कांग्रेस को शिकस्त दी जा सकती है।

लोहिया की विजय के कारण समाजवादी पक्ष में संतोष और खुशी की लहर उठी थी परंतु इस चुनाव ने पक्ष में मतभेद के बीज भी बो दिए थे। कतिपय समाजवादियों को यह रास नहीं आया कि आचार्य कृपलानी और दीनदयाल उपाध्याय के प्रचार के लिए लोहिया चले जाएं। इस चुनाव में जनसंघ ने लोहिया को अपना समर्थन दिया था और बिना किसी प्रतिशर्त के जनसंघ ने यह इच्छा भर व्यक्त की थी कि दीनदयाल के प्रचार के लिए लोहिया जाएं और लोहिया इसी इच्छा की बात पर दीनदयाल के प्रचार के लिए गए थे। कई पक्ष सदस्यों को यह बात इसलिए सालती रही कि प्रस्तुत घटना पक्षनीति के विरोध में घटित हो चुकी थी। आगे चलकर पक्ष की राष्ट्रीय समिति की बैठक में इस पर गहमा-गहमी हुई, इस बैठक में लोहिया भी उपस्थित थे। लंबी बहस के बाद राष्ट्रीय समिति ने आखिर अपनी अनुमति की मुहर इस कांड पर लगा दी। इसी समय समाजवादी पक्ष ने यह फैसला भी किया कि आगे चलकर कांग्रेस विरोधी प्रत्याशी को अपनी इच्छा के मुताबिक पक्ष अपनी अनुमति और समर्थन देगा।

पक्ष के अनेक प्रभावशाली नेताओं को उक्त निर्णय नहीं भाया। अब तक यही भूमिका थी कि सिवाय समाजवादी पक्ष के शेष सारे विरोधी पक्ष नकली हैं और इसीलिए पक्ष ने 1957 और 1962 के आम चुनाव अपने अकेले के बल पर लड़े थे। इस निर्णय की कीमत कई कार्यकर्ताओं ने चुनाव में अपनी हार को स्वीकार कर और कई कार्यकर्ताओं ने राजनीति में अकेले रह जाने के दुख को झेल कर अदा की थी। साथ विगत कुछ दिनों की घटनाओं के कारण अपने मौलिक उद्देश्यों और नीति को लेकर कार्यकर्ताओं में एक प्रकार से अभिनिवेश भी जागृत हो चुका था। परिणामतः पक्ष की नई चुनाव नीति कार्यकर्ताओं के गले सहज ही नहीं उतर पाई।

इस नवीन निर्णय के अनुसार आगे चलकर जब कलकत्ता में पार्टी का राष्ट्रीय सम्मेलन हुआ तब बहुमत से यह निर्णय किया गया कि 'चुनावों और जन-आंदोलनों में समाजवादी पक्ष अन्य विरोधी पक्षों को अपना सहयोग दे।'

प्रस्ताव का समर्थन करते हुए लोहिया ने कहा कि 'पक्ष की नीति, उद्देश्य और कार्यक्रम लाख अच्छें हों लेकिन उन पर अमल करने वाले अगर शक्तिहीन हों तो उन सब का कोई उपयोग नहीं होता।'

समाजवादी पक्ष की इस बैठक के कुछ ही दिनों बाद प्रजा समाजवादी पक्ष की राष्ट्रीय कार्यकारी समिति की बैठक भी हुई और इसमें निर्णय किया गया कि अशोक मेहता को प्रजा समाजवादी पक्ष से निष्कासित किया जाए। इससे पहले जो बैठक हुई थी उसमें भी प्रजा समाजवादी पक्ष की राष्ट्रीय कार्यकारी समिति ने यह महत्वपूर्ण फैसला किया कि नेहरू-सरकार को सत्ताच्युत करना पक्ष की प्रमुख नीति और उद्देश्य है। इस निर्णय के कारण प्रजा समाजवादी पक्ष और समाजवादी पक्ष के ऐक्य प्रयत्नों में पड़ने वाली बहुत बड़ी बाधा टल गई। इसी बीच लोहिया ने सहसा यह भी घोषित कर दिया कि, बिना किसी पूर्व शर्त अब दो पक्षों के ऐक्य की संभावनाएं 'बढ़ गई हैं।' समाजवादी पक्ष की राष्ट्रीय समिति ने भी लोहिया के बिना किसी पूर्व शर्त के विलीनीकरण को अपनी अनुमति दे दी। साथ ही प्रजा समाजवादी पक्ष का आह्वान भी किया कि अब इस ऐक्य की प्रक्रिया को यथाशीघ्र पूरा किया जाए।

इसी दरम्यान मार्च 1964 में लोहिया के नेतृत्व में, नई दिल्ली में 'जनवाणी दिन' के उपलक्ष्य में समाजवादी पक्ष ने एक विराट रैली का आयोजन किया था। समाजवादी पक्ष ने आह्वान किया कि प्रजा समाजवादी पक्ष भी इसमें शामिल हो जाए। परंतु प्रजा समाजवादी पक्ष से कोई उत्तर नहीं मिला।

लोहिया की बहुत इच्छा थी कि समाजवादी और प्रजा समाजवादी पक्षों का विलीनीकरण जल्द से जल्द हो जाए, परंतु शायद ऐसा नहीं होना था, इस या उस वजह से ऐक्य की बाकायदा प्रक्रिया अभी तक आरंभ भी नहीं हो पाई थी, और लोहिया ने यह ऐलान भी कर दिया था कि यह सवाल तो कतई नहीं है कि समाजवादी पक्ष को एक तरफा बरखास्त कर दिया जाए इसलिए जब तक विलीनीकरण की प्रक्रिया पूरी नहीं होती

है दोनों का अपना अलग अलग अस्तित्व बना रहेगा।' अपने पक्ष को प्रजा समाजवादी पक्ष में विलीन किया जाए ऐसा कहनेवालों को लोहिया ने सचेत कर दिया कि 'ऐसे लोगों को खुली छूट है कि उस पक्ष में चले जाएं !'

इसी समय नेहरू का स्वास्थ्य बहुत ही खराब हुआ था, और आपकी शारीरिक और बौद्धिक दुर्बलता का अनुभव संसद में बार बार किया जा रहा था। इसलिए लोहिया ने मशविरा दिया कि 'बीमार देश के बीमार प्रधानमंत्री को इस्तीफा देना चाहिए !' ऊपर से यह भी कहा कि 'यह बात नेहरू के हित में ही मैं कह रहा हूं !'

23

अमेरिका में सत्याग्रह

1964 के प्रथम छमाही में लोहिया ने अपनी दूसरी विश्व-यात्रा की, लगभग दो महीनों की अवधि में आपने आते-जाते समय में कुल मिलाकर सोलह देशों का सरसरी दौरा किया था। अमेरिका में आप दो हफ्ते रहे थे।

उसी क्षण, उसी दम अन्याय का प्रतीकार करने वाले अदम्य साहस के धनी लोहिया का अनुभव भारतीयों की भांति अमेरिका निवासियों ने भी किया, प्रसंग कुछ यों हुआ था— 28 मई 1964 को मिसिसिपी राज्य के जैक्सन गांव में किसी कार्यक्रम के सिलसिले में लोहिया पहुंचे थे, स्थानीय नीग्रो कार्यकर्ताओं ने गोरे मालिक के कैफेटेरिया में सभा का आयोजन किया था, इसके लिए मालिक ने हामी भर दी थी, परंतु जैसे ही लोहिया नीग्रो कार्यकर्ताओं के साथ कैफेटेरिया के दरवाजे पर पहुंचे मालिक ने उन्हें प्रवेश देने से इनकार कर दिया, इसलिए कि वह होटल सिर्फ श्वेतवर्णियों के लिए था। प्रवेश-बंदी की अवहेलना कर जब लोहिया अंदर जाने लगे तब मालिक ने कहा, 'आप अंदर नहीं आ सकते, यह निजी स्थान है, आप चले जाइए !' लोहिया दृढ़तापूर्वक बोले, 'माफ कीजिएगा, लेकिन मैं यहां से नहीं जाऊंगा !'

कैफेटेरिया के मालिक ने स्थानीय पुलिस लैफ्टिनेंट को पहले ही बुला रखा था, उसने सामने बढ़कर कहा, 'ऐसी स्थिति में आपको गिरफ्तार करने के अतिरिक्त मेरे पास अन्य कोई विकल्प नहीं है।' फिर लोहिया को गिरफ्तार कर मोटर में बिठाया गया और कुछ मील दूर ले जाकर वहां पर छोड़ दिया गया।

लोहिया की गिरफ्तारी की खबर पाते ही अमेरिकी विदेशी विभाग ने उनसे माफी की याचना की; इस पर लोहिया ने साफ साफ कह दिया, 'मेरे माफी मांगने का कोई मतलब नहीं, प्रेजिडेंट जोनसन को स्वाधीनता देवी से माफी मांगनी चाहिए।' रिहाई के बाद लोहिया बोले, 'अमेरिका की त्रुटियों पर उंगली रखने का मेरा जरा भी इरादा नहीं है, ऐसे अंधियारे आयाम कहां नहीं हैं ? अमेरिका में भी हैं और भारत में भी हैं।'

अपने एक वक्तव्य में लोहिया ने अमेरिका को लेकर अपनी कुछ अपेक्षाओं को

व्यक्त किया था, 'संसार ने आज तक ईसा मसीह और गांधीजी की अहिंसा के प्रयोग देखे। आज अमेरिका को अहिंसा के बिस्मार्क की आवश्यकता है और प्रेजिडेंट जोनसन अमेरिका की अहिंसा के बिस्मार्क बन सकते हैं। आप रूस के क्रुश्चेन से वार्ता सिर्फ अणुअस्त्र बंदी पर न करते हुए इस बात पर ठोस चर्चा करें कि संसार से दरिद्रता को किस तरह हटाया जा सकता है।'

अमेरिका के दौरे की समाप्ति पर अपनी प्रतिक्रिया देते हुए लोहिया ने कहा था कि 'जिस देश का मिसिसिपी राज्य मुझे कैद करता है और जहां वाशिंगटन की सरकार मुझ से माफी चाहती है उस संयुक्त अमेरिकी संघ राज्य के लोगों के कार्य में—जिनकी प्रेरणाएं आदर्शवादी हैं—मैं इन्हीं में से एक बनकर शरीक हो सका, इसलिए 1951 की यात्रा में जो प्रेम पाने से मैं रह गया था उसकी पूर्ति आज हुई है।' वांशिक पक्षपात के विरोध में लोहिया के किए गए सत्याग्रह के कारण अमेरिका के नीग्रो आपकी ओर आकर्षित थे।

इधर भारत में 27 मई 1964 को नेहरू का देहावसान हुआ, इसकी खबर लोहिया को 28 मई को हुई, इस दिन लोहिया जैक्सन में सत्याग्रह में फंसे हुए थे। नेहरू के निधन का समाचार पाते ही अपना शोक व्यक्त करते हुए उन्होंने कहा था कि '1946 तक जो एक योद्धा थे और जिनके आह्वान पर मैंने प्रतीकार की चुनौती तक को ललकारा था। भारत के प्रधानमंत्री और कांग्रेस पक्ष के विशिष्ट नेता नेहरू के निधन से मुझे गहरा दुख हुआ है। एक समय था कि जब इन्होंने अपने मोहक नेतृत्व से हमें आकर्षित किया था, उनकी मौत पर मैं अपना शोक व्यक्त करता हूं। यादें भले धुंधली पड़ जाएं परंतु उनकी मन पर पड़ी छाप अमिट ही रहती है। इस समय शोक संतप्त भारतीय जनता से मेरा निवेदन है कि वह 'क्रांति को कैद करने वाली बेड़ियों को तोड़ दे !'

जब तक लोहिया भारत लौटे नहीं थे, बीच की अवधि में प्रजा समाजवादी और समाजवादी पक्षों की राष्ट्रीय कार्यकारी समितियों ने यह निर्णय कर लिया था कि अपने अलग पक्ष को बरखास्त करें और दोनों का एकत्रित संयुक्त समाजवादी पक्ष गठित कर लिया जाए। नवीन गठित संयुक्त समाजवादी पक्ष की स्थापना अधिवेशन अभी बकायदा नहीं हुआ था, फिर दोनों पक्षों के नेताओं ने अस्थायी समिति बनाकर काम शुरू कर दिया था। यह चर्चा जारी थी कि नवगठित संयुक्त समाजवादी पक्ष में लोहिया आएंगे अथवा नहीं ? लोहिया का प्रवेश इस बात पर निर्भर था कि नवगठित पक्ष की नीति, उद्देश्य और कार्यक्रम क्या रहेंगे तथा भूतपूर्व प्रजा समाजवादी पक्ष के नेता उनके साथ किस तरीके से संबंध रखते हैं ?

भारत में लौट आने पर अपनी हर प्रकट सभा में लोहिया ने अपनी राजनैतिक भूमिका बार बार और निःसंदिग्ध शब्दों में कही थी। 'कांग्रेस को समाप्त किए बिना न क्रांतिकारी परिवर्तन संभव है और न समाजवाद ! इसलिए विरोधी पक्षों को चाहिए कि आपसी मतभेदों को समाप्त कर चुनाव में कांग्रेस के विरोध में एक ही उम्मीदवार खड़ा किया जाए।'

लोहिया की इच्छा थी कि नया पक्ष मात्र चुनावबाजी में न लगे, बल्कि उसे चाहिए कि वह प्रखर जनसंघर्ष को संगठित करे। देश में महंगाई और भुखमरी पराकाष्ठा पर पहुंच चुकी थी और परिणामतः कई स्थानों पर समाजवादी पक्ष ने भुखमरी के विरोध में प्रदर्शन किए और इस समय कोई न कोई प्रभावशाली कृति करने का आह्वान आपने अपने कार्यकर्ताओं का किया था। आपने सुझाव दिया था कि 'गरीबों के लिए आठ आने सेर की उचित दर से अनाज दिए जाने की मांग के लिए अनाज गोदामों को घेर लिया जाए और सत्याग्रह किया जाए। इसकी पूर्व जानकारी सरकार को देने की कोई आवश्यकता नहीं है। संभव है ऐसे सत्याग्रहों में देशभर में दस बीस हजार की मौत होगी, वैसे भी खाली पेट भरने में कहां शूरता है ? शायद इस बलिदान से भविष्य में होने वाली भुखमरी तो नहीं होगी !' लोहिया ने यह आह्वान भी किया कि 'सरकारी गोदामों पर कब्जा कर अंदर का अनाज आठ आने सेर की दर से बेचा भी जाए ! मध्य प्रदेश में एक गोदाम अपने काबू में लेकर, अनाज बेचकर, उसका हिसाब भी ढंग से रखा गया है।'

भुखमरी विरोधी आंदोलन के प्रचार के लिए लोहिया बिहार के दौरे पर थे, चार-पांच शहरों में दो दो लाख की विराट भीड़ को आपने संबोधित किया, इससे सत्ताधारी कांग्रेस पक्ष में बेचैनी बढ़ी। कांग्रेस ने आक्रामक रुख अपनाकर अपने कार्यकर्ताओं का आह्वान किया कि 'अमेरिका में नेहरू की निंदा करने वाले लोहिया का स्वागत जूतों और काली झंडियों से किया जाए, यह भी किया जा सकता है कि लोहिया बिहार से जीवित न लौट पाएं।' इस भड़काने वाले प्रचार के बावजूद लोहिया के भाषण लोगों ने बहुत ही शांति से और ध्यान देकर सुने, मानो जनता को उत्सुकता थी।

प्रजा समाजवादी पक्ष और समाजवादी पक्ष के विलीनीकरण का निर्णय अवश्य किया गया था परंतु समाजवादी पक्ष के नेताओं की लोहिया के साथ मत-भिन्नता बरकरार थी। प्रजा समाजवादी पक्ष के नेताओं को लोहिया की कांग्रेस विनाश की बात नहीं भा रही थी। संयुक्त समाजवादी पक्ष के संयुक्त सचिव और प्रजा समाजवादी पक्ष के नेता प्रेम भसीन ने प्रकट तौर पर कह दिया था कि 'कांग्रेस विनाश, पक्ष का उद्देश्य नहीं है, पक्ष का उद्देश्य समाजवाद की स्थापना करना है। अगर लोहिया इसी तरह अपना मत प्रदर्शित करते जाएंगे तो संभव है कि आपसी संबंध टूट जाएंगे और ऐसी स्थिति दुर्भाग्य मात्र होगी।' लोहिया ने स्पष्ट किया, 'आप लोग डरें नहीं, फूट डालने की मेरी जरा भी इच्छा नहीं है।'

संयुक्त समाजवादी पक्ष की अस्थायी राष्ट्रीय समिति ने लोहिया के इस सुझाव पर कि चुनावों में सभी विरोधी पक्ष एकत्रित विचार करते हुए कांग्रेस के विरोध में एक ही एक उम्मीदवार खड़ा करें, अभी अपनी अनुकूलता नहीं दिखाई थी। इसलिए जब इस दरम्यान फूलपुर (उत्तर प्रदेश) और मोंधीर (बिहार) में उपचुनाव हुए तब जनसंघ और संयुक्त समाजवादी परस्पर विरोध में लड़े और परिणाम में संयुक्त समाजवादी प्रत्याशी चुनाव हार गए।

इसी समय संसद में एक महत्वपूर्ण प्रश्न को लेकर लोहिया सभापति से उलझ गए,

सभापति ने लोहिया को सदन से बाहर जाने का आदेश दिया, स्वाभाविक था कि लोहिया को यह बात अन्यायपूर्ण लगी, परंतु मार्शल के जरिए निकलवाए जाने की अति को टालने के इरादे से लोहिया बाहर चले गए, सदन में उपस्थित पांच समाजवादी पक्ष के सदस्य भी इस कांड के निषेध के लिए लोहिया के साथ बाहर चल दिए। लेकिन प्रजा समाजवादी पक्ष के सदस्य अपने स्थानों पर अविचल रहे। इस बहाने प्रजा समाजवादी पक्ष के नेताओं और लोहिया के बीच की दूरी अधिक गहराई और प्रकट भी हुई।

संयुक्त समाजवादी पक्ष की सदस्यता ग्रहण करें अथवा नहीं की दुविधा में लोहिया अभी फंसे हुए थे। शुरू शुरू में एक बार आपने कहा था, "अगर 51 फीसदी भी, संयुक्त समाजवादी पक्ष अच्छा बनेगा तो मुझे उसमें जाने में कोई हिचक नहीं, अपने सिद्धांतों से 49 प्रतिशत समझौता करने के लिए मैं तैयार हूं।" लेकिन बाद में लोहिया ने यह भी स्पष्ट कर दिया कि "जब तक मैं संयुक्त समाजवादी पक्ष के मन की थाह नहीं पाता, मैं सदस्य नहीं बनूंगा, जितनी हो सके उतनी सेवा दूर रहकर ही करूंगा।"

अंततः जनवरी 1965 के आखिरी तीन दिनों में वाराणसी में संयुक्त समाजवादी पक्ष की बाकायदा स्थापना करने वाला राष्ट्रीय अधिवेशन संपन्न हुआ। प्रजा समाजवादी पक्ष के नेता एस0एम0 जोशी अधिवेशन के अध्यक्ष थे। लोहिया अधिवेशन में नहीं गए थे। इसलिए कि अस्थायी संयुक्त समाजवादी पक्ष के आप साधारण सदस्य भी नहीं थे। बावजूद इसके पक्षों की अस्थायी राष्ट्रीय समिति के कुछ प्रजा समाजवादी सदस्यों सहित कुछ सदस्यों और हजारों प्रतिनिधियों की इच्छा थी कि लोहिया अधिवेशन के लिए आएं।

प्रतिनिधियों और दर्शक सदस्यों की अभूतपूर्व संख्या की दृष्टि से अधिवेशन बहुत ही सफल रहा, साथ ही समूचे अधिवेशन पर आशा-आकांक्षाओं और आशंका-भय की मिली जुली छाया भी मंडराती रही थी। अधिवेशन के पहले दिन प्रतिनिधियों और दर्शक-सदस्यों की विराट शोभा यात्रा आयोजित की गई थी, जुलूस के एक हिस्से में सहसा संयुक्त समाजवादी पक्ष जिंदाबाद ! जोशी 'लोहिया जिंदाबाद' के नारे बुलंद हुए। कुछ लोगों ने दूसरे हिस्से से आई 'लोहिया मुर्दाबाद' की हल्की सी ध्वनि भी सुनी थी। पहले हिस्से ने 'लोहिया जिंदाबाद' का नारा बुलंद करते हुए उसका प्रत्युत्तर दिया। जुलूस के एक हिस्से में सहसा खलबली मची और नौबत हाथापाई तक पहुंची।

शोभायात्रा संपन्न हुई और अधिवेशन की कार्यवाही शुरू की गई। स्वागताध्यक्ष प्रभुनारायण सिंह ने लोहिया की अनुपस्थिति पर खेद व्यक्त करते हुए लोहिया की भूरि भूरि तारीफ की। तब कतिपय प्रजा समाजवादी नेता गुस्से में अधिवेशन छोड़कर चले गए। थोड़ी सी हलचल इससे मची, फिर भी बाद में अधिवेशन के अध्यक्ष एस0एम0 जोशी का वक्तव्य संपन्न हुआ। महत प्रयासों के बाद हो रहा ऐक्य टिक भी पाएगा या नहीं के आशंकित वातावरण में दूसरे दिन के कार्यक्रम शुरू हुए। इस बीच दोनों तरफ के समझदार कार्यकर्ता-नेताओं ने स्थिति को सामान्य बनाने के भरसक प्रयत्न किए—खासकर एस0एम0

जोशी ने। दो दिन-दो रात लगातार बैठक जमा कर नीति और कार्यक्रम का सर्वमान्य मसौदा तैयार करने में समिति ने सफलता पाई।

अधिवेशन के आखिरी दिन की कार्यवाही शुरू होते ही जुलूस में हुई हाथापाई के बहाने एक निवेदन पढ़ा गया और अस्थायी राष्ट्रीय समिति के प्रजा समाजवादी पक्ष के चौदह सदस्यों में बारह सदस्यों ने सभा-त्याग किया और वे दुबारा नहीं लौटे। इस तरीके से संयुक्त समाजवादी पक्ष में शुरू में ही फूट पड़ गई। इस पर अपनी प्रतिक्रिया देते हुए अधिवेशनाध्यक्ष एस0एम0 जोशी ने कहा, 'अभी जो चले गए हैं वे पूर्व निर्धारित इरादे से ही आए थे कि पक्ष त्याग कर जाना है।'

अलग हुए नेताओं-कार्यकर्ताओं ने फिर से एक बार प्रजा समाजवादी पक्ष की स्थापना की परंतु समाजवादी पक्ष की अधिकांश शाखाएं और उसके अधिकांश कार्यकर्ता संयुक्त समाजवादी पक्ष के सदस्य बने रहे।

लोहिया ने एक पत्रक के जरिए एस0एम0 जोशी को गौरवान्वित करते हुए कहा था कि 'संयुक्त समाजवादी अधिवेशन में पारित नीति, उद्देश्यों और कार्यक्रमों का मसौदा देखकर मैं थोड़ा बहुत कायल होने लगा हूं कि संयुक्त समाजवादी पक्ष का सदस्य बन जाऊं। अगर ना0ग0गोरे, त्रिलोकी सिंह ठाकुर, निरंजन सिंह भी संयुक्त समाजवादी पक्ष में रहने का निर्णय करते तो मुझे मेरा निर्णय करने में अधिक आसानी हो जाती।'

मई 1965 में लोहिया मधु लिमये के साथ कम्युनिस्ट पूर्व जर्मनी के दौरे पर गए थे। वहां की संसद के आमंत्रण पर लोहिया जा रहे थे। लोहिया ने बर्लिन के जिस विश्वविद्यालय—हम्बोल्ट से अपनी पीएच.डी. की उपाधि पाई थी उसने भी लोहिया को अपना विशेष आमंत्रण दिया था। पूर्व जर्मनी का दौरा करने के उपरांत लोहिया ने सोवियत रूस का भी संक्षिप्त दौरा किया। दोनों देशों का दौरा करने के उपरांत अपनी प्रतिक्रिया देते हुए लोहिया ने कहा था कि 'अमेरिका में मैं कह सकता हूं कि प्रेजिडेंट जोनसन जाए भाड़ में, इस स्वातंत्र्य में अनोखा आनंद है परंतु इस तरह का आनंद न मुझे पूर्व जर्मनी में मिल सका और न सोवियत भूमि में !'

रूस से लौटते समय लोहिया ने अफगानिस्तान के काबुल शहर में खान अब्दुल गफ्फार खां-'सरहदी गांधी' से भी भेंट की। गफ्फार खां के प्रति लोहिया के मन में अपार आदर था—उनकी नजर में गफ्फार खां 'एशिया महाद्वीप के सबसे श्रेष्ठ नेता' थे। गफ्फारखां के साथ बातचीत में भारत-पाक संबंध, पख़्तुनिस्तान जैसे समान संवेदना के विषयों पर विस्तृत और लंबी चर्चा हुई। लोहिया ने खां साहब को भारत में आने के लिए आमंत्रित भी किया। वैसे लोहिया कभी किसी भी मंत्री से मिलते नहीं थे परंतु सरहदी गांधी से भेंट करने के बाद उन्होंने प्रधानमंत्री लालबहादुर शास्त्री से भेंट की और निवेदन किया कि खां साहब के स्वास्थ्य लाभ की दृष्टि से हमेशा के लिए भारत में रहने का आमंत्रण दिया जाए।

इसी समय, पाकिस्तान ने भारतीय भूमि कच्छ पर सहसा आक्रमण किया और

भारत-पाक युद्ध शुरू हो गया था। कच्छ के कुछ हिस्से पर पाकिस्तान ने कब्जा कर लिया था। भारत ने पाकिस्तान के साथ 'कच्छ संधि' की और युद्ध समाप्त हो गया। जब लोहिया विदेश यात्रा से लौटे तब तक 'कच्छ संधि' हो चुकी था। संयुक्त समाजवादी पक्ष ने 'कच्छ संधि' के विरोध में अभियान चलाया और कच्छ की सीमा पर सत्याग्रह करने की उसकी योजना थी।

उस समय प्रधानमंत्री पद पर लालबहादुर शास्त्री थे। 'कच्छ संधि' पर अपनी टिप्पणी करते हुए लोहिया ने लोक सभा में शास्त्री-सरकार की नीति को भी आड़े हाथों लिया था। लोहिया ने कहा था कि 'प्रधानमंत्री आध्यात्मिक संत और प्रशासनिक प्रधान की दो दो भूमिकाएं एक साथ निभाने की कोशिश कर रहे हैं; शांति, अहिंसा और पंचायत का जाप करते हुए वास्तव में वे युद्ध को समीप खींच रहे हैं। भले आप आज कच्छ को दान में दे दें, युद्ध रुकने वाला नहीं है, कल कश्मीर की समस्या पर युद्ध शुरू किया जाएगा, फिर कल आप कश्मीर भी दान दे दें, तब भी युद्ध रुकने वाला नहीं; पूर्व और पश्चिम पाकिस्तान जोड़ने लायक रास्ता, नदियों के पानी का बंटवारा जैसे प्रश्नों पर पाकिस्तान लगातार व्यर्थ के बखेड़े मचाता ही रहेगा। सब कुछ देने के बावजूद तीन महीनों से अधिक कल तक शांति नहीं रह सकेगी।' आगे चलकर पाकिस्तान ने जब भारतीय भूमि पर आक्रमण किया तब भारतीय सेना प्रतिवाद में पाक सीमा पार कर शुरू में लाहौर की दिशा में चल पड़ी तब लोहिया को अपना प्रण पूरा होने का कुछ अहसास हुआ।'

कच्छ सीमा के निरीक्षण पर निकलने से पहले लोहिया ने घोषणा की कि 'आगामी दिसंबर तक मैं और मेरा पक्ष सरकार की बेशर्माई से जनभावना को कुचलने की कच्छ नीति और आर्थिक नीति में परिवर्तन कराएगा या नामशेष हो जाएगा। जहां तक मेरा अपना सवाल है 1965 की समाप्ति से पहले यह प्रण पूर्ण हुआ होगा।

इन दिनों भुखमरी के विरोध में किया जा रहा आंदोलन भी दिन-ब-दिन जोर पकड़ता जा रहा था, बल्कि उग्रतर होता जा रहा था। महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार और बंगाल में आंदोलन अपेक्षतः अधिक जोरों पर था। 9 अगस्त को पटना में लोहिया की विराट सभा हुई और भारत संरक्षण कानून के दफा तीस के तहत लोहिया को गिरफ्तार किया गया। लोहिया ने अपनी गिरफ्तारी के गैरकानूनी होने के मुद्दे पर सर्वोच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाया। लोहिया का प्रयास था कि भारतीय जनता इस पाखंडी यथार्थ से परिचित हो जाए कि राजनैतिक विरोध का दमन करने के लिए, वाकई देश हित के लिए किए गए भारत संरक्षण कानून का किस तरह दुरुपयोग आज किया जा रहा है। सर्वोच्च न्यायालय ने लोहिया के निवेदन पर सुनवाई की जाने की इजाजत दे दी। लोहिया ने स्वयं अपनी वकालत की। लोहिया ने अपना निवेदन हिंदी में करने की अनुमति चाही, न्यायालय ने इस की अनुमति दे भी दी परंतु इस प्रार्थना के साथ कि 'अगर लोहिया अपना निवेदन अंग्रेजी में करेंगे तो न्यायालय के लिए सुविधा होगी।' तब लोहिया ने अपना निवेदन अंग्रेजी में किया, सुनवाई चार दिनों तक चली, और चार बनाम एक मत से सर्वोच्च न्यायालय

ने लोहिया को निर्दोष रिहा किया। अपने निर्णय में अदालत ने कहा था कि 'भारत संरक्षण कानून का अर्थ विदेशी आक्रमण और आपातकालीन संदर्भों में ही किया जाना चाहिए। कानून और सुरक्षा मात्र के खातिर इस कानून का प्रयोग करना योग्य नहीं है। जब विजयी लोहिया ने संसद सदन में प्रवेश किया तब देर तक तालियों की गूंज करते हुए विरोधी सदस्यों ने उनका स्वागत किया था।

जन-आंदोलन की लपटें राजधानी दिल्ली तक पहुंची थीं। यहां तक कि पुलिस दल में भी असंतोष की चिनगारियां धधकने की प्रतीक्षा में थीं, विद्यार्थी सड़कों पर उतर आए थे। 18 नवंबर को विद्यार्थियों की एक बहुत बड़ी रैली का आयोजन किया गया था और कुल मिलाकर परिस्थिति बहुत ही संवेदनशील और विस्फोटक बनी हुई थी। सरकार को संशय था कि दिल्ली के विद्यार्थी-आंदोलन के पीछे लोहिया की प्रेरणा और उत्तेजना है। इसलिए नियोजित तारीख से पहले ही, अर्थात 15 नवंबर को लोहिया और साथ के अन्य तीन नेताओं को गिरफ्तार किया गया था। विरोधी पक्ष के सांसदों ने सदन में लोहिया की गिरफ्तारी का जोरदार निषेध किया। लोहिया ने अपनी गिरफ्तारी के गैरकानूनी होने के मुद्दे पर दिल्ली उच्च न्यायालय में आवेदन दिया परंतु आवेदन की सुनवाई से पहले ही लोहिया को रिहा कर दिया गया था।

जमानत पर रिहाई पाने के बदले जेल में रहते हुए लोहिया ने 1951 से 1966 तक अपनी गिरफ्तारी के विरोध में चार बार न्यायालयीन लड़ाई की थी, लोहिया की हर गिरफ्तारी गैरकानूनी और संविधान विरोधी थी। इसलिए कभी सुनवाई के उपरांत न्यायालय ने उन्हें निर्दोष पाकर रिहा किया तो कभी सुनवाई से पहले ही सरकार ने उन्हें मुक्त कर दिया था।

24

संसद में संघर्ष

'प्रधानमंत्री नौकर है और सदन उसकी मालिक, इसलिए नौकर को अपने उचित ढंग से संसद को पेश आना चाहिए।' लोकसभा में प्रवेश पाने के चौथे दिन ही लोहिया ने नेहरू को उक्त बात सुनाई थी। इस बहाने आपने शासन और जन प्रतिनिधि-संस्था के संसदीय जनतंत्र में पारस्परिक संबंधों की व्याख्या प्रस्तुत की थी। इससे पहले संसद में यह हिम्मत किसी ने नहीं दिखाई थी कि प्रधानमंत्री को अपनी वास्तविक औकात का अहसास दो टूक शब्दों में करा दे।

स्वाधीनता आंदोलन के अखिल भारतीय स्तर के वरिष्ठ नेताओं में से आचार्य कृपलानी वह पहले नेता थे जो लोक सभा में विरोधी पक्षों की पंक्ति में बैठते थे। लोहिया के आगमन से अन्य एक ज्येष्ठ और बुद्धिमान नेता विरोधियों के दल में आ मिला था। यह लोक सभा में पहला अवसर था जब नेहरू और लोहिया सीधे परस्पर आपने सामने खड़े हो गए थे।

कुछ लोगों को 'संसद में लोहिया' इस यथार्थ की कल्पना तक असंभव लगी, कुछ लोगों ने इसे विरोधाभास समझ लिया। बाहर खुले मैदान में बाजी मारने वाला रणधीर नेता संसद के सदन में पहुंचा था, मानो एक धधक कर जलता हुआ अग्निकुंड ही लोक सभा के वातानुकूलित शीत सदन में अवतीर्ण हुआ था। सड़क का उधमी मुस्टंडा, नाज़ोनखरेवालों के दीवानखाने में पहुंचा था। एक अंग्रेजी दैनिक ने लिखा था कि 'अ बुल इन अ चाइना शॉप !'

लोहिया की अपेक्षा थी कि संसद जनता की आशाओं, आकांक्षाओं और व्यथाओं का आइना बने और इसके लिए वे सतत प्रयत्नशील भी रहे। लोहिया का प्रयत्न सदन के सभापति की उस स्वच्छंद प्रवृत्ति पर अंकुश लगाने का था जिसमें वे सत्तारूढ़ और बहुमत वाले कांग्रेस पक्ष के अनुकूल निर्णय करने के कायल बने हुए थे। इसलिए अपने प्रयत्नों में बाधा डालने वाले उन सभी नियमों-अधिनियमों, संसदीय नए-पुराने संकेतों, रिवाजों-परंपराओं और अभिव्यक्तियों का लोहिया ने लगातार और सक्रिय विरोध किया।

प्रश्न, उपप्रश्न, स्थगन प्रस्ताव, ध्यानाकर्षण प्रस्ताव, आधे घंटे की चर्चा, विशेषाधिकार, प्रसंगोपात्त सभात्याग, आदि हर संभव युक्ति और प्रयुक्ति का बहुत ही चतुराई और कुशलता से प्रयोग करते हुए लोहिया ने अपने लक्ष्य को सिद्ध करने के प्रयास लगातार किए जिससे सरकारी प्रशासन परेशान हो जाया करता था। लोहिया की वजह से लोक सभा में विरोधी पक्षों की धाक बहुत बढ़ी थी। लोहिया ने कभी अजीज बनकर तो कभी आक्रामक होकर, कभी मर्मभेदक होकर तो कभी नवविचारों से ओतप्रोत अपनी तीखी, पैनी, चुभती, धारा प्रवाह शैली में दिए गए भाषणों से सरकार और विरोधी पक्षों को एक साथ प्रभावित किया था। लोहिया को भारतीय संविधान और संसदीय नियमों-अधिनियमों का अचूक ज्ञान था। आरंभ में दो-एक महीनों में ही श्रेष्ठ संसदपटु के रूप में आपकी धाक जम गई थी।

स्वाधीनता प्राप्त किए सोलह साल बीते थे और लोहिया लगातार अपने प्रकट भाषणों और समाचारपत्रीय वक्तव्यों के जरिए देश के साथ संपर्क बनाए हुए थे। अब आपके पास लोक सभा का भी एक जरिया था। अपने और समाजवादियों के विचारों और कार्यक्रमों के प्रचार-प्रसार के लिए अर्थात समाजवाद की लड़ाई में एक साधन के रूप में लोहिया ने लोक सभा का माध्यम के नाते भरपूर उपयोग कर लिया था। पंडित जवाहरलाल नेहरू, लालबहादुर शास्त्री और इंदिरा गांधी जैसे भिन्न भिन्न प्रकृति और स्वभाव के प्रधानमंत्रियों का सामना लोहिया ने किया और इन्हें भी लोहिया का सामना करना पड़ा था।

चाहे अपनी अंग्रेजियत की शेखी बघारनी हो, मंत्रियों पर अपना प्रभाव डालने के इरादे से हो अथवा अंग्रेजी समाचारपत्रों में अपनी प्रसिद्धि की अभिलाषा से हो, सत्तारूढ़ पक्ष के और विरोधी पक्षों के भी अधिकांश सदस्य अंग्रेजी में बोलते थे, परंतु लोहिया कभी भी अंग्रेजी में नहीं बोले। उनकी मान्यता थी कि जब मत मांगने पहुंचते हैं तब लोकभाषा का प्रयोग, जब संसद में बोलना हो तब अंग्रेजी का प्रयोग करना, इसे लोकद्रोह के अतिरिक्त और कुछ नहीं कहा जा सकता। इसलिए लोहिया ने अपनी मातृभाषा हिंदी में अपने सारे वक्तव्य देकर लोकसभा में देशज भाषाओं को प्रतिष्ठा दिलाई थी, और एक तरह से भाषायी जीवंतता को बरकरार रखा था, परिणामतः जो सदस्य अंग्रेजी नहीं जानते और बोल पाते थे वे लोहिया की देखादेखी धड़ल्ले से अपनी अपनी मातृभाषाओं में बोलने लगे। लोहिया तो जानबूझ कर जनता की बोली—हिंदी में—बोला करते थे। लोहिया ने कभी पंडिताऊपन के बोझ से लदी हिंदी का प्रयोग नहीं किया। लोहिया के पहले भाषण पर टिप्पणी करते हुए नेहरू ने लोहिया की भाषा को बाजारू हिंदी कहा था। 'जहन्नम में जाए', 'खोपड़ी', 'जंतु' जैसे खड़ी बोली हिंदी के प्रयोगों पर जब असंसदीय शब्द प्रयोग कह कर आपत्ति की जाती थी तब लोहिया ने सहज जिज्ञासा व्यक्त की थी अगर अंग्रेजी 'गो टू हेल' असंसदीय शब्द नहीं है तो 'जहन्नम में जाए' को क्यों असंसदीय कहा जाए ? एक बार लोहिया ने इंदिरा गांधी का जिक्र करते हुए 'औरत' शब्द का उपयोग किया था। इसी तरह से तहलका मचाया गया था, 'महिला' शब्द प्रतिष्ठा का माना जाता था। और 'औरत' असंसदीय ! अंग्रेजी संवाददाताओं के हिंदी के अज्ञान के कारण, कभी अनजाने में, तो कभी जानबूझ

कर लोहिया के हिंदी कथनों को विकृत रूप में छापा जाता था, परंतु लोहिया ने कभी इनकी परवाह नहीं की और अपनी मातृभाषा हिंदी के प्रेम को उन्होंने बेखटके जारी रखा और इसे अंत तक निभाया भी। लोहिया का वैचारिक व्यक्तित्व इस कदर तगड़ा था कि कोई समाचारपत्र इनकी उपेक्षा कर पाने का साहस नहीं कर सकता था।

लोहिया अगर दौरे पर हों अथवा बीमार न हों तो शायद ही कभी वे सदन में अनुपस्थित रहे हों, वरना नियमित रूप से आप उपस्थित रहा करते थे। सदन में प्रश्न करना होता या वक्तव्य देना होता तो लोहिया पूरी तैयारी पहले से कर लेते थे, संबंधित जानकारी और सांख्यिकी की पूरी जानकारी के साथ आप अपनी बात कहते थे, निरे भाषण के लिए भाषण आपने कभी नहीं किया, हर वक्तव्य में से आपने एक न एक मुद्दा रेखांकित किया है, और हमेशा करते थे। विषय की गहरी जानकारी, प्रतिपाद्य की सुस्पष्ट कल्पना, नवनवीन विचारों का समावेश और इन सब को धारा प्रवाह भाषा शैली में कहने के कारण लोहिया के लोकसभा में दिए गए वक्तव्य अत्यंत प्रभावशाली हुआ करते थे। अपनी बात को आकर्षक और अत्यंत नाटकीय ढंग से पेश करने में लोहिया अपना सानी नहीं रखते थे। धुआंधार आक्रामकता, मार्मिकता, जैसे प्रभावशाली वक्तृता के लिए आवश्यक गुणों के साथ साथ लोहिया की वाणी में नवनीत कोमल जैसी वह आत्मीयता थी जो सहज ही हृदय को छू जाती थी, सहज मानवीय संवेदना के वक्ता के नाते लोहिया प्रसिद्ध थे।

सदन में उपस्थित प्रायः हर राष्ट्रीय और विदेशी प्रश्न पर लोहिया ने अपना वक्तव्य दिया। इन सभी प्रश्नों को लोहिया ने हमेशा व्यापक परिप्रेक्ष्य में और विशाल वैचारिक धरातल पर उठाया और चर्चित किया था। भारतमाता और पृथ्वीमाता, भाषा, स्त्री, शूद्र, जातिप्रथा, भुखमरी, साइकिल रिक्शावाले, वेश्या, विधवा, आदि आज तक संसद द्वारा उपेक्षित विषयों पर किए वक्तव्य में से लोहिया की समदृष्टि और मानवीय करुणा के साथ अन्याय के विरुद्ध बौखला उठने वाले प्रखर क्रोध और अन्याय निवारण के लिए विलक्षण बेचैनी, प्रखर राष्ट्रवाद तथा विश्व प्रेम की भावना के दर्शन भी होते हैं।

लोहिया के संसदीय कर्तृत्व का प्रारंभ विरोधी पक्षों की ओर से नेहरू सरकार के विरोध में किए गए अविश्वास प्रस्ताव की प्रस्तुति के समय दिए गए प्रसिद्ध भाषण के साथ हुआ था। लोहिया की प्रेरणा और प्रयत्नों से सभी विरोधी पक्षों ने सम्मिलित रूप में एक पंक्ति का—'वर्तमान सभागृह सत्ताधिष्ठित मंत्रिपरिषद पर अपना अविश्वास व्यक्त करता है', अविश्वास प्रस्ताव दिया था। इससे पहले नेहरू सरकार के विरोध में इस तरह का अविश्वास प्रस्ताव कभी दायर नहीं किया गया था। स्वाधीनता आंदोलन के ज्येष्ठ कार्यकर्ता, और इसी तरह के नेहरू के सहयोगी आचार्य कृपलानी ने प्रस्तुत प्रस्ताव पेश किया था।

अविश्वास प्रस्ताव के निमित्त, सदन में दिया गया लोहिया का पहला भाषण भाषा शैली, प्रत्ययकारिता, नाटकीयता, आशय और विदारक यथार्थ के निर्मम दर्शन के कारण

प्रभावशाली, आदि गुणों से परिपूर्ण था। जब लोहिया के लिए निर्धारित समय खत्म हो चुका था तब अन्य विरोधी सदस्यों ने अपना समय लोहिया को सौंप दिया था। लोहिया ने जब भांप लिया कि अपने भाषण से कांग्रेसी सदस्य भी प्रभावित हो रहे हैं तब भाषण की गति में आपने कह दिया कि 'यहां बैठे हुए ये सारे सज्जन मित्र सरकार के समर्थन में मेज थपथपाने के लिए विवश हैं परंतु जब रात में अपने अपने घर पहुंचेंगे तब निश्चित रूप से यही कहेंगे कि वाकई ! लोहिया का भाषण बड़ा जबरदस्त रहा, बिलकुल हमारे मन की बात कही इसने !'

देश की वर्तमान दुर्दशा और दारिद्य, विषमता, प्रधान मंत्री नेहरू के खातिर होनेवाला अमर्यादित खर्च तथा चीनी आक्रमण के समय सरकार की नर्म दिली और डरपोकता की नीति—इन तीन प्रश्नों पर दिए गए अपने धुआंधार वक्तव्यों के कारण लोहिया का नाम देश भर में मशहूर हो गया।

कमजोरों पर लात प्रहार करने वाली और बलवानों के सामने माथा टेकने वाली सरकारी नीति की निंदा करते हुए लोहिया ने कहा था कि 'भारत की संघर्षशील और विद्रोही संतान है नागा ! लेकिन इन पर हवाई जहाज से बमबारी की जाएगी, दुम दबाकर भागने वाले पुर्तगालियों पर गोवा में बमबारी की जाएगी लेकिन आगे बढ़ने वाले चीनियों पर बमबारी करने की हिम्मत हमारी सरकार नहीं दिखा पाई।'

भारत जिन समस्याओं का सामना कर रहा था उनमें से हर ज्वलंत समस्या पर लोहिया ने अपने भाषणों में तूफानी आघात करते हुए उनका मार्मिक विश्लेषण भी किया है। देश ने लोहिया के हर भाषण से वैचारिक नवीनता, ताजगी, प्रश्न को समझने और विश्लेषित करने वाले नए दृष्टिकोण का अनुभव किया था।

सदन में उपस्थित किए गए हर प्रश्न पर लोहिया के भाषणों में भी देश ने नवीनता और मौलिकता के दर्शन किए हैं। जनतंत्र पर अविचल श्रद्धा, प्रखर राष्ट्रवादी निष्ठा, के साथ विश्व प्रेम और विश्व ऐक्य की लगन और सबसे महत्वपूर्ण शोषित-पीड़ित मनुष्य को केंद्र में रखकर ही अपने सारे भाषण लोहिया ने दिए हैं।

संसदीय जनतंत्र और संसद के अन्यान्य संबंधों पर लोहिया ने कई प्रसंगों और संदर्भों में अपने मूलगामी विचार व्यक्त किए हैं। भारत-पाकिस्तान युद्ध के समय लोहिया प्रयत्नशील थे कि सरकार संसद की ओर से यह जाहिर करे कि प्रस्तुत युद्ध अंत तक किया जाएगा, और अपनी बात को स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा था कि 'हमें इसका भान लगातार रहना चाहिए कि हवाई जहाजों और टैंकरों की अपेक्षा कई गुना अधिक बड़ा और शक्तिशाली शस्त्र संसद है।' अन्य एक प्रसंग में आपने कहा था कि 'जनतंत्र के ढांचे के रूप में ही संसद की सार्थकता नहीं है, ढांचा तो जरूरी है परंतु इसमें जनतंत्र के प्राण फूंक दिए जाएं तभी दोनों सार्थक हैं। प्राणहीन संसद निरा स्वांग, ढोंग, कर्मकांड और पाखंड का जमघट होगा, यहां सरकार और सांसद पशुओं की भांति सिर्फ चर्वण करते हुए बैठे रहते हैं। संसद को देश का प्रतिबिंब दिखाने वाला आइना बनना है।' इसी तरह अन्य एक संदर्भ में जनतंत्र

के संसद के बाहर भी विकसित होने की आवश्यकता का प्रतिपादन करते हुए आपने कहा था कि 'संसद के बाहर भी, यहां तक कि खेत खेत में कारखाना-दर-कारखाना और सड़कों पर भी जनतंत्र को विकसित किए जाने की आवश्यकता है।'

नेहरू पूजा, कांग्रेस का राक्षसी बहुमत और नामशेष विरोधियों के कारण संसद सरकार के हाथों में कठपुतली बन चुकी थी। कांग्रेस सदस्यों का काम अपने मंत्री के इशारे पर हाथ ऊपर उठाने भर का था। इन सदस्यों की आज्ञाधारी प्रवृत्ति पर टिप्पणी करते हुए लोहिया ने कहा था कि, 'जनतंत्र की अवज्ञा भी खतरनाक है और आज्ञाकारिता भी खतरे से खाली नहीं है, इसमें मात्राभेद करने की बहुत आवश्यकता है। संसदीय नियमों-अधिनियमों के डंडे से सभापति की ओर से प्रायः यह प्रयत्न होता रहता था कि विरोधियों की आवाज दबा दी जाए। सभापति, संसद सदस्य को सदन से बाहर जाने की आज्ञा करते थे, ऐसे ही एक प्रसंग पर टिप्पणी करते हुए लोहिया ने कहा था कि 'यह गलत है कि हमेशा विरोधियों को ही बाहर निकाल दिया जाए; जो मंत्री नियमों को भंग करते हैं उन पर भी यही नियम लागू किया जाए।'

लोहिया के मार्मिक वाक्प्रहारों से मंत्री और सरकारी पक्ष के सदस्य तिलमिला जाते थे और ऐसे प्रसंगों में सरकारी सदस्यों का झुंड लोहिया के भाषण में हो-हल्ला मचाकर व्यवधान डालने की कोशिश करता था। इंदिरा गांधी के जमाने में ऐसे सदस्यों का एक ब्रिगेड ही मानो संसद सदन में कायम किया गया था। एक बार सभापति को संबोधित करते हुए लोहिया ने कहा था कि 'सभापति महोदय ! आपकी आज्ञा का मैं यथासंभव पालन करूंगा लेकिन इस झुंडशाही का पालन मुझ से हरगिज नहीं होगा !'

सरदार हुकुमसिंह जब सभापति थे तब आरंभिक कुछ समय के लिए लोहिया के साथ उनके सबंध स्नेह और आदर के रहे थे। एक बार सरदार हुकुमसिंह को संबोधित करते हुए लोहिया बोले कि 'सभापति महोदय ! मैंने जितना पालन आपकी आज्ञाओं का किया है उतना, सिवा एक व्यक्ति की आज्ञाओं के, पालन करने के मैंने अन्य किसी का नहीं किया है।' सरदार हुकुमसिंह ने भी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए तुरंत कहा कि 'मैं भी जितना कृतज्ञ आपका हूं उतना बहुत ही कम व्यक्तियों का हूं !' आगे चलकर जब हुकुमसिंह ने प्रधानमंत्री, खासकर इंदिरा गांधी को संरक्षण देने के इरादे से विरोधियों की आवाज को दबाने के प्रयास शुरू किए तब लोहिया के उनके साथ के संबंध पूर्ववत नहीं रह पाए।

एक बार सभापति को सभापति के कर्तव्यों का स्मरण कराते हुए लोहिया ने कहा था कि 'जिस कुर्सी में आप विराजमान हैं वह बड़ी ठंडी है परंतु जिसमें मैं बैठा हूं वह बहुत ही गर्म है, मेरा काम इस गर्मी की शक्ति के जरिए देश में नई शक्ति भर देने का है और आपका काम दोनों में संतुलन बनाए रखते हुए अपने कर्तव्यों को निभाने का है। आप संविधान की सीमाओं का संकोच कभी न करें बल्कि उनके दायरों को बढ़ाने का प्रयास आपको करना चाहिए।'

रूढ़ संकेतों के अनुसार सत्ताधारी पक्ष के किसी सदस्य को संसद के दोनों सदनों का अध्यक्ष पद दिया जाता था, इसका संदर्भ देते हुए लोहिया ने एक बार कहा था कि 'अव्वल तो सभापति किसी भी पक्ष से नहीं होना चाहिए परंतु अगर होता है तो इतना दृढ़ और शक्तिशाली होना चाहिए कि अपने पक्ष के प्रधानमंत्री तक को अपनी आज्ञा, हिदायत और उपदेश दे सके।'

चौथी लोक सभा में चुनकर आने के बाद लोहिया ने सुझाव दिया था कि सभापति पद के लिए मतदान गुप्त मतदान पद्धति से किया जाए। जिससे प्रकट बहुमत वाले पक्ष के सदस्यों को भी यह खुली छूट रहेगी कि वे अपनी अंतर्रात्मा की आवाज के मुताबिक मतदान कर सकें।'

निजी क्षेत्र के उद्योग धंधों की वृद्धि करने की नीति हो अथवा उद्योग धंधों का राष्ट्रीयकरण किया जाए इस संदर्भ में बोलते हुए लोहिया ने एक बार कहा था कि 'समाजवाद मात्र संस्थात्मक परिवर्तन करने से स्थापित नहीं होता। फिलहाल हुआ कुछ यों है कि अपने यहां के निजी और राष्ट्रीयकृत उद्योग धंधों ने परस्पर के दुर्गुणों को ही अपनाया है, राष्ट्रीयकृत उद्योग भी जनता की लूटमार करने में जुटे हुए हैं और निजी उद्योग धंधों में राष्ट्रीयकृत उद्योगों की अव्यवस्था ने घूसखोरी की है। दोनों ही अपनी अपनी गति से समता विरोधी काम कर रहे हैं, इसलिए नेहरू और बिरला में कोई अंतर बचा नहीं है।'

समाजवादियों की पुरानी मांग—सभी बड़े बड़े उद्योग धंधों का राष्ट्रीयकरण तुरंत किया जाए—का पुनरुच्चार करते हुए लोहिया ने अपनी और एक बात उसके साथ जोड़ते हुए कहा था कि 'फिर भी मेरी मान्यता है कि सही मायनों में राष्ट्रीयकरण तभी संभव होगा जब उसका मूलभूत आधार समतायुक्त मनों, मालिकों और मजदूरों के बीच जनतंत्रात्मक रिश्तों, वेतन की सार्वत्रिक समानता, जनहितकारी दृष्टि और उद्योगों की चोखी व्यवस्था होगी !'

राष्ट्रीयकरण और आर्थिक विषमता के सिलसिले में चर्चा करते हुए लोहिया ने व्यक्ति द्वारा किए जाने वाले खर्च पर कानूनी सीमा डाले जाने की आवश्यकता का अभिनव सुझाव दिया था। इस को लेकर प्रस्ताव चर्चा के लिए रखवाने का प्रयास भी आपने किया था। पूंजीवादी, समाजवादी और कम्युनिस्ट अर्थव्यवस्था में भी शासक वर्ग, जनप्रतिनिधि, उद्योगपति, उद्योगों और कारखानों का अधिकारी वर्ग, व्यापारी, आदि का व्यक्तिगत खर्च उनकी अपनी बाकायदा आय से कई गुणा अधिक होता है और यह सार्वत्रिक अनुभव है इसलिए आर्थिक विषमता का स्रोत व्यक्ति की आय मात्र में नहीं बल्कि उसके द्वारा किए जाने वाले खर्च में भी है। इस यथार्थ की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए लोहिया ने कहा था कि 'व्यक्ति के मासिक खर्च की मर्यादा रु. 1500/- की रखने की बात पर विचार करने के लिए एक समिति बिठाई जाए। विलासी खर्चों पर पाबंदी लगाने के उपायों को ढूंढ़ा जाए।' इस चर्चा में संपत्ति की संकल्पना पर आपने एक नवीन विचार प्रस्तुत किया, मार्क्स ने संपत्ति नाम की संस्था को समाप्त करने का उपाय सुझाया था तो भारतीय

उपनिषदों ने संपत्ति के मोह को टालने का उपाय सुझाया था। अब हमारे लिए जरूरी हो गया है कि हम संपत्ति की संस्था और संपत्ति का उपभोग करनेवाली व्यवस्था दोनों पर रोक लगाने के उपायों को ढूंढ़ें।'

कांग्रेस सरकार की पंचवर्षीय योजना और इससे संबंधित प्रश्नों पर प्रायः चर्चा होती रहती थी। एक बार लोहिया ने अपने मूलगामी विचारों को संसद के मंच से देश के सम्मुख रखा था। तीसरी पंचवर्षीय योजना पर टिप्पणी करते हुए उन्होंने कहा था कि 'प्रस्तुत योजना देशहीन और दिशाहीन मूर्ख विद्वानों ने बनाई है और इस पर अमल करेगा भ्रष्ट योगी। अर्थहीन उपायों, निरर्थक शब्द जंजाल और निकासहीन चक्रव्यूहों के कारण प्रस्तुत योजना दिशाहीन हो गई है तो अमेरिका तथा रूस की उत्पादन-पद्धतियों के मोह के कारण यह देशहीन भी हो गई है। इस योजना में से तीस से चालीस अरब तक की राशि अपव्यय, ठाठबाट, ऐशोआराम और यूरोप की नकल उतारने के कामों पर खर्च होगी। सरकारी नियोजन का परिणाम देश की सारी जनता के जीवनमान को एक साथ उन्नत करने में न होकर कतिपय सहस्र जनों के जीवनमान को उन्नत करने में हुआ है। नेताओं, नगरश्रेष्ठियों और नौकरशाहों के जीवनमान में उन्नति हुई है परंतु सामान्य जनता का जीवनमान जहां पहले का था वहीं पर आज भी है। हर वर्ष तीन लाख लोग साहब और बड़े आदमी बन रहे हैं। अंग्रेजों की सरकार तीन लाख बड़े साहबों की थी तो वर्तमान सरकार पचास लाख बड़े साहबों की है। अन्य एक अवसर पर आधुनिकीकरण के संदर्भ में बोलते हुए आपने कहा था कि 'भारतीय अर्थव्यवस्था में उत्पादन-साधनों के आधुनिकीकरण के ऐवज में उपभोगों और खर्चों के साधनों का आधुनिकीकरण हुआ है। उत्पादन साधनों की हमारी मध्ययुगीन बुनियाद आज भी बनी हुई है। इसी मध्ययुगीन बुनियाद पर आज इमारत बनाते हुए हम अमेरिका की नकल उतार रहे हैं।' एक बार बातों बातों में ही लोहिया ने नियोजन की तीन कसौटियां बतायी थीं, 'अतीत की तुलना में हम कहां तक आगे बढ़ पाए हैं ? अपने पड़ोसी तथा अन्य समृद्ध देशों की तुलना में हमारी प्रगति कहां तक हुई है ? और, हमारे नियोजन के अपने उद्देश्य क्या हैं ?'

भ्रष्टाचार,जो हमारी चर्चा का शाश्वत-विषय बना हुआ है, पर बोलते हुए लोहिया ने कभी कहा था कि 'कुछ अर्थशास्त्रियों की यह मान्यता है कि विकासशील अर्थव्यवस्था में भ्रष्टाचार अंगीभूत रहता ही है, सरासर गलत है। जहां एराकाष्ठा की भुखमरी है वहां की अर्थव्यवस्था में भ्रष्टाचार की कोई गुंजाइश नहीं होनी चाहिए। आखिर, भ्रष्टाचार है किस चिड़िया का नाम ? ईमानदारी के अभाव[को भ्रष्टाचार का मात्र कारण नहीं कहा जा सकता ! जनताभिमुख दृष्टिकोण का अभाव]भी भ्रष्टाचार का एक कारण है ! महात्मा गांधीजी का युग सादगी का था और नेहरू युग उपभोगवाद और विलासिता का युग है!'

लोहिया के मत में भ्रष्टाचार का उद्गम सत्ता की गंगोत्री से है; आपने कहा था कि 'हमारे मंत्रियों के नाते-रिश्तेदारों, बेटों, दामादों, भाई-भतीजों की मिल्कियत आज लाखों पर से बढ़कर करोड़ों की तादात में हो गई है ! जहां भी कहीं, मंत्री परमिट, कोटा और

लाइसेंस दे सकता है वहां किसी भी धंधे में मंत्री की दो पीढ़ियों तक के रिश्तेदारों के प्रवेश तक पर मनाही लगाई जाए; सब से पहले हमें भ्रष्टाचार की गंगोत्री को ही शुद्ध और स्वच्छ करना है !'

जब कभी कोई विरोधक अकाल और भुखमरी के कारण हुई मृत्युओं की ओर ध्यान आकर्षित करता है तब खाद्यान्न मंत्री यह कहते हुए आसानी से कन्नी काट जाते हैं कि नहीं, ये तो, बुखार या हैजे के कारण हुई मौतें हैं ! ऐसे ही एक अवसर पर लोहिया ने सवाल किया था कि 'अच्छा ! तो फिर भूख से मरनेवालों के लिए आप क्या कहते हैं? जरा इसकी परिभाषा हमें भी समझाइए ! मैं तो यही कहता हूं, जिसे अपनी मौत से पहले छह महीनों तक रोजाना सौ ग्राम अनाज भी न मिला हो उसकी मौत का कारण भूख माना जाए ! खाद्यान्न मंत्री महोदय की क्या मान्यता है ? किसी को कम से कम कितनी कैलोरीज रोजाना न मिलने पर वह उसकी मौत का कारण भूख मानते हैं ?' लोहिया ने सांख्यिकी पेश करते हुए कहा कि 'अड़तालीस कोटि भारतीयों में से सैंतीस कोटि भारतीयों को रोजाना सिर्फ चार छटांक अनाज पर यानी मुश्किल से छह-सात सौ कैलोरीज पर अपना गुजारा करना पड़ता है !' इस पर मंत्री महोदय ने यह कहते हुए कानूनी छुट्टी पाई कि 'भुखमरी अलग है और अल्पपोषण अलग है !' मंत्री महोदय भुखमरी की परिभाषा करने से बच निकले।

सूखे और भुखमरी को सही आयाम में उठाते हुए लोहिया ने सरकार का आह्वान किया कि 'या तो अनाज के व्यापार से सारी पाबंदियों को हटाकर उसे खुला कर दीजिए या इसका पूरा पूरा सरकारीकरण कर दीजिए। चाहे जो करें, लेकिन सब से पहले जनता को पेट भर खिलाइए।'

लोहिया ने भारतीय जनता का भी आह्वान किया कि 'भूख से मरने से पहले मंत्रियों और अधिकारियों के घर पहुंचकर उनसे कहें कि हमें पहले खिलाएं बाद में वे खुद खाएं।'

लोहिया के मत में एशिया की भीषण दरिद्रता का प्रतीक साइकिल रिक्शावाला था। लाखों बदनसीब और उपेक्षित साइकिल रिक्शावालों की समस्या को लोहिया ने लोक सभा में सब से पहले उपस्थित किया था और इस पर आधे घंटे तक चर्चा करवाई थी। असीम शारीरिक मेहनत और निःसत्व और नाममात्र अन्न पाकर साइकिल रिक्शाचालक आधे मानव और आधे पशु का जीवन जीने के लिए विवश थे। डाक्टरों से प्राप्त जानकारी का उल्लेख करते हुए लोहिया ने कहा था कि, 'उन्नीस-बीस से कम और चालीस से ज्यादा उम्रवाला रिक्शा चालक दो-तीन सालों में या तो फेफड़ों को खोकर मरता है या इसी तरह की अन्य किसी असाध्य लाइलाज बीमारी का शिकार हो जाता है।' इस पर संबंधित मंत्री महोदय ने संक्षिप्त उत्तर में कहा कि 'सरकार को जानकारी है कि रिक्शा चलाने से चालक के शरीर पर कोई अवांछित परिणाम नहीं होता !' लोहिया तपाक से बोले, 'क्या एक महीनाभर रिक्शा चलाकर फिर से इसे कहेंगे ? आधुनिक कहे जाने वाले देशों में न्यायाधीश खुद जेल में रहकर अनुभव प्राप्त करते हैं।'

आखिर ये रिक्शा वाले होते कौन हैं ? और आते कहां से हैं ? लोहिया की जानकारी के अनुसार 'देहातों के उच्चवर्णियों की यंत्रणाओं से त्रस्त और दरिद्र, बेरोजगार जन रिक्शा चलाने शहर में आते हैं।'

साइकिल रिक्शा चालकों की समस्या के निमित्त लोहिया ने वास्तव में उन लाखों बेरोजगारों की समस्या को उभारा था जो अपना पेट पालने के लिए शहरों में चले आते हैं; इनकी व्यथा को वाणी देते हुए लोहिया ने कहा था कि, 'ये सारे लोग शहरों में चले आते हैं और शहरों में न इनका कोई रिश्तेदार होता है और न रहने का कोई ठिकाना। देर रात तक रिक्शा चलानी पड़ती है इन्हें। पुलिसवालों को अपनी चिंता लगी रहती है, दफा एक सौ नौ के तहत रिक्शा चालक को पकड़कर बिना जांच पड़ताल और पूछताछ के हिरासत में बंद कर देते हैं इन्हें ! यह तो कानून की सरासर अवहेलना है ! जब तक सरकार दफा एक सौ नौ को खारिज नहीं करेगी तब तक पुलिस वाले असहाय और लाचार रिक्शावालों को सताती रहेगी ! उन पर जुल्म ढाती रहेगी। इसी सिलसिले में आपने 1955-56 की एक घटना की याद दिलाई, नेहरू नागपुर में गए थे, किसी गरीब और मानसिक संतुलन ढले साइकिल रिक्शावाले ने उनको चाकू दिखाया था और इस अपराध में रिक्शावाले को छह महीने की कैद दिलाई गई थी।

जाति व्यवस्था से होने वाले अन्यायों, शोषणों और विषम व्यवहारों से लोहिया को सख्त नफरत थी और इन लोगों के प्रति उन्हें गहरा लगाव और आत्मीयता थी। जब भी आपको अवसर मिला आपने लोकसभा में इस संबंध में अपने विचारों को लगातार पेश किया है। एक बार आपने निवेदन किया था कि 'सब से अधिक गंदा काम करनेवाले भंगी की तनख्वाह इतनी बढ़ाई जानी चाहिए कि उच्च जाति के लोगों को भी भंगी का काम करने की इच्छा हो जाए। इससे जाति-पांति की दीवारें अपने आप ढह जाएंगी।'

अनुसूचित जातियों-जनजातियों के संबंध में नियुक्त प्रथम आयोग की रिपोर्ट पर जब चर्चा चल रही थी तब लोहिया ने उस समस्या को उठाया जिसकी आजकल बहुत चर्चा की जा रही है। संविधान के नियमों के अनुसार सरकारी नौकरियों में जो स्थान अस्पृश्यों और आदिवासियों के लिए आरक्षित रखे गए हैं, वे भरे नहीं जाते इसलिए कि सरकार और नौकरशाही की मानसिकता जितनी आरक्षण विरोधी है उतनी ही इस संबंध में बेफिक्री भी बरतते हैं। इसका उल्लेख करते हुए लोहिया ने कहा था कि हम या तो संविधान से आरक्षण के नियम को खारिज कर दें और ईमानदारी से कहें कि आदिवासियों और हरिजनों को हम कोई रियायत और सहूलियत देना नहीं चाहते, या नियम के साथ ईमानदारी बरतते हुए उनके लिए आरक्षित स्थान उन्हीं को दिए जाएं। अस्पृश्यों और आदिवासियों के लिए किए गए नियमों का स्थान लगता है कि सिर्फ पुस्तकों में है, इनके पीछे जनशक्ति नहीं है। कानून लाख अच्छे हों परंतु अगर उन पर अमल करने-करवाने की शक्ति और क्षमता जनता में नहीं होगी तो सारे नियम धरे-के धरे रह जाते हैं, निरर्थक और बेमाने हो जाते हैं। जब जब कानून और जनशक्ति कंधे से कंधा मिलाकर चलते हैं तब तब परिवर्तन

और क्रांति संभव होती है।' लगे हाथों लोहिया ने अपनी एक व्यथा भी प्रकट की 'अस्पृश्यों और आदिवासियों के नेताओं को चाहिए था कि वे अपनी घनघोर गर्जना से आकाश-पाताल कंपा देते परंतु पाता हूं कि हुआ कुछ उलटा ही है।'

लोहिया बहुत चाहते थे कि भारत सरकार स्तालिन की बेटी स्वेतलाना को भारत में हमेशा रहने के लिए अनुमति दे। आपने लोकसभा में इस सवाल को उठाया, इस अवसर पर दिया गया आपका वक्तव्य एकदम अनोखा था। पक्षभेद और राष्ट्रभेद से ऊपर उठकर विशुद्ध मानवता के प्रति लोहिया की गाढ़ी श्रद्धा आप के भाषण के शब्द शब्द से टपकती थी।

दिसंबर 1966 में स्वेतलाना भारत में पधारीं थीं, कांग्रेस के वरिष्ठ नेता दिनेश सिंह के चाचा ब्रजेश सिंह स्वेतलाना के पति थे और पति-निधन के बाद उनकी रक्षा गंगा में प्रवाहित करने के लिए आप भारत में आई थीं। भारत को वे बहुत चाहती थीं और यह भी चाहती थीं कि अपना उर्वरित काल अपने पति के पैतृक ग्राम उत्तर प्रदेश के कालाकांकर में बिताएं। विदेश मंत्री छागला, दिनेश सिंह और प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी के पास स्वेतलाना ने अपनी इच्छा व्यक्त की थी। परंतु सोवियत रूस की नाराजगी से घबराकर भारत सरकार स्वेतलाना को भारत में रहने की इजाजत नहीं दे रही थी क्योंकि स्तालिन के नामो-निशान तक को मिटाने पर तुली रूसी सरकार शायद इससे नाराज हो जाती। दिनेश सिंह ने व्यक्तिगत स्तर पर स्वेतलाना को समझाया कि अगर रूसी सरकार विचार विनिमय के उपरांत राजी हो जाए तो आपको यहां रहने की अनुमति दी जा सकती है। [प्रकारांतर से दिनेश सिंह का सुझाव सरकारी नीति का संकेत देता है।] इंदिरा गांधी पूरे मामले पर चुप रही थीं।

स्वेतलाना ने लोहिया से भी भेंट की; लोहिया अपनी शिक्षा के कारण जब जर्मनी में थे तब ब्रजेश सिंह के साथ आपकी दोस्ती हुई थी। लोहिया चौथे आम चुनावों को लेकर व्यस्त थे। बावजूद इसके लोहिया ने संसद सदन में स्वेतलाना का मामला दृढ़ता के साथ चलाया था। इस बीच इधर-उधर से स्वेतलाना तक ये सलाहें और मशविरे भी पहुंचाए गए कि वे इस या उस कारण से भारत में न रहें और इनकी बला सिर से उतर जाए। आखिरं इन सब से झुंझलाकर, परेशान स्वेतलाना भारत छोड़कर चली गईं। चलने से पहले जब वे लोहिया से मिलीं तब उन्होंने कहा कि 'स्वाधीनता की एक लड़ाई तो आपने जीत ली है लेकिन लगता है कि अभी और एक लड़ाई आपको लड़नी पड़ेगी तभी अमेरिका और रूस से आप मुक्त हो पाएंगे।'

कुल मिलाकर इस सारे मामले पर लोहिया बहुत झुंझला गए थे। वे इसलिए दुखी थे कि भारत ने अपनी बहू को ठुकरा दिया था। इस प्रश्न को सदन में उपस्थित करते हुए लोहिया ने कहा था कि 'स्वेतलाना की जन्मदात्री माता ने जब उसको नकारा तब उसने भावना-माता-पृथ्वीमाता के अंश भारत को गुहारा था लेकिन भावना-माता ने भी उसे नकारा। इस प्रकार स्वेतलाना की समस्या सीधी-सादी और सरल थी लेकिन बहुत ही क्लेशकारक रही है। स्वेतलाना की एक माता रूस अवश्य है। परंतु हर मनुष्य की दूसरी

एक माता सदैव रही है ओर वर्तमान परिस्थितियों में मनुष्य मात्र को इसी माता की आवश्यकता रहेगी—यह है पृथ्वी-माता ! अब तक संसार में नागरिकता की सीमा शारीरिक थी, परंतु आज नागरिकता का भावनात्मक और मानसिक आयाम भी उद्घाटित हुआ है। इसलिए लोहिया का प्रतिपादन था कि 'स्वेतलाना के मामले का किसी भी हालत में न अमेरिका के साथ कोई संबंध है और न रूस से।' लोहिया के मत में रूस के साथ संबंधों में बिगाड़ आने का कोई कारण नहीं था, उनकी मान्यता थी कि 'स्टालिन की बेटी का अपना देश छोड़कर चला जाना रूस की दृष्टि से कोई बहुत बड़ा जख्म नहीं है और अब जख्म तो हो ही गया है, इसलिए अगर स्वेतलाना भारत में रहतीं तो रूस ने अपना मामला निभा लिया होता। लेकिन अब कुछ न करने से जख्म सड़ जाएगा क्योंकि अभी वह हरा है। अमेरिका और यूरोप में पत्रकारिता की स्वाधीनता अपनी चरम सीमा पर है, वहां के समाचारपत्र जख्म को कुरेद कुरेद कर फिर से बहाएंगे और इससे रूस का जख्म अधिक गहराता जाएगा। स्वेतलाना अगर भारत में रह भी जातीं तो रूस के अनुकूल ही बात बन जाती।'

अपने भाषण के प्रवाह में लोहिया ने स्वेतलाना को चंपा कहा और इंदिरा गांधी का नाम कहे बिना आपने कहा कि 'जब एक चमेली गद्दी पर है एक चंपा को भारत में आश्रय न मिल सका।' स्वेतलाना के प्रति लोहिया की आत्मीयता बहुत ही प्रांजल थी, एक बार आपने कहा कि 'अगर भारत सरकार स्वेतलाना को यहां सम्मानूर्वक आमंत्रित करेगी तो मैं भी भूली-बिसरी बातों को छोड़ने के लिए तैयार हूं और उन सारी बातों पर एक बारगी पर्दा डालकर समाप्त कर दूंगा !'

लोहिया ने स्वेतलाना-प्रश्न को उदारता और मानवता की इस पराकाष्ठा पर उठाया कि कांग्रेस के सदस्य तक प्रभावित हो गए। कांग्रेसी सदस्य लक्ष्मीकांतम्मा ने कहा कि 'इस समस्या का मानवीय आयाम राजनैतिक आयाम की अपेक्षा कई गुना अधिक महत्वपूर्ण है; जब भारत के आश्रमों और तीर्थक्षेत्रों में कई विदेशी महिलाएं रह सकती हैं तब स्वेतलाना को भी भारत में रहने की दिक्कत क्यों होनी चाहिए ?'

1966 के मध्य में दिल्ली के पुलिसवालों, फौजदारों, दरोगाओं ने हड़ताल कर दी। पुलिसवालों को अपना संगठन करने की अनुमति नहीं है, बावजूद इस नियम के पुलिसवालों ने अपना यूनियन बनाया। अपनी सर्वश्रुत मांगों—अठारह घंटों की ड्यूटी के बावजूद, अन्य सरकारी नौकरों की तुलना में अत्यल्प वेतन, रहने के लिए गंदी बस्तियां, अन्य सुविधाओं का अभाव, आदि के लिए पुलिसवाले संगठित होकर अब खुले आम सड़कों पर उतर आए थे। जोरदार सभाओं, प्रदर्शनों के जरिए आंदोलन जोर पकड़ता जा रहा था और पूरी शांति और संयम के साथ चलाया जा रहा आंदोलन प्रभावशाली हो रहा था। पुलिसवालों की हड़ताल, संगठन को हर सरकार अपने आपको चुनौती मानती है, अपनी सत्ता को दी जा रही इस चुनौती को झेल पाना मुश्किल था। प्रजा समाजवादी पक्ष और जनसंघ के अलावा शेष सभी विरोधी पक्षों ने पुलिस-आंदोलन के लिए अपना समर्थन घोषित किया था। प्रदर्शनों

पर लाठीमार, अश्रुगैस, गिरफ्तारियां, आदि हर संभव प्रयास से यहां तक की नौकरी से बरखास्तगी तक से सरकार हड़ताल को समाप्त करने पर तुली हुई थी। इसके लिए सीमा सुरक्षा बल तैनात किया गया था। सभी विरोधी पक्षों ने हड़ताल को अपना समर्थन देने के इरादे से एक दिन के बंद का आह्वान किया था। परिस्थिति बहुत ही खस्ता और विस्फोटक बनती जा रही थी। पुलिसवालों की हड़ताल पर सदन में हुई चर्चा में शरीक होते हुए लोहिया ने कहा था कि 'संसार भर के सुसंस्कृत राष्ट्रों में से लगभग सभी राष्ट्रों में पुलिसवालों को संगठन करने का पूरा अधिकार है। अगर पुलिसवाले अपना यूनियन बनाते हैं तो इससे राज्य का प्रशासन अधिक अच्छा ही होगा। इस हालत में शांति और क्षुब्धावस्था के आयाम और अर्थ बदल जाएंगे। अनुशासन पालन के महत्व से इनकार कोई नहीं करता और फौज तथा पुलिस के महकमे में तो अनुशासन ही सब कुछ होता हैं, परंतु जब शासन ही अन्याय करने लगता है और इससे पुलिस विभाग और शासन के आपसी संबंध बिगड़कर टूटने भी लगते हैं तब अनुशासन-भंग अनिवार्य हो जाता है।

सीमा सुरक्षा बल, अलग अलग अर्धसैनिक बल, और फौज का बार बार उपयोग जन-आंदोलनों को दबाने के लिए करने की बढ़ती प्रवृत्ति को देखते हुए लोहिया ने इशारा किया कि 'जिस देश में अंतर्गत संघर्षों से निपटने के लिए अगर सेना का बार बार उपयोग कर लिया जाता है तो वह विदेशों के आक्रमणों का सामना करने में असमर्थ और कमजोर बन जाता है।'

पुलिस दल की पुनर्रचना की आवश्यकता और अनुशासन के लिए नवीन, कालानुरूप नियमों-अधिनियमों के निर्धारण की आवश्यकता पर बल देते हुए लोहिया ने कहा था कि 'अगर मेरा पक्ष सत्ता की बागडोर संभालेगा तो हमारे मंत्री जान का ख़तरा उठाकर भी पुलिस दल का पुनर्गठन करेंगे। जिन प्रदेशों में विरोधी पक्ष की सरकारें हैं उनसे मैंने निवेदन किया है कि मंत्रियों को दी जानेवाली सलामियां जो अपनी औपचारिकता को निभाने में आज नकली बन गई हैं, तुरंत बंद कर दिया जाए। मंत्रियों के बंगलों पर तैनात सशस्त्र संतरियों को तुरंत हटा लिया जाए।'

पुलिस हड़ताल के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करने हेतु आयोजित नागरिक-सभाओं में हड़ताली पुलिसवाले भारी संख्या में उपस्थित रहा करते थे। अपने भाषण में लोहिया नागरिकों और पुलिसवालों से संयुक्त रूप में और प्रकट तौर पर शपथ ग्रहण करवाते थे। 'हम साधारण नागरिक और पुलिसजन शपथ लेते हैं कि, हम परस्पर को कष्ट नहीं पहुंचाएंगे। न रिश्वत लेंगे और न देंगे। नैतिक अपराधियों और अन्य गुनाहगारों को पकड़ेंगे और पकड़वाने में सहायता करेंगे। अच्छा, नेक और सीधा-सा जीवन बिताने के लिए परस्पर की सहायता करेंगें।'

लोहिया ने कई बार भरी सभाओं में पुलिसवालों का प्रकट और निर्भय आह्वान किया था कि 'वे सरकार को दो टूक बता दें कि उचित आदेशों का ही पालन किया जाएगा, अनुचित हुक्मों की तामील नहीं होगी। निष्ठा और गुलामी में बहुत अंतर है।'

पुलिस आंदोलन का समर्थन करने के इरादे से विरोधी पक्षों की ओर से नियोजित 'दिल्ली बंद' का आह्वान वापस लिया गया था। पुलिस हड़ताल को निरस्त करने में सरकार सफल हुई थी परंतु सरकार इस बात को लगातार बताती जा रही थी कि लोहिया और विरोधी पक्षों ने पुलिस आंदोलन को उकसाया और उत्तेजित करते रहे। गृहमंत्री यशवंतराव चव्हाण ने किसी समाचारपत्र में छपी खबर को सदन में पढ़कर सुनाया, जिसमें यह सूचित किया गया था कि त्रिवेंद्रम की जाहिर सभा में लोहिया ने कहा था कि 'दिल्ली के पुलिसवालों की हड़ताल क्रांति थी, विरोधी पक्ष अगर इससे दूर न रहते तो आज दिल्ली पर मेरा अधिकार होता या पचास हजार से अधिक लोग मौत के घाट उतर जाते।'

स्वाभाविक था लोहिया ने इससे इनकार कर दिया, अपनी बात को साफ करते हुए उन्होंने कहा कि, "मेरी यह आदत नहीं कि मैं 'दिल्ली मेरे अधिकार में होती' जैसे कथन करूं परंतु यह मेरी इच्छा जरूर है कि दिल्ली पर पचास कोटि जनता का शासन हो ! आज दिल्ली पर अधिक से अधिक बीस लाख लोगों का शासन है।"

लोहिया का लोक सभा में आखिरी संस्मरणीय भाषण जून 1967 में हुआ था। प्रजा समाजवादी पक्ष के नाथ पै ने एक निजी प्रस्ताव संसद में पेश किया था जिसके तहत संसद को यह अधिकार दिए जाने की व्यवस्था थी कि भारतीय संविधान ने भारतीय नागरिकों को जो मूलभूत अधिकार दिए थे, उन्हें नियंत्रित किया जाए। इंदिरा गांधी के नेतृत्व वाले सरकारी पक्ष का इस प्रस्ताव के लिए समर्थन था। किसी विरोधी पक्ष की ओर से प्रस्तुत और अत्यंत मूलभूत महत्व के प्रस्ताव को सरकारी पार्टी द्वारा स्वीकृत किया जाना अचरज की बात थी। प्रस्ताव का लोहिया, कृपलानी, पीलू मोदी और अटलबिहारी वाजपेयी ने डटकर पी विरोध किया। कृपलानी ने कहा कि 'मौलिक अधिकारों का प्रश्न संसद के बहुमत की मर्जी के हवाले नहीं किया जा सकता, ऐसा करना सरासर गलत होगा। संभव है कि बहुमत गलत भी हो।'

इस प्रश्न का स्वरूप मात्र इसी तक सीमित नहीं है कि संसद सर्वश्रेष्ठ है अथवा उच्चतम न्यायालय, इसे स्पष्ट करते हुए लोहिया ने कहा था कि 'यह सवाल इन दोनों के आपसी संबंधों को निर्धारित करने का नहीं है परंतु इसका संबंध अपनी राज्य और शासन प्रणाली के स्वरूप और रंग-रूप से है। अगर प्रस्तुत प्रस्ताव मंजूर होकर इसका कानून बनेगा तो इससे नागरिक स्वाधीनता पर रोक लगाना भी संभव होगा और राज्यों और केंद्र के आपसी संबंधों पर भी इसे लागू कराया जा सकेगा।

जिस तरह खतरे का इशारा लाल बत्ती से दिया जाता है उसी तरह की खतरे की चेतावनी लोहिया ने प्रस्तुत प्रस्ताव पर की गई बहस के दरम्यान दी थी "अगर इस प्रस्ताव को मंजूर कर इसे कानून में ढाला जाएगा तो इससे देश की वह दुर्गति होगी कि कोई न पूछे ! मैं बड़े दुखी दिल से कह रहा हूं, शायद मुझे भविष्य दिखाई देता हो परंतु मैं यकीन दिलाता हूं कि इस कानून के बहाने हम सरकार के हाथों में वह शस्त्र देने जा रहे हैं कि जिसका मनमाना उपयोग किया जा सकता है।"

इस कानून के जरिए देश के रंग रूप को परिवर्तित कर दिया जा सकता है। संसार में इस तरीके के उदाहरण इतिहास में हैं। इसी तरह के कानून के जरिए हिटलर की तानाशाही का उदय हुआ था। नाथ पै का कथन है कि उस समय सरकारी चाल का दृढ़ता से विरोध किया जाएगा; मैं भी तो इसका विरोध करूंगा। परंतु कम्युनिस्टों और समाजवादियों की जो दुर्गति जर्मनी में हुई वह हमारे यहां भी हो सकती है। नाथ पै की जिज्ञासा है कि "क्या ऐसे संकट के समय उच्चतम न्यायालय हमारी सहायता नहीं करेगा ? उस समय की छोड़िए, तब तक तो मुझ जैसों का खात्मा हो चुका होगा परंतु नाथ पै भी जेल में बंद रहेंगे। यह कहना निरा असंभव है कि उस समय क्या होगा और क्या नहीं होगा ? शायद किसी फौजी के हाथों में सत्ता होगी, और यह भी संभव है कि न राष्ट्रपति होंगे और न प्रधानमंत्री !"

लोहिया ने नाथ पै से निवेदन किया कि 'वे इस प्रस्ताव को वापस लें, और इसका स्पर्श तक न करें। यह काम कानून मंत्री को सौंप दिया जाए, विधि मंत्रालय इस पर विचार करे।'

परंतु प्रस्ताव पारित होकर कानून बन गया और दुर्भाग्य से 1975 के आपातकाल की घोषणा के बाद लोहिया की भविष्यवाणी सत्य सिद्ध हुई।

लोहिया, महिलाओं की समस्याओं को अलग प्रश्न के रूप में संसद में उठाने वाले पहले और एकमात्र पुरुष नेता थे। जब जब गुंजाइश रही तब तब लोहिया ने महिलाओं की अनेक दुखद समस्याओं को संसद में उठाते हुए समूचे देश का ध्यान उनकी ओर आकर्षित किया और इसके बहाने स्त्री-पुरुष समानता का साग्रह प्रतिपादन भी किया। स्त्रियों पर किए जाने वाले अत्याचार, स्त्रियों का कुपोषण, पानी के लिए होने वाले कष्ट, पाखाने तक की असुविधा, धुएं के चूल्हों के कारण होने वाली आंखों की खराबी, आदि कई उपेक्षित प्रश्नों की चर्चा लोहिया ने कराई थी।

स्त्री और पुरुष में भेद करने वाली अदनी सी बात के प्रति भी लोहिया बड़े सचेत रहते थे। अपने एक भाषण में आपने फातिमा जिना का जिक्र 'श्री फातिमा जिना' कहकर किया था। सदन से कोई चिल्लाया 'श्रीमती' कहिए लोहिया ने कहा, मैं कहता हूं कि हम दोनों के लिए श्री कहेंगे, लगता है कि आप संसार पर पुरुषों के शासन को बनाए रखने के पक्ष में हैं शायद ! सदस्या, अध्यक्ष महोदया जैसे संबोधनों पर भी लोहिया को आपत्ति थी।

एक अवसर पर लोहिया ने गरीब और अमीर स्त्री के संबंध में बोलते समय किए जाने वाले भेदभाव का संकेत दिया था—एक बार बोलते हुए आपने कहा था कि, 'दो औरतें, एक दिल्ली वाली और एक लखनऊ वाली...' तुरंत, सदन से आवाज आई 'श्रीमती या महिला कहिए ! आप बाजारू बोली बोल रहें हैं !' लोहिया ने पलटकर चिल्लाने वालों से सवाल किया कि, 'क्या मां, बहन, बेटी, औरतें नहीं हैं ? महल में रहने वाली औरत को ही पसंद करते हो न ?'

एक बार कांग्रेस सदस्य रेणुका रे ने खीझ कर पूछा, 'लोहिया होते कौन हैं स्त्रियों के बारे में बोलने वाले ? भारतीय महिलाएं प्रधानमंत्री के साथ हैं !'

लोहिया ने एक अवसर पर भारत के क्षेत्रफल के संबंध में हुई आंकड़ों की धांधली के उपेक्षित प्रश्न की ओर ध्यान आकर्षित किया था। 'संयुक्त राष्ट्र संघ की ओर से प्रकाशित भारत के क्षेत्रफल के और भारत सरकार की ओर से प्रकाशित आंकड़े में बहुत बड़ा अंतर है। संयुक्त राष्ट्र संघ के आंकड़े के मुताबिक और भारतीय आंकड़े के मुताबिक क्रमशः 1 लाख 20 हजार 222 वर्गमील और 8 हजार 43 वर्ग मील क्षेत्र गायब था। हर भारतीय को गुस्सा दिलाने और थर्रा देने वाली बात है यह जब कोई व्यापारी घाटे में रहने लगता है तब वह अपने रोजनामचे में धांधलियां करने लग जाता है, कहीं भारत सरकार का भी दिवाला पिटने लगा है ? लोंगजू घाटी और जम्मू-कश्मीर की भारतीय भूमि को सदा के लिए छोड़ देने की तैयारी तो नहीं की जा रही ?' लोहिया ने अपनी आशंका व्यक्त की थी।

इतिहास की शास्त्रीय चर्चा पहले कभी संसद में नहीं हुई थी, यूनेस्को की ओर से एक ग्रंथ प्रकाशित किया गया था—'मानव जाति का इतिहास' इस ग्रंथ में भारत पर अन्याय करने वाली कई टिप्पणियां थीं, इन त्रुटियों की ओर सदन का ध्यान आकर्षित करते हुए लोहिया ने लोकसभा में पहली बार इतिहास की शास्त्रीय दृष्टि से चर्चा की थी। उक्त ग्रंथ में मिस्र और चीन के प्राचीन काव्य का उल्लेख है परंतु ईसा पूर्व इक्कतीस सौ से छह हजार साल पहले वाले भारतीय ऋग्वेदादि काव्य ग्रंथों के संबंध में एक पंक्ति भी नहीं है, इस पर जोरदार आपत्ति करते हुए लोहिया ने कहा था कि 'इतिहास का अभिप्राय अतीत के ज्ञान, वर्तमान के सुख-दुखों के भान और भविष्यकाल के निर्माण की दिशाओं के आदर्श से होता है। इतिहास को समझने और लिखने में अगर गड़बड़ी हो जाती है तो न केवल वर्तमान बल्कि भविष्यकाल भी सदोष हो जाता है।' इसी विषय पर लगे हाथों आपने भारत में इतिहास लेखन की विद्यमान प्रवृत्तियों पर तीखी-टिप्पणी की, शायद भारतीय इतिहास शास्त्र रोगग्रस्त है, फरिश्ता से विन्सेंट स्मिथ तक के विदेशी इतिहास लेखकों द्वारा बनाई गई लीक पर चलने वाले भारतीय इतिहास के लेखक पराभूत मानसिकता वाले हैं !' सभी भारतीय इतिहास लेखक परगाछी हैं, जो विदेशियों की लीक पर चलते हैं।'

चौथी लोकसभा के 1967 में हुए वर्षाकालीन अधिवेशन में एक सांस्कृतिक विषय को उठाकर लोहिया ने सदन को चकित किया था, लोहिया ने साहित्य अकादमी और संगीत-नाटक अकादमी के नाम से कही जानेवाली और स्वायत्त संस्थाओं की कार्य-प्रणाली पर टिप्पणी करते हुए कहा कि 'विदेशों में इस तरह की [अकादमियों में अपने अपने क्षेत्र के विशेषज्ञ रहते हैं परंतु अपने यहां साहित्य] अकादमी में त्रिगुण सेन, छागला, केसकर, शहा, इंदिरा गांधी, आदि मंत्री हैं, यही बात संगीत-नाटक अकादमी के बारे में भी है, यहां के0पी0एस0 मेनन, नारायण मेनन, ए0के0चंपा, बलराज साहनी, आदि हैं। हर काम का सरकारीकरण और नौकरशाही के आधिपत्य के कारण हमारे जीवन के साहित्य और

संगीत-नाटक जैसे महत्वपूर्ण सांस्कृतिक अंगों को आज ढूंढ़कर भी हम नहीं पा रहे हैं।' इन संस्थाओं को सरकार अनुदान देती है अवश्य, परंतु हैं ये सारी संस्थाएं स्वायत्त ही। इस तरह की टिप्पणी करने वालों को जवाब देते हुए लोहिया ने कहा था कि 'क्या सरकारी जंतु कभी स्वायत्त हो सकते हैं ? साहित्य अकादमी के अध्यक्ष राधाकृष्णन हैं, संगीत-नाटक अकादमी की अध्यक्षा इंदिरा गांधी हैं और तीनों अकादमियों के अध्यक्षों की नियुक्तियां करते हैं राष्ट्रपति। ये संस्थाएं क्या खाक स्वायत्त होंगी ?'

लोहिया का विश्व-राजनीति और विदेशी संबंधों का बहुत गहरा अध्ययन था, और इनके संबंध में लोहिया के विचार एकदम अलग और विशिष्ट थे। लोहिया लगातार इस कोशिश में रहे कि भारतीय विदेश नीति की अपनी और निश्चित दिशा तथा गति हो। भारत-चीन युद्ध, भारत-पाक युद्ध, तिब्बत की समस्या तथा अन्य अंतर्राष्ट्रीय प्रश्नों और घटनाओं के संदर्भ में लोहिया ने कई बार भारतीय विदेश नीति का जोरदार विरोध किया था, इन विषयों पर बोलते हुए समय समय पर आपने बहुत मार्मिक विचार व्यक्त किए थे, 'गंगा गए गंगादास और जमना गए जमनादास, वाशिंगटन पहुंचते ही अमेरिका के मित्र और मास्को पहुंचने पर रूस के मित्र ! विगत बारह वर्षों से भारत की राजनीति में विश्व शांति को लेकर खोखलापन, झूठी पैगंबरी, धूर्तता, काइयांपन और चालाकी के ही दर्शन होते आए हैं। अपनी विदेश नीति बिना बेटे की विधवा और वंशहीन विधुर की भांति है, हमारे पड़ोसी देश अपने मित्र नहीं हैं, विपरीत इसके एक पड़ोसी ने हमारी अठारह हजार वर्गमील ज़मीन हड़प कर ली है !'

जब भी कभी पाकिस्तान के कच्छ पर आक्रमण और भारत-पाक युद्ध का जिक्र होता था तब पाकिस्तान के साथ अपेक्षित भारतीय राजनैतिक संबंधों की चर्चा करते हुए लोहिया कहते थे कि 'हमें पाकिस्तानी सरकार और पाकिस्तानी जनता के बीच अंतर को कभी नजरअंदाज नहीं करना चाहिए। भारतीय जनता और पाकिस्तान की जनता परस्पर भाई थे और आज भी हैं और भले आज एक दूसरें की जाने लेने पर आमादा हो गए हों, आगे भी भाई ही रहेंगे। इसलिए यद्यपि हाथ से कठोर होते हुए भी भारत का पाकिस्तान की ओर मुद्राभाव अभयदाता का ही होना चाहिए। भारत-पाक प्रश्नों के हल ढूंढ़ने में हमें वज्र की तरह कठोर परंतु हिंदू-मुस्लिम संबंधों में हमें फल की तरह कोमल ही होना चाहिए। पाकिस्तान में साधारण मित्रों जैसे संबंध नहीं हो सकते, इनके रिश्ते की सही पहचान हमें चाहिए, या तो दोनों देशों में वैर-भाव रहेगा या दोनों एकत्रित रहेंगे।' इसी संदर्भ में लोहिया ने अपनी भारत-पाक महासंघ की संकल्पना का पुनरुच्चार भी किया था।

पाकिस्तान के आक्रमण को हटाने के संबंध में लोहिया ने कहा था कि 'न मैं युद्धखोर हूं और न मुझे शस्त्रास्त्र पसंद हैं फिर भी मेरी दृढ़ धारणा है कि हमें अपनी धरती वापस कर लेनी ही चाहिए और बावजूद अनंत संकटों के सफलता प्राप्ति तक संघर्ष जारी रखना चाहिए। इस प्रयत्न में भले पूरा राज्य खो देने की नौबत आ जाए, जब तक पूरी जमीन हासिल नहीं कर लेते हैं तब तक लड़ना चाहिए।' आपने युद्ध विराम घोषित करने वाली

शास्त्री-सरकार को 'बरसाती केंचुए की सरकार और मुर्गी का कलेजा सरकार कहकर' भर्त्सना तक की।

युद्ध विराम के लिए भारत पर दबाव डालने वाले अमेरिका-इंग्लैंड से आपने दो टूक सवाल किया था कि 'इनका कुछ बिगड़ता नहीं इससे। भारत को बलि का बकरा देने में इनका कोई नुकसान नहीं ! अगर किसी ने अमेरिका की बीस हजार वर्गमील जमीन हड़प ली होती तो वह क्या करता ? गौरेतर और दुर्बल राष्ट्रों की इसे जरा भी चिंता नहीं है।'

एक बार संसद के आहाते से लोहिया अपनी टैक्सी में निकल ही रहे थे कि इंदिरा गांधी भी अपनी मोटर में निकलने को थीं। सुरक्षा पुलिस ने लोहिया के ड्राईवर को गाड़ी रोकने के लिए कहा। लोहिया ने गुस्सा होकर ड्राइवर को चलने के लिए कहा, लेकिन बेचारा डर के मारे रुक गया और इंदिरा गांधी की मोटर फर्राटे से निकल गई। लोहिया संतप्त होकर बोले, 'आज इनको दिखाता हूं ! हम लोग चुप रहते हैं इसलिए ये लोग मनमानी करते जाते हैं।' उसी दिन दोपहर लोहिया ने लोकसभा में यह सवाल उठाते हुए कहा, 'यह सवाल तीन कारणों से महत्व का है, सड़क के यातायात के नियम सब के लिए समान हैं, इसलिए संसद सदस्य और मंत्री में भेद करना गलत होगा, संसद सदस्य भी सरकार के प्रतीक हैं और अपने अपने स्थान पर वे मंत्री से भी श्रेष्ठ हैं।'

बहुत से सदस्यों ने इस अपमानकारक व्यवहार का अनुभव पहले किया था, वे बोले, 'अच्छा किया आपने। यह सवाल उठाना ही चाहिए था।' अन्य एक सदस्य ने आह्वान किया कि प्रधानमंत्री को इस बुरी प्रथा का त्याग करना चाहिए, इस मामले में हम सब एकसमान हैं !' बहुत जमकर चर्चा हुई, इंदिरा गांधी सदन में उपस्थित थीं, वे बोलीं, 'प्रधानमंत्री के स्थान-विशेष पर गौर करते हुए इनके आने-जाने के मार्ग पर विशेष व्यवस्था रखी जानी चाहिए।' चर्चा के अंत में उपसभापति ने फैसला सुनाया, 'यह सही है कि भारत में सारे रास्ते सब के लिए समान रूप से खुले हैं और सभी सांसदों का दर्जा एक समान है फिर भी प्रधानमंत्री को विशेष महत्व दिया जाना चाहिए !'

स्वाभाविक था कि लोहिया गुस्सा हो जाते, सो आपने कहा कि, 'प्रधानमंत्री के विशेष स्थान और महत्व के इनके तत्व को लोकसभा को ठुकरा और जला देना चाहिए और इसे कहनेवालों को भी ठुकरा दिया जाना चाहिए। यह लोकसभा है और यहां सब समान हैं!'

ताशकंद में प्रधानमंत्री लालबहादुर शास्त्री की आकस्मिक मौत हुई। लोहिया ने लोकसभा में यह मुद्दा उठाया कि शास्त्री की मौत की जांच न्यायालय अथवा संसदीय समिति की ओर से कराई जाए परंतु सभापति ने इस पर चर्चा करने से मना कर दिया। लोहिया के पास प्रमाण थे कि बेफिक्री और उचित वैधकीय सहायता के अभाव में शास्त्री को अपने प्राण गंवाने पड़े थे। लोहिया ने व्यथित हृदय से कहा, 'अपने देश में दरिद्र और लावारिस व्यक्ति किसी पशु की भांति मरता है, सड़क पर मरता है, परंतु हमारे प्रधानमंत्री की मौत भी इसी तरह हो इससे बढ़कर दुख क्या हो सकता है ?

देश में हिंसाचार जोरों पर था, न केवल जनता द्वारा बल्कि सरकार द्वारा किए जाने वाले हिंसाचारों से लोहिया व्यथित थे। बेरोक-टोक गोली चलाकर सरकार जनता का कत्ल किए जा रही थी तो घरों, बसों को जलाकर पथराव कर, प्रत्यक्ष कत्लकर, जनता प्रतिहिंसा पर उतारू थी। लोहिया ने व्यथित भाव से यह सवाल किया था कि 'क्या यह सरकार अन्य अनेक राजनैतिक अस्त्रों में कत्ल को भी एक अस्त्र बना चुकी है ? जनता द्वारा कम से कम इस पर तो गौर किया जाए कि किसी सामान्य निरपराध नागरिक और सरकारी नौकर को कत्ल कर देना कहां तक जायज है ? क्या बसों और ट्रामों को जलाने में भी कोई औचित्य है ? जनता और सरकार का मैं आह्वान करता हूं कि दोनों इस पर गौर करें। राजनैतिक पक्षों को चाहिए कि वे अपने कार्यकर्ताओं को आदेश दें कि वे जनता को ऐसे दुष्कृत्यों से परावृत्त करें।' अगर सरकार और जनता की ओर से इसी तरह हिंसाचार जारी रहेगा तो, लोहिया ने भविष्यवाणी में कहा, 'सरकारी कातिल का हाथ जनता पर उठ रहा है इसलिए कल जनता में से कोई कातिल बनेगा और प्रधानमंत्री की गर्दन तक उसका हाथ पहुंच जाएगा। मैं चाहता हूं कि हम इस हाथ को रोकें !'

वर्तमान शब्दावली में जिसे दारिद्य रेखा कहा है उससे नीचे जीवन बिताने वाली जनता की सांख्यिकी प्रस्तुत करते हुए लोहिया ने बहुत ही नाटकीय और विस्फोटक ढंग से मामले को पेश किया था। जब प्रधानमंत्री नेहरू, योजना मंत्री नंदा और कांग्रेसी अन्य नेता बहुत बेचैन हुए थे तो सदन के शेष सदस्य आश्चर्यचकित हुए थे। लोहिया ने कहा कि 'देश की 60 प्रतिशत अर्थात 27 कोटि जनता अपना रोजाना गुजारा सिर्फ 19 पैसों पर कर रही है और प्रधानमंत्री पर रोजाना होने वाला सरकारी खर्च 25 हजार रुपयों का है और इनकी नकल उतारने वाले बिरला का रोजाना खर्च तीन हजार रुपयों का है।'

लोहिया का प्रतिवाद करते हुए नेहरू ने कहा, 'मेरी जानकारी के मुताबिक प्रति व्यक्ति की रोजाना आय 15 आनों की है, एक अर्थशास्त्री की टिप्पणी है मेरे पास इसके प्रमाण में !'

'आखिर है कौन वह अर्थशास्त्री ?'

'एक साहब की टिप्पणी है वह !'

'अच्छा ! तो फिर उस साहब से आज शाम बात कर लें, पछताना पड़ेगा आपको!'

'पछताना पड़ेगा ?'

'खेती और कारखानों के संबंध में आपकी जानकारी बहुत सीमित है।' नेहरू बेचैन थे। उन्होंने उसी शाम को अर्थशास्त्री साहब को बुलाकर यथार्थ जानकारी चाही, उनका दिया हुआ पहले वाला आंकड़ा गलत था, दूसरे दिन योजना मंत्री नंदा ने नेहरू की गलती दुरुस्त करते हुए कहा, 'प्रति व्यक्ति आय साढ़े सात आने की है।'

प्रधानमंत्री के लिए रोज पच्चीस हजार के खर्च की बात सुनकर कांग्रेस सदस्य गुस्सा हुए थे और उन्होंने कहा कि पच्चीस हजार किस झाड़ की पत्ती है ! हम एक करोड़ भी खर्च करेंगे !' लोहिया का बताया, नेहरू पर होने वाले खर्च का आंकड़ा सही था, इसलिए

कि प्रधानमंत्री के वतन और अनुषंगिक भत्तों, उनके सेवक वर्ग पर होने वाले खर्च, उनके निवास स्थान की व्यवस्था, उनकी संरक्षण व्यवस्था, उनके दौरे और हवाई-यात्राओं पर होने वाले खर्च, के लिए किसी भी तरीके से 25 हजार से कम की रकम सरकारी तिजोरी से खर्च नहीं होती थी, ऐसा संभव ही नहीं था।

काल ने लोहिया की संसद सदस्य की चार साल की अवधि अक्तूबर 1967 में ही समाप्त कर दी। इन चार वर्षों में लोहिया ने मधु लिमये, किशन पटनाईक, रामसेवक यादव, मणिराम बागड़ी आदि बुद्धिमान, जागरूक और पटु संयुक्त समाजवादी पक्ष के सदस्यों की सहायता से संसद में विरोधियों की अपनी साख और धाक जमाई थी और संसद को वह आइना बनाने में सफलता पाई थी जिसमें जनता की आशा-आकांक्षाओं का जीवंत प्रतिबिंब अंकित हो सके।

संसद ने लोहिया के निधन पर शोक प्रस्ताव पारित किया। विरोधी पक्ष के सभी नेताओं ने विरोधी पक्ष के नेताओं के नेता, विशाल मानवता के पुजारी, राष्ट्रवादी-राष्ट्रीय नेता, शोषितों के सजग प्रहरी के रूप में लोहिया के शाश्वत गुणों की महिमा का बयान करने वाले भाषण दिए। शोक प्रस्ताव पारित कर दिन भर के कामकाज को समाप्त मान कर संसद ने लोहिया के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की।

25

'कांग्रेस हटाओ देश बचाओ'

1967 के चौथे लोकसभा के आम चुनावों का समय नजदीक आ रहा था। लोकसभा और विधानसभा के लिए उम्मीदवारों का चुनाव होना था। इस समय लोहिया ने स्पष्ट शब्दों में 'कांग्रेस हटाओ' का नारा दिया था। स्वातंत्र्योत्तर बीस वर्षों की लंबी अवधि में कांग्रेस ने एक भी समस्या का समाधान नहीं दिया था, विपरीत इसके हर प्रश्न को अधर में लटका कर रखा था। अब स्थिति वहां पहुंची कि बिना क्रांतिकारी परिवर्तन के कोई समस्या हल नहीं होगी और कांग्रेस ने क्रांति को ही कैद कर रखा है। क्रांतिशक्ति पर कांग्रेस का सांप कुंडली मारकर जमा हुआ है। इसलिए लोहिया का दृढ़ विश्वास था कि कांग्रेस को हटाए बिना क्रांतिकारी परिवर्तन की शक्तियां प्रवाहित नहीं हो पाएंगी। लोहिया की चाह थी कि बीस सालों से चली आ रही मुर्दे सी जड़ स्थिरता को बिना कांग्रेस को हटाए, खत्म करना संभव नहीं है और इसके लिए जनता में सुप्त पड़ी क्रांति की भूख को भी जगाया जाए। अपनी आशा की पूर्णता की दृष्टि से लोहिया चौथे आम चुनावों को सुनहरा अवसर समझते थे। लोहिया अनुभव कर रहे थे कि कांग्रेस को लेकर चारों तरफ असंतोष का वातावरण है और जनता में भी क्रांति भावना उद्भूत होने लगी है। लोहिया को यह विश्वास था कि कम से कम चुनावों के समय वामपंथी, दक्षिणपंथी और मध्यमार्गी विरोधी पक्ष मत विभाजन को टालने के लिए अगर सम्मिलित हो जाएंगे तो न केवल केंद्र में बल्कि विधानसभाओं में भी कांग्रेस की हार निश्चित होगी। लोहिया को इसका भी पूरा पूरा भान था कि कांग्रेस को सत्ता से हटाने के उपरांत मुक्त हुई क्रांति की शक्तियों के कार्यान्वयन के लिए एक मजबूत, विशाल और क्रांतिकारी पक्ष भी आवश्यक होगा। लोहिया को लगातार लगता रहा कि 'आज नहीं तो कल जनता, राष्ट्रीयता, जनतंत्र को तन-मन से स्वीकार किए हुए, समता और क्रांतिकारिकता से परिपूर्ण एक पक्ष की स्थापना वर्तमान विरोधी पक्षों में से अपने आप करेगी।' लोहिया की मान्यता थी कि इस प्रक्रिया में वर्तमान यथास्थितिवादी पक्षों में से क्रांतिकारी शक्ति तत्व अपने अपने पक्ष से अलग होकर क्रांतिकारी पक्ष के रूप में संगठित होंगे। लोहिया ने अपनी यह इच्छा भी

व्यक्त की थी कि 'चुनावों से पहले न्यूनतम कार्यक्रम पर एकमत का आग्रह न किया जाए इसलिए कि बिना सत्ता के न विचारों में यथार्थता होती है और न कृति में सजीवता! इसलिए हम सब हवा महल बनाने के बदले यथार्थ के मैदान पर पहले सम्मिलित हो जाएं'।

लोहिया के संयुक्त समाजवादी पक्ष ने बिना किसी ना-नुकुर के 'कांग्रेस हटाओ' की भूमिका मंजूर कर ली थी। साथ ही सभी विरोधी पक्षों की दिल्ली में एक बैठक भी आमंत्रित की। प्रजा समाजवादी पक्ष, स्वतंत्र पक्ष और जनसंघ ने लोहिया के प्रयत्नों के साथ सहयोग नहीं किया। परिणामतः 1967 के चुनावों में सभी कांग्रेस विरोधी पक्षों का न संयुक्त मोर्चा बन सका और न राष्ट्रीय स्तर पर स्थानों का बंटवारा करनेवाला करार हो सका। संयुक्त समाजवादी पक्ष, दोनों कम्युनिस्ट पक्षों और विविध राज्यों के कतिपय वामपंथी और प्रादेशिक पक्षों तथा जनसंघ और स्वतंत्र पक्ष जैसे दक्षिणपंथी पक्षों में स्थानीय स्तर पर, कुछ चुनाव क्षेत्रों में छुटपुट समझौते हुए थे। अधिकांश क्षेत्रों में वामपंथियों के विरोध में जनसंघ और स्वतंत्र पक्ष के उम्मीदवार प्रत्याशी बने हुए थे। फिर भी, कुछ अंशों में लोहिया की चुनाव नीति सफल रही।

बावजूद इस आंशिक सफलता के लोहिया ने चुनावों से पहले जो भविष्यवाणी की थी, उसमें से टपकता आत्मविश्वास सार्थक सिद्ध हुआ। लोहिया ने कहा था कि 'सभी हिंदी भाषी राज्यों में कांग्रेस की हार होगी। उत्तर प्रदेश, बिहार, राजस्थान, मध्य प्रदेश —हिंदी भाषी राज्यों में तथा पंजाब, उड़ीसा, बंगाल, तमिलनाडु और केरल—कुल मिलाकर नौ राज्यों में कांग्रेस को मुंह की खानी पड़ी; शेष राज्यों में यद्यपि कांग्रेस की जीत हुई थी तथापि हमेशा प्राप्त होने वाले मतों की संख्या में अबकी बार कांग्रेस को जबरदस्त घाटा हुआ था। लोकसभा में भी कांग्रेस सदस्यों की संख्या काफी कम हुई थी। विरोधी पक्षों को अधिक स्थान प्राप्त हुए थे। दोनों की संख्या में सिर्फ 25-26 का अंतर था। इन चुनावों के निर्णयों में महत्वपूर्ण बात यह रही कि केंद्रीय मंत्रियों की संख्या में से आधी संख्या में मंत्री और विविध राज्यों के कांग्रेस के धुरंधर, अतिरथी, महारथी नेता परास्त हुए थे।

उत्तर प्रदेश के कन्नौज लोकसभा चुनाव क्षेत्र से लोहिया जीते थे। उस समय अपनी भूमिका स्पष्ट करते हुए लोहिया ने कहा था कि 'मैं अपना चुनाव नहीं लड़ रहा हूं बल्कि मेरे पक्ष और तमाम विरोधियों की तरफ से लड़ रहा हूं।' लोहिया ने इस दरम्यान 'कांग्रेस हटाओ' के अपने नारे को बुलंद करते हुए समूचे भारत के तूफानी दौरे किए थे। अपने चुनाव क्षेत्र की ओर आपका ध्यान उतना नहीं था जितना देश के अन्य चुनाव क्षेत्रों की ओर था। लोहिया ने अपने चुनाव क्षेत्र में दिए गए भाषणों में समान नागरिक कानून का जोरदार प्रचार किया था। इस क्षेत्र में काम करनेवाले सहायकों ने ऐसे वक्तव्य न देने का मशविरा दिया, इस पर लोहिया बोले, 'मैं वह व्यक्ति नहीं हूं जो मत पाने के इरादे से अपना मत बदल दे या छिपा दे।' कांग्रेस के प्रचारक कार्यकर्ताओं ने ठीक इसी से लाभ उठाया, इंदिरा गांधी ने हर समय और बड़े अनुरोध भरे स्वर में कहा कि कांग्रेस सरकार किसी

भी हालत में मुस्लिम व्यक्तिगत कानून में हेरफर नहीं करेगी !' अपने चुनाव क्षेत्र की ओर उचित और आवश्यक ध्यान न देने और कांग्रेस के उक्त प्रचार के कारण लोहिया अल्पमताधिक्य से चुनाव जीते थे।

चुनाव-परिणामों के बारे में लोहिया की प्रतिक्रिया सुख-दुख मिश्रित थी, आपने कहा, 'अपराधी कांग्रेस का मकान ढह रहा है इसे देखकर खुशी हो रही है परंतु इसके स्थान पर अच्छा-सा मकान नहीं बन पा रहा है इस पर दुख भी बहुत हो रहा है। कहीं ऐसा न हो कि कांग्रेस के पतन के बाद देश आशा-निराशा की दुविधा में झूलता ही रह जाए।'

विरोधियों की जीत और सफलता में लोहिया का योगदान बहुत ही महत्त्व का रहा था। अपने स्वास्थ्य की और अपने मतदाता क्षेत्र की जरा भी चिंता न किए उन्होंने अपने आपको 'कांग्रेस हटाओ' के काम में समर्पित कर दिया था। लोहिया के इस अतुलनीय काम का लाभ सभी विरोधी पक्षों को हुआ।

यह सही है कि उत्तर प्रदेश, बिहार और मध्य प्रदेश में जहां लोहिया के संयुक्त समाजवादी पक्ष अपने जोरों पर था वहां अर्थात हिंदी भाषी राज्यों में विरोधी पक्षों को कांग्रेस की अपेक्षा विधानसभाओं में अधिक स्थान प्राप्त हुए थे फिर भी उतने अधिक नहीं कि अकेला संयुक्त समाजवादी पक्ष अपने बल पर अपनी सरकारें बना सके। इसलिए इन राज्यों में विरोधियों ने सम्मिलित रूप में संयुक्त विधायक दल—संविद—के नाम पर सरकारें बनाईं। कुछ स्थानों पर सत्ता पाने की ललक से, जिन्होंने परस्पर विरोध में चुनाव लड़े थे उन्होंने—जनसंघ, संयुक्त समाजवादी पक्ष, कम्युनिस्ट पक्षों ने एकत्रित होकर सरकारें बनाईं; यह स्थिति बड़ी विचित्र थी; इसमें अन्य एक असंगति भी निहित थी, केंद्र में कांग्रेस थी और आठ राज्यों में विरोधी पक्षों की मिलीजुली सरकारें थीं और इनमें से भी बहुत सी सरकारों के मुख्यमंत्री भूतपूर्व कांग्रेसी थे। इस असंगति के कुछ परिणाम अटल थे।

लोहिया ने एक तरीके से आधी जीत तो हासिल कर ही ली थी, और आधी अभी बाकी थी और वह थी नारे का दूसरा आधा हिस्सा, 'कांग्रेस हटाओ देश बचाओ', लोहिया की श्रद्धा थी कि बिना क्रांतिकारी परिवर्तन के नए भारत का निर्माण असंभव है। इसलिए वे बार बार और अनेकानेक तरीकों से कहा करते थे कि, 'क्रांतिकारी कार्यक्रमों के जरिए समूचे देश में जागरण की वह लहर दौड़ेगी कि जो जनमानस में क्रांति के संकल्प का निर्माण करेगी। जनता को यह विश्वास होना चाहिए कि वह किसी नई राह से चल रही है। हमारे कार्यक्रम इसी नई राह की ओर जनता को ले जानेवाले हों। कांग्रेस की समाप्ति पर हमारी सरकार वह काम करने वाली हो जो वर्तमान सभी विषमताओं पर जोरदार प्रहार करे और जनता को क्रांति की ओर उन्मुख करे।'

लोहिया को इसका भी पूरा ध्यान था कि ये सारे काम जादुई सर्प की भांति क्षणार्ध में और सम्यकता में नहीं होंगे। वे जानते थे कि वर्तमान समय 'गोधूलि की ओर संक्रमण की बेला है' साथ ही 'वर्तमान खिचड़ी सरकारों के मुंह भी विविध दिशाओं में हैं।' फिर भी लोहिया अनंत काल तक प्रतीक्षा करने के लिए तैयार नहीं थे। इसलिए कि

उन्हें लगता था कि कांग्रेस की शासनावधि में दबी पड़ी जनता की आकांक्षाएं उफनकर आएंगी और अगर गैर कांग्रेसी सरकारें उनकी पूर्णता नहीं पर पाएंगी तो जनता मोहभंग की गहरी गर्त में गिर जाएगी।'

इस संदर्भ में लोहिया ने अपनी बात घोषित की थी, 'सभी गैर कांग्रेसी सरकारों का आनेवाले छह महीनों तक समर्थन किया जाए भले ऐसी सरकारों में संयुक्त समाजवादी पक्ष समाविष्ट हो या न हो। इस अवधि में हर सरकार पुलिस और प्रशासनिक प्रणाली में सुधार करने, लगान को पूर्णतः रद्द करने, अमीर पाठशालाओं को बंद करने, शासकीय फिजूलखर्ची बंद करने, मंत्रियों, बड़े नौकरों और व्यापारियों को प्राप्त लाभों-सुविधाओं में कटौती करने का काम करे या इनमें से कम से कम एक काम अवश्य करे। अगर इनमें से एक भी काम कोई सरकार न कर पाए तो मैं उसके विरोध में आंदोलन करने के लिए जनता का आह्वान करूंगा। जिसकी हत्या करना और जिसे पीड़ा पहुंचाना अपराध माना जाता है ऐसी पवित्र गौ के रूप में मैं गैर कांग्रेसी सरकारों को नहीं मानता।'

जिस हिंदी भाषी राज्यों में 'संविद' की सरकारें थीं उनमें से सिर्फ बिहार में संयुक्त समाजवादी पक्ष का बहुमत था और भूतपूर्व कांग्रेसी महामायाप्रसाद मुख्यमंत्री थे। लोहिया की अपेक्षाओं के मुताबिक न सही लेकिन बिहार सरकार ने कुछ अच्छे काम अवश्य किए थे। परंतु जब एक प्रसंग ऐसा उद्‌भूत हुआ कि बिहार सरकार को गोली चलानी पड़ी तब लोहिया बहुत दुखी हुए थे। फिर भी 'चूंकि एक युग का अंत होकर दूसरे युग का आरंभ हो रहा है, इस संधिकाल में मैं अपने विचारों और मतों पर काबू करता हूं।' इस टिप्पणी के साथ लोहिया ने इस अवसर पर सब्र की नीति अपनाई थी। उत्तर प्रदेश में 'संविद' सरकार के मुख्यमंत्री चरणसिंह थे, कांग्रेस से विद्रोह कर आप अलग हुए थे परंतु कांग्रेस संस्कृति में पले चरणसिंह के गले लोहिया की मान्यताएं आसानी से नहीं उतर पा रही थीं। फिर भी अपने को किसान कहलाने वाले चरणसिंह कम-से-कम किसानों के हित में लगान का कानून रद्द कर दें ऐसी लोहिया की इच्छा थी।

कुल मिलाकर लोहिया को 'संविद' सरकारों से संतोष नहीं था, बल्कि वे कुछ निराश ही थे। 'जिजीविषा' अर्थात जीने की दुर्दम्य इच्छा न केवल हर व्यक्ति का बल्कि हर सरकार का प्राकृतिक स्वभाव होता है, अपने ही बताए इस यथार्थ से लोहिया भी अवगत थे, फिर भी आपने यह इशारा किया कि 'सारहीन जीवन जीते हुए संसार के लिए बोझ बनने का अधिकार जिस तरह किसी भी जीव को नहीं उसी तरह किसी सरकार को भी नहीं है।'

लोहिया ने अनुभव किया कि स्वाधीनता के बाद बीस वर्षों की राजनीति में सत्ता-संस्कृति का प्रभाव इस तरह पुरजोर होता जा रहा है कि संविद सरकारें और उनके मंत्री इसके शिकार बन चुके हैं। लोहिया को लगा कि जीने के लिए हाथ पैर पटकने के अतिरिक्त संविद सरकारें अधिक कुछ नहीं कर सकती हैं। जो कुछ हुआ था वह लोहिया की आशा के अनुकूल क्रांतियुग का आरंभ नहीं था, सिर्फ सत्ता परिवर्तन हुआ था। आखिर, केंद्रीय कांग्रेस सरकार की फूट डालनेवाली करतूतों, अंततः सत्ता संघर्षों, गुटबाजियों और

कुल मिलाकर दिशाहीन शासनों के कारण लोहिया की मौत (अक्तूबर 1967) के बाद 'संविद' सरकारें एक एक कर ढहने लगीं, चरमराकर गिरने लगीं।

चौथे आम चुनावों के बाद तुरंत राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति पद के चुनाव थे। यद्यपि आम चुनावों में कांग्रेस को चारों खाने चित्त करना संभव नहीं हो पाया था तथापि इन चुनावों में उसे पूरा करने के लिए लोहिया ने कमर कस ली थी। राष्ट्रपति पद के लिए कांग्रेस के जाकिर हुसैन और विरोधियों के सुब्बाराव के बीच मुकाबला हुआ था, कांग्रेस के मत विभाजित नहीं हुए परंतु विरोधियों के मतों में विभाजन हुआ और सुब्बाराव चुनाव हार गए। लोहिया का प्रयास था कि अगर विरोधी सदस्य दृढ़ता के साथ चलते तो कांग्रेस सदस्यों में से कुछ सदस्यों की 'अंतरात्मा की आवाज' पुकार उठती और सुब्बाराव विजयी हो जाते। परंतु विरोधियों ने लोहिया को निराश किया था।

जब राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री पद के लिए लोहिया का नाम सुर्खियों में आने लगा तब लोहिया ने कहा कि 'मैं विविध-भारती वाला आदमी नहीं हूं, मेरे अपने सिद्धांत हैं, मैं अगर कभी इन पदों पर आना चाहूंगा तो अपनी ही शर्तों पर।' 'शंकर्स वीकली' नाम के प्रसिद्ध व्यंग्यचित्र—नियतकालिक ने लोहिया के व्यंग्यचित्र के साथ यह टिप्पणी भी दी कि 'आज सबेरे लोहिया ने शपथ ग्रहण की और आज शाम ही आपने अपना त्याग पत्र भी दे दिया है।'

इस पूरे माहौल में लोहिया जनप्रियता की चरमसीमा पर विराजमान थे। भारत-चीन और भारत-पाक युद्धों के प्रसंगों पर किए गए प्रखर राष्ट्रवादी वक्तव्यों के कारण लोहिया राष्ट्रीय स्तर पर आला वर्ग के सर्वाधिक लोकप्रिय नेताओं में शरीक हुए थे। चौथे आम चुनावों में 'कांग्रेस हटाओ देश बचाओ' की नीति के कारण बड़े राज्यों में कांग्रेस की हार हुई थी, जिससे लोहिया सभी विरोधी पक्षों के 'अघोषित नेता' के पद पर भी पहुंचे थे।

26

अंतिम लड़ाई

1966 के अक्तूबर के बाद के चार-पांच महीनों में अनेक प्रकार के लेकिन अतिशय महत्व के कामों में लोहिया आकंठ डूबे हुए थे। दिल्ली में विद्यार्थी और पुलिस आंदोलन, इसके बाद हुए आम चुनाव, राष्ट्रपति पद का चुनाव, संसद का दैनिक काम, बिहार और बंगाल के दौरे आदि कामों का बड़ा दबाव आया था और स्वाभाविक रूप में लोहिया के स्वास्थ्य पर इन सबका विपरीत परिणाम हुआ था। अति रक्तचाप से वे पहले ही परेशान थे, हृदय भी थोड़ा-बहुत कमजोर हो गया था, इसी में मूत्र विकार की तकलीफ भी शुरू हुई थी; बावजूद इन सारी तकलीफों, परेशानियों और कमजोरियों के लोहिया ने अपने स्वास्थ्य की ओर कभी ध्यान नहीं दिया था। जब मूत्र विकार अधिक क्लेशदायक हुआ तब आपने डाक्टरी जांच करवा ली थी और रोकथाम की कुछ दवाइयां भी ले ली थीं, परंतु तकलीफ कम नहीं हो रही थी। डाक्टरों ने मशविरा दिया था कि 'प्रोस्टेट ग्लैंड्स' बढ़ी हुई हैं, उन्हें शल्यक्रिया के जरिए निकाले बिना तकलीफ दूर नहीं होगी, यह बात अप्रैल 1966 में ही कही गई थी। शल्यक्रिया के लिए लोहिया का मन तैयार नहीं था, इसलिए कि शल्यक्रिया आपके मुताबिक अहिंसा के विरोध में पड़ती है। आपका विचार था कि पहले आयुर्वेद अथवा होमियोपैथी का इलाज करवा लें, और अगर इससे आराम नहीं मिलता तो फिर शल्यक्रिया का विचार करें। परंतु आयुर्वेद और होमियोपैथी के डाक्टर तुरंत उपलब्ध नहीं हो सके। मूत्रविकार बिगड़ता जा रहा था इसलिए आखिर सितंबर 1967 में लोहिया ने शल्यक्रिया का निर्णय लिया।

वैसे लोहिया को शीघ्र ही पूर्व जर्मनी में जाना था, हेले विश्वविद्यालय की ओर से मार्टिन लूथर की साढ़े चार सौवीं जयंती के उपलक्ष्य में आयोजित समारोह का आपको आमंत्रण था। नजदीकी मित्रों ने सलाह दी कि जब आप जर्मनी में जा ही रहे हैं तब वहीं पर कहीं शल्यक्रिया करवा लीजिएगा परंतु लोहिया ने विदेश में शल्यक्रिया के लिए एकदम मना कर दिया था। लोहिया ने शायद यह तक स्वीकार नहीं किया कि दिल्ली में अथवा अन्यत्र कहीं भी खर्चीले निजी अस्पताल में विशेष निष्णात डाक्टर से शल्यक्रिया करवाई

जाए। दिल्ली के इर्विन सरकारी अस्पताल में आप कभी-कभार जांच करवाने के लिए जाया करते थे, यहीं पर एक वरिष्ठ सर्जन डा0 ब्रिगेडिर लाल के साथ आपका अच्छा खासा परिचय हुआ था और लोहिया का उन पर भरोसा भी था। डा0 लाल ने सुझाया कि यहीं इर्विन अस्पताल में शल्यक्रिया करवाई जाए और लोहिया ने भी इसके लिए अनुकूलता दिखाई।

28 सितंबर 1967 को लोहिया अस्पताल में भरती हो गए, आवश्यक जांच-पड़तालें करवाई गईं, सब कुछ ठीक और अनुकूल था। 30 सितंबर को सबेरे 10 बजे शल्यक्रिया भी बिना किसी बाधा के सफल हो गई थी। यह कहा गया था कि टॉन्सिल्स की शल्यक्रिया की भांति प्रोस्टेट ग्लैंड्स की शल्यक्रिया भी सरल और साधारण होती है। पहली अक्तूबर को आकाशवाणी और समाचारपत्रों से शल्यक्रिया की खबर प्रसारित की गई थी। तीन अक्तूबर को ही आकाशवाणी से खबर मिली कि लोहिया का स्वास्थ्य चिंताजनक है और यह समाचार सही था, क्योंकि 2 अक्तूबर को सहसा अस्वस्थ हो गए थे, तेज बुखार चढ़ आया था, शायद आवश्यक एंटीबायोटिक्स शल्यक्रिया से पहले न दिए गए हों, और हो सकता है कि रोगाणुनाशन का काम ढंग मे न किया गया हो, अलग अलग शंकाएं की जा रही थीं।

लोहिया के चिंताजनक हाल का समाचार पाते ही देशभर से आपके मित्रों, चाहने वालों, अनुयायियों ने दिल्ली में भीड़ कर दी, अस्पताल में बड़ी भारी भीड़ लगी।

2 अक्तूबर को अस्वस्थ हुए लोहिया दिन-ब-दिन अधिकाधिक अस्वस्थ ही होते गए, पहले बंबई से डा0 कुलाबावाला और डा0 दस्तूर को सलाह के लिए दिल्ली बुलाया गया, दोनों की राय थी कि जख्म खोलकर देखा जाय, यह बिगड़ा हुआ होगा। इंग्लैंड के प्रसिद्ध सर्जन डा0 रिचेसन से मशविरा किया गया, आपकी राय भी जख्म में खराबी होने की संभावना को देखते हुए उसे खोलकर देखने की रही। परंतु अस्पताल के शल्यकर्मियों के दल के प्रमुख डा0 लाल किसी की कुछ भी मानने को तैयार नहीं थे। 4 अक्तूबर से लोहिया की हालत बहुत ही नाजुक हो गई थी, डा0 लाल के नेतृत्व में उपचार जारी था। जख्म सड़ गया था और इसका विष रक्त के जरिए शरीर भर में फैल गया था। डाक्टर लोहिया के सहकारी पूरे निराश हो गए थे और लोहिया अपनी इच्छा शक्ति के सहारे जूझ रहे थे। मानों मौत और लोहिया में हार-जीत के लिए युद्ध ठन गया था। 6 अक्तूबर को लगा कि यही आखिरी मौका है। हिचकी, श्वासावरोध, गुर्दे की कमजोरी जैसी अन्य विकृतियां भी बल पकड़ती गईं।

लोहिया, प्रायः बेहोश ही रहते थे और बेहोशी में कभी कभी बंगला, जर्मन, अंग्रेजी, हिंदी में बरगलाया करते थे, कभी पूछते थे, 'क्या एक बीमार के इलाज के लिए इतने सारे डाक्टर्स ? क्या देश के साधारण नागरिक के लिए ये सारा उपलब्ध होता है ? मुझ अकेले के लिए इतना सारा खर्च नहीं किया जाए !' लोहिया की इच्छा थी कि उत्तर प्रदेश और बिहार की संविद सरकारों को लगान का कानून तुरंत रद्द कर देना चाहिए और इस

संदर्भ में समाचारपत्रों के लिए एक निवेदन देने पर भी आप आमादा हो गए थे, एक बार तो आपने लगान कानून पर अपना पूरा वक्तव्य तक सुनाया था, कभी उद्विग्नावस्था में कहते कि 'रानी ने रजिया को मारा !' रानी यानी इंदिरा गांधी ! लोहिया दिल्ली की पहली महिला सुलतान रजिया को बहुत मानते थे। इंदिरा गांधी ने रजिया की क्रांतिकारी परंपरा को पूरा ध्वस्त कर दिया था ऐसी लोहिया की मान्यता थी और इसीलिए लोहिया इंदिरा गांधी से नाराज भी थे। कभी भ्रमवश अपने को लोकसभा में मानकर, अध्यक्ष को संबोधित करते हुए लोहिया कहा करते थे कि 'स्वतंत्रता, सत्य और न्याय को पूरा संरक्षण दें !'

जब होश में रहते थे तब आपकी स्वाभाविक विनोदबुद्धि भी सजग रहती थी। एक डाक्टर से आपने पूछा, 'क्यों डाक्टर मैं ठीक हो जाऊंगा ?' डाक्टर ने तुरंत कहा, 'हां हां! जरूर ! आप अच्छे हो जाएंगे !' लोहिया हल्की-सी मुस्कान के साथ बोले, 'लगता है राजनीतिज्ञों की तरह डाक्टर्स भी अंधियारे में टटोलते हैं !' एक जर्मन डाक्टर के साथ लोहिया ने धारा प्रवाह जर्मन में बातचीत भी की !

लोहिया की प्रतिकार शक्ति के कमजोर पड़ने के आसार 6 अक्तूबर से दिखाई देने लगे। अब तक अपने पूरे मनोबल को समेटते हुए वे डाक्टरों द्वारा किए जा रहे उपायों को अनुकूल प्रतिक्रिया देने की कोशिश कर रहे थे। परंतु 6 अक्तूबर को आपने कहा, 'डाक्टर आप मेरे लिए बहुत कष्ट उठा रहे हैं, मैं देख रहा हूं, अब छोड़ दीजिए, मैं भी थक गया हूं।' इसी रात में लोहिया बोले, 'अब सब खत्म हुआ है, अपनी तो अब चला-चली है !'

दिल्ली की अक्तूबर की चिलचिलाती धूप में, हजारों की तादात में भूखे-प्यासे लोग सांस रोके, अस्पताल के अहाते में घंटों इस आशंका और भय में प्रतीक्षा करते बैठे रहते थे कि न जाने कब क्या खबर मिले ! जयप्रकाश रोज आते थे और लोहिया के कमरे के बाहर घंटों बैठा करते थे। एक महीना ही हुआ था लोहिया-जयप्रकाश को पटना में मिले, खूब खुलकर बातें हुई थीं उस समय। पक्षाध्यक्ष एस0 एम0 जोशी, मधु लिमये, रमा मित्र, राजनारायण, किशन पटनाईक आदि सहयोगी लगातार आते रहते थे। प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी, उप प्रधानमंत्री मोरारजी देसाई, गृहमंत्री यशवंतराव चव्हाण, राष्ट्रपति आते थे। विशेष बात तो यह थी कि जिन मंत्रियों को लोहिया ने संसद में आड़े हाथों लिया था और परेशान किया था वे मंत्री और जिन संसद सदस्यों से लोहिया उलझा करते थे वे सब लोहिया का हाल-चाल जानने के लिए अस्पताल में आते थे। कृपलानी पति-पत्नी, अरुणा आसफअली, अशोक मेहता, मृदुला साराभाई, कामराज, कृष्ण मेनन, विरोधी पक्षों के नेतागण, अन्य सदस्य, आदि सब की आवा-जाही लगातार जारी रहती थी।

आकाशवाणी और समाचारपत्रों में से आए दिन बिगड़ते जा रहे और चिंताजनक स्वास्थ्य के समाचार आते रहते थे। इन्हें सुन-पढ़कर दिल्ली के झाड़ूवालों, टैक्सी ड्राइवरों, होटलों के वेटरों, रिक्शावालों और हजारों स्त्रियों ने अस्पताल में भीड़ इकट्ठा की थी।

सबकी जिज्ञासा एक ही थी, 'कैसे हैं लोहिया साहब ?' पक्ष के कार्यालय में पहुंचकर सैकड़ों लोगों ने रक्तदान की इच्छा दर्शाई थी। देश भर के चहेतों, मित्रों, कार्यकर्ताओं और जागरूक जनता में चिंता-ही-चिंता छाई हुई थी।

9 अक्तूबर को उप प्रधानमंत्री मोरारजी देसाई के आदेश पर बंबई के प्रसिद्ध सर्जन डा0 शांतिलाल मेहता दिल्ली में आए। आपने जख्म को खोलकर, पीप निकालकर साफ किया, जब इसकी प्रयोगशाला में जांच कराई गई तब विषैले रोगाणुओं का पता चला; इसके बाद फिर बंबई के तीन, मद्रास के एक, वारासणी के एक, दिल्ली के ही लेकिन अन्य अस्पताल से दो, मध्य प्रदेश और पंजाब से एक एक, एक अमेरिकी तज्ञ और स्वयं डॉ0 शांतिलाल मेहता, इस प्रकार कुल ग्यारह डाक्टरों का एक दल एकदिल और एकमत से लोहिया के उपचार करने में जुट गया, परंतु अब बहुत देर हो गयी थी !

आखिर, 12 अक्तूबर 1967 को रात्रि के एक बजकर पांच मिनट पर लोहिया की प्राण ज्योति बुझ गयी !

सवेरे लोहिया का मृतदेह घर पर ले जाया गया, हजारों की तादात में अंतम-दर्शन करनेवालों में मंत्री, विदेशी राजदूत, कांग्रेसी संसद सदस्य, विरोधी पक्षों के नेताओं और सदस्यों का भी समावेश था। दोपहर संयुक्त समाजवादी पक्ष के ध्वजों और पुष्पहारों से सजाए गए ट्रक पर अंतम यात्रा की तैयारी की गई। वयोवृद्ध नेता कृपलानी, जयप्रकाश नारायण, मोरारजी देसाई, यशवंतराव चव्हाण आदि ने बारी बारी से कंधा दिया था, थोड़ी देर बाद लोहिया के शव को ट्रक पर रखा गया। ट्रक पर कोई नहीं बैठा था, सभी नेता श्मशान भूमि तक शोकाकुल जनता के साथ पैदल चले गए। लोहिया की हिदायत थी कि अगर विद्युतदाहिनी न हो तो उनका मृत शरीर वैद्यक महाविद्यालय को सौंपा जाए। दिल्ली में विद्युतदाहिनी थी इसलिए उसी में शव को अग्नि में अर्पित किया गया।

विद्युतदाहिनी के अहाते में शोकसभा हुई, सबसे पहले जयप्रकाश नारायण बोले, गला भर आया था, अश्रुपात रोक नहीं पा रहे थे, फिर भी गदगद स्वर में बोले, 'राममनोहर से मैं आठ साल बड़ा हूं, नियम से मुझे अंदर जाना चाहिए था और उसे यहां खड़े होकर बोलना'। संसद के सभापति संजीव रेड्डी बोले, 'साम्राज्यों को आग में झोंक देने वाला व्यक्तित्व आज स्वयं आग में जल रहा है। हमें चाहिए कि लोहिया की न्याय-अन्याय विषयक मान्यताओं को हम बरकरार रखें।' यशवंतराव चव्हाण बोले, 'लोहिया के आगमन से पूर्व लोकसभा निरी संख्या रूप में अस्तित्व में थी परंतु जैसे ही लोहिया का प्रवेश हुआ वही लोकसभा प्राणवान इंसान बन गई। लोकसभा आज खाली हो गई है, अब वह सप्राण आवाज लोकसभा में नहीं गूंजेगी !' तारकेश्वरी सिन्हा बोली, 'मैंने पहली बार विदेही आत्मा के दर्शन लोहिया के रूप में किए थे, किसी की मान्यता है कि लोहिया अकेले सिपाही थे और अपने पथ पर अकेले ही बढ़े जा रहे थे परंतु मुझे तो हमेशा यही लगता रहा कि जिस रास्ते लोहिया आते-जाते रहे वही आम मार्ग राजमार्ग है और हमें आज उसी राजपथ से जाना होगा।' जगजीवनराम ने कहा, 'हम हरिजन् महात्मा गांधी को सुप्रीम कोर्ट मानते

थे, और लोहिया हम लोगों के एडवोकेट जनरल थे, आज हम पूरे अनाश्रित हो गए हैं, न हमारा सुप्रीप कोर्ट है और न हमारे एडवोकेट जनरल।'

सरकारी अस्पतालों में बेफिक्री और लापरवाही के कारण अनगिनत गरीब मरते हैं, लोहिया ने वही मौत पाई। एक अंतर अवश्य हुआ, गरीबों के लिए आले दर्जे का इलाज, भारी दवाइयां और तज्ञ डाक्टरों का दल उपलब्ध नहीं हो पाता, जो लोहिया के लिए संभव हुआ लेकिन यहां भी एक अंतर है सारी उपलब्धता लोहिया के मित्र मंडलियों ने करवाई थी, केंद्र सरकार की ओर से इसमें से कुछ भी नहीं किया गया था, बावजूद इन सबके वे अपने प्रिय नेता को बचा नहीं पाए थे, इस पर टिप्पणी करते हुए जर्मन डाक्टर ओस्फेन ने कहा था, 'आले दर्जे के उपाय तीसरे दर्जे के अस्पताल में किए जा रहे हैं।'

लोहिया की प्रतिकार शक्ति जब क्षीण पड़ गई थी तब यानी अंतिम तीन दिनों में आले दर्जे के उपचार किए गए थे। सब लोगों को यही लगता था कि अगर ये सारे उपचार शुरू के नौ-दस दिनों में होते तो लोहिया के प्राणों को बचा पाना संभव होता। लोहिया ने जिस ब्रिगेडिअर डा० लाल के भरोसे के साथ अपनी जान सौंपी थी उन्हीं के प्रति लोहिया के मित्रों और अनुयायियों को अब शंका होने लगी थी, उन्हें धीरे धीरे विश्वास होने लगा था कि लोहिया की मौत स्वाभाविक मौत न थी, बल्कि इसके पीछे साजिश थी।

चंद्रशेखर और मधु लिमये ने क्रमशः राज्यसभा और लोकसभा में यह मांग उठाई कि लोहिया की मौत की जांच करवाई जाए। सरकार ने इस पर दिल्ली के सभी सरकारी अस्पतालों का निरीक्षण करवाने हेतु एक समिति नियुक्त की। इस समिति की रिपोर्ट का सारांश 26 जनवरी 1968 के 'टाइम्स आफ इंडिया' में प्रकाशित हुआ था। रिपोर्ट के अनुसार— 'लोहिया पर शल्यक्रिया करने से पहले जो सजगता, सावधानी और सतर्कता बरतनी चाहिए थी उसमें से कुछ भी नहीं किया गया था। अगर आले दर्जे की रोगाणु विनाशक प्रणाली को ढंग से उपयोग किया गया होता तो जख्म कभी इस तरीके से सड़ता-गलता नहीं, लॅबोरेटरी में भी ढंग की व्यवस्था नहीं है। लोहिया की मौत के कारणों को तलाशना यद्यपि समिति की परिधि के बाहर की बात है तथापि समिति की राय है कि अगर अस्पताल के अधिकारी आवश्यक और अनिवार्य सावधानी से काम लेते तो लोहिया का दुखद निधन न होता।'

'शल्यकर्मी के नाते जिस वरिष्ठ सर्जन का नाम उद्धृत किया जा रहा है, पाया गया कि उन्होंने लोहिया की शल्यक्रिया की नहीं है, कुछ कनिष्ठ नवसिखियों ने वह की थी। प्रोस्टेट ग्लैंड के लिए हमेशा शल्यक्रिया पेट पर की जाती है परंतु लोहिया के मामले में यह काम असाधारण तरीके से किया गया था। जब संकट की स्थिति उभरती दिखाई दी तब बाहर के विशेषज्ञ को आमंत्रित किया गया था परंतु तब तक मामला हद से बाहर हो गया था।'

जब आगे चलकर केंद्र में जनता सरकार बनी तब स्वास्थ्य मंत्री राजनारायण ने लोहिया की मौत के कारणों की जांच करने के लिए विशेषज्ञों की समिति नियुक्त की थी।

समिति को आवश्यक कागज उपलब्ध नहीं हो सके, बहुत सारे कागज गायब ही थे, जो भी मिले, उससे पाया गया कि वे हाल ही में तैयार किए गए हैं। समिति को यह मालूम नहीं हो सका कि निश्चित रूप से शल्यक्रिया किस सर्जन ने की, परंतु यह काम वरिष्ठ सर्जन ने नहीं किया था इस निष्कर्ष पर समिति पहुंची थी। समिति ने अपनी टिप्पणी में यह भी दर्ज किया है कि शल्यक्रिया के लिए अनिवार्य बातों, कामों और रोगाणुविनाशक प्रणाली की पूर्णतः उपेक्षा की गई थी।

समिति के निष्कर्ष चाहे जो हों, लोहिया नहीं रहे और असमय की मौत मरे। विलक्षण संयोग यह रहा कि लोहिया के पिता और दादाजी की मौत भी 57 वर्ष की अवस्था में ही हुई थी। संविद सरकारों ने लोहिया की घोर निराशा की थी, यहां तक कि संयुक्त समाजवादी पक्ष के अपने मंत्रियों से भी उन्हें अपेक्षाभंग झेलना पड़ा था। कुल मिलाकर लोहिया निराश भी थे और दुखी भी। परंतु हताशा उनको स्पर्श नहीं कर पाई थी कभी ! मृत्युशैया से एक बार उन्होंने कहा था कि 'और कुछ दिन,' क्योंकि, अगर उन्हीं के शब्दों में कहें तो, 'राजनीति में मैं जितनी ही ज्यादा गंदगी देखता हूं उतनी ही झुंझलाहट होती है। मैं इतना गंदा नहीं हूं कि गंदगी के मैदान को छोड़कर हट जाऊं ! मैं निराशा के कर्तव्य को जानता हूं।'

मृत्यु से तीन हफ्ते पहले लोहिया अपने घनिष्ठ मित्र रामानंद मिश्र से बिहार में मिले थे। मिश्र ने लिखा है, 'राममनोहर के मन में अन्याय के विरोध में संघर्ष की और पाखंडीपन के विरोध में गुस्से की जो ज्वाला धधकती थी वह मात्र उनके मन तक सीमित नहीं थी बल्कि रक्त-मांस और रग रग को आंदोलित करती थी। लेकिन मैंने पाया कि आग तो जीवंत थी लेकिन जीवन रस की धारा सूख गई थी, यह साफ साफ दिखाई दे रहा था कि वे मन ही मन धधक रहे हैं। लोहिया के एक साहित्यकार मित्र और हिंदी के प्रसिद्ध कवि 'दिनकर' से भेंट एक मास पहले हुई थी। दिनकर ने कहा था, 'आप क्रोध को कम कीजिए। देश आपसे बहुत प्रसन्न है। .... कहीं ऐसा न हो कि भार जब आपके कंधों पर आए तब आपका अतीत राह का कांटा बन जाए !' लोहिया उत्तर में बोले थे कि 'क्या आपको ऐसा लगता है कि तब तक मैं जी पाऊंगा ? वैसे मेरी जिंदगी बहुत छोटी है !'

अनुक्रमणिका

इंडिया इन्टरनेशनल प्रैस, ए-12/1 नारायणा इन्डस्ट्रीयल एरिया फेस-I, द्वारा मुद्रित